परम पूज्य माता जी तथा पिता जी को
सादर समर्पित

प्रस्तावना

श्री पारिख जी ने 'सूरदास और नरसिंह मेहता' विषय पर मेरे निर्देशन में उस्मानिया विश्वविद्यालय की पी-एच डी उपाधि के लिए अनुसन्धान करके उपाधि प्राप्त की है। वृन्दावन से लेकर गुजरात तक के प्रदेश भगवान कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध रह चुके हैं। मथुरा एवं वृन्दावन में उनका बाल्यकाल बीता और उनके शेष जीवन की क्रीडास्थली का केन्द्र द्वारका रहा। वहीं से वे विश्व को प्रकाश देते रहे और आसुरी प्रवृत्ति का दमन एवं नियमन करते रहे। इसीलिए यह स्वाभाविक ही है कि सूरदास वृन्दावन के क्षेत्र से और नरसिंह मेहता गुजरात के प्रदेश से भगवान की भक्ति की पावन धारा में लीन हुए। इन दोनों साधकों का भक्ति-साहित्य सीमातीत होकर देशकालजयी हो गया है और इनसे मानव को आत्मोन्नति के लिए अजस्र प्रेरणा मिलती रहेगी।

डॉ० पारिख ने बड़ी तन्मयता से उपर्युक्त महामानवों की विश्वपावनी भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया है और हृदय की पवित्रता को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले इनके साहित्य पर विश्वमानव के विश्वसमाज की दृष्टि से पर्याप्त प्रकाश डाला है।

डॉ० पारिख का यह शोधात्मक अध्ययन प्रकाशित होकर विद्वानों की भावी पीढ़ियों को चिन्तन की नयी दिशाओं में अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करेगा। उनकी इस सफल अनुसन्धानात्मक कृति के लिए मेरा हार्दिक साधुवाद अर्पित है।

रामनिरंजन पाण्डेय
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय

हैदराबाद
१३-६-६८

भूमिका

जिस प्रकार हिन्दी का कृष्णकाव्य सूरदास के सरस, मधुर एवं मार्मिक पदों के कारण परम उज्ज्वल बना है, ठीक उसी प्रकार गुजराती का कृष्णकाव्य भी नरसिंह के प्रेम और भक्ति के भाव-समुद्र में डुबा देने वाले पदों के कारण अत्यन्त पुनीत बना है। इन दोनों भक्तकवियों का स्थान भारत के श्रेष्ठ संतों में है। इन दोनों महाकवियों ने कृष्णभक्ति को लोकप्रियता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाया। कृष्णभक्ति और कृष्णकाव्य के इतिहास में इन दोनों संतों का महत्त्व असाधारण है। सूर को पाकर व्रजभाषा धन्य हो गई है और नरसिंह को पाकर गुजराती भाषा ने धन्यता का अनुभव किया है। निकटवर्ती भाषा-भाषी प्रदेशों—व्रज और गुजरात के इन सर्वश्रेष्ठ कवियों का तुलनात्मक अध्ययन करने में भी धन्यता एवं कृतकृत्यता का ही अनुभव होता है। इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन जहाँ एक ओर रसप्रद एवं आनंद-विभोर कर देने वाला होता है, वहीं वह दूसरी ओर इन कवियों की रचनाओं में उपलब्ध होने वाली समता और विषमता को तथा प्रादेशिक प्रभावों को भी स्पष्ट करता है। इन दोनों कवियों में परम्परा के निर्वाह तथा मौलिक उद्भावनाओं के प्रतिभापूर्ण प्रयासों को देखने में आत्म-संतुष्टि का अनुभव होता है।

इस प्रकार का दो भिन्न भाषा-भाषी कृष्णकवियों का तुलनात्मक अध्ययन पृष्ठभूमि के समान कृष्णभक्ति एवं कृष्णकाव्य की परम्परा का अध्ययन किए बिना अपूर्ण ही माना जा सकता है। अतएव प्रथम और द्वितीय अध्याय में कृष्णभक्ति के इतिहास एवं कृष्णकाव्य की परंपरा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। प्रथम अध्याय में सगुण भक्ति की सर्वग्राह्यता प्रतिपादित कर कृष्णभक्ति की लोकप्रियता को समझाया गया है। कृष्ण की भावना के प्रादुर्भाव एवं कृष्णभक्ति के विकास की परंपरा को स्पष्ट किया गया है। 'महाभारत' तथा पुराणों में मिलने वाले कृष्ण के स्वरूप पर विचार किया गया है तथा कृष्णभक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय के अन्त में संक्षेप में यह भी बताया गया है कि गुजरात में कृष्णभक्ति का जन्म एवं विकास कैसे हुआ तथा समान कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के अतिरिक्त गुजरात का अपना निजी और विशिष्ट कृष्णभक्ति सम्प्रदाय 'स्वामीनारायण सम्प्रदाय' किस प्रकार अस्तित्व में आकर विकसित हुआ।

द्वितीय अध्याय में संस्कृत एवं अपभ्रंश के कृष्णकाव्य की परंपरा को स्पष्ट

करते हुए सूरदास और नरसिंह मेहता को विशेष रूप से प्रभावित करने वाले जयदेव तथा विद्यापति पर संक्षेप में विचार किया गया है। तदनन्तर हिन्दी तथा गुजराती के प्रायः सभी प्रमुख कृष्णकवियों के कृष्णकाव्य का विहगावलोकन करके हिन्दी के कृष्णकाव्य में सूर का तथा गुजराती के कृष्णकाव्य में नरसिंह का स्थान निर्धारित किया गया है।

तृतीय अध्याय में काव्य को प्रभावित करने वाली कवि-जीवनी पर विस्तार से विचार किया गया है। कवि का अध्ययन केवल उसकी रचनाओं पर विचार करने से समाप्त नहीं होता है, अपितु उसकी जीवनी पर भी विचार करना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस अध्याय में सूरदास और नरसिंह मेहता की जीवनी पर प्रकाश डालकर उनका रचनाकाल निर्धारित किया गया है। अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के आधार पर इसका निश्चय करने का प्रयास किया गया है। चतुर्थ अध्याय में सूरदास और नरसिंह मेहता के साहित्य का सामान्य परिचय कराया गया है। सूर की कुल रचनाओं तथा उन रचनाओं में पाई जाने वाली विशेषताओं पर संक्षेप में विचार किया गया है। परंपरा के निर्वाह तथा मौलिकता के प्रयासों की ओर भी संकेत किया गया है। इसी प्रकार नरसिंह मेहता की समस्त रचनाओं तथा उनमें पाई जाने वाली विशिष्टताओं पर भी संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। नरसिंह में पाई जाने वाली मौलिकता को भी स्पष्ट किया गया है।

पाँचवें अध्याय में इन दोनों कवियों के वात्सल्य-वर्णन का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। वात्सल्य को रस की श्रेणी में तो अब सर्वसम्मत रूप से स्वीकार किया जाता है। सूर ने वात्सल्य निरूपण में किस प्रकार अपनी अद्वितीय प्रतिभा का प्रभावोत्पादक परिचय कराया है इसे विस्तारपूर्वक एवं विशद ढंग से इस अध्याय में बतलाया गया है। वात्सल्य के संयोग तथा वियोग इन दोनों पक्षों का वर्णन सूर ने किस उत्साह से तथा किस मार्मिकता से किया है इसे सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। यद्यपि नरसिंह ने वात्सल्य वर्णन के पद अधिक नहीं लिखे हैं, तथापि जितने भी लिखे हैं उन्हीं के आधार पर दोनों कवियों के वात्सल्य वर्णन की तुलना अवश्य की गई है।

छठे अध्याय में सूरदास और नरसिंह मेहता के पदों में प्रधान रूप से मिलने वाले शृंगाररस के निरूपण पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है। महाभाव में लीन रहने वाले इन दोनों महाकवियों की प्रेमलक्षणा भक्ति उनके शृंगारपरक पदों में किस प्रकार अभिव्यक्त हुई है तथा घोर शृंगारिक वर्णनों में भी किस प्रकार अलौकिकता अभिव्यंजित हुई है इसे स्पष्ट रूप से समझाया गया है। शृंगार के संयोगपक्ष का वर्णन करने का इन दोनों कवियों का उत्साह परंपरा के निर्वाह के साथ-साथ मौलिक उद्भावनाओं को भी किस प्रकार अवकाश देता है इसे सोदाहरण स्पष्ट किया

गया है। जहाँ सूर ने सयोग शृगार और विप्रलभ शृगार दोनो का निरूपण सतुलित ढंग से किया है, वहाँ नरसिंह ने शृगार के सयोगपक्ष का वर्णन अधिक और उसके वियोगपक्ष का वर्णन अपेक्षाकृत नही के बराबर किया है इसे स्पष्ट करते हुए इसके कारणो पर भी विचार किया गया है।

सातवें अध्याय मे इन दोनो भक्तकवियो की भक्तिभावना पर प्रकाश डाला गया है। इन दोनों कवियो के समस्त पदो का मूल प्रेरणा स्रोत भक्तितत्त्व ही है इसे इस अध्याय मे प्रतिपादित किया गया है। इन दोनो कवियो की विनय-भावना की तुलना करते हुए दोनो कवियो के भक्ति के प्रचारार्थ अपनाए गए समान सिद्धातो पर विस्तार से विचार किया गया है। इन दोनो कवियो ने इस प्रकार के भक्तिपरक पदो की लोकप्रियता तथा उसके मनोवैज्ञानिक कारणो पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

आठवें अध्याय मे सूरदास और नरसिंह मेहता को रचनाओ के दार्शनिक पक्ष पर विचार किया गया है। इन दोनो कवियो द्वारा प्रतिपादित तथा अभिव्यजित अद्वैतवाद पर तथा दोनो के समन्वयवादी दार्शनिक दृष्टिकोण पर पूरा प्रकाश डाला गया है। इन दोनो कवियो की घोर शृगारिकता मे भी छिपी हुई अद्‌भुत दार्शनिकता को स्पष्ट करते हुए इनके दार्शनिक पदो की तथा इन पदो मे मिलने वाले दार्शनिक सिद्धान्तो की पर्याप्त मात्रा मे तुलना की गई है।

नवे अध्याय मे काव्य को सरसता प्रदान करने वाले इन दोनो कवियो की रचनाओ के कलापक्ष पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय मे भाषा, शैली, अलकार-प्रयोग-कौशल, नायिका-भेद इत्यादि कलापक्ष के तत्त्वो पर विचार करते हुए इन दोनो कवियो की इस दृष्टिकोण से तुलना करने का प्रयास किया गया है।

दसवें अध्याय मे इन दोनो कवियो के पदो मे मिलने वाले प्रकृतिवर्णन पर विचार किया गया है। प्राकृतिक सौदर्य के मध्य मे विकसित होने वाला राधा और गोपियो का कृष्णप्रेम प्रकृति से पृथक नही हो सकता। इन दोनो कवियो ने प्रकृति सौदर्य का वर्णन करने मे समान उत्साह दिखलाया है। इन दोनो कवियो का प्रकृतिप्रेम किस प्रकार अपने पदो मे कही स्वतत्र वर्णन के रूप मे, कही उद्दीपन के माध्यम से तो कही अलकार प्रयोग के रूप मे अभिव्यक्त हुआ है इसे सोदाहरण सिद्ध किया गया है।

इन दस अध्यायो के साथ सूरदास और नरसिंह मेहता का तुलनात्मक अध्ययन समाप्त होता है। इस विषय पर कार्य करते-करते तथा प्रबध को लिखते लिखते कई बार ऐसा अनुभव होता रहा कि कुछ अध्यायो पर तो पूरा प्रबध ही लिखा जा सकता है और लिखा जाना चाहिए भी। उदाहरणार्थ सूर और नरसिंह का शृगार वर्णन, सूर और नरसिंह की भक्तिभावना, सूर और नरसिंह की दार्शनिकता इत्यादि। प्रबध

करते हुए सूरदास और नरसिंह मेहता को विशेष रूप से प्रभावित करने वाले जयदेव तथा विद्यापति पर संक्षेप में विचार किया गया है। तदनन्तर हिन्दी तथा गुजराती के प्राय सभी प्रमुख कृष्णकवियों के कृष्णकाव्य का विहगावलोकन करके हिन्दी के कृष्णकाव्य में सूर का तथा गुजराती के कृष्णकाव्य में नरसिंह का स्थान निर्धारित किया गया है।

तृतीय अध्याय में काव्य को प्रभावित करने वाली कवि-जीवनी पर विस्तार से विचार किया गया है। कवि का अध्ययन केवल उनकी रचनाओं पर विचार करने से समाप्त नहीं होता है, अपितु उसकी जीवनी पर भी विचार करना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस अध्याय में सूरदास और नरसिंह मेहता की जीवनी पर प्रकाश डालकर उनका रचनाकाल निर्धारित किया गया है। अन्त साक्ष्य एव बहि साक्ष्य के आधार पर इसका निश्चय करने का प्रयास किया गया है। चतुर्थ अध्याय में सूरदास और नरसिंह मेहता के साहित्य का सामान्य परिचय कराया गया है। सूर की कुल रचनाओं तथा उन रचनाओं में पाई जाने वाली विशेषताओं पर सक्षेप में विचार किया गया है। परपरा के निर्वाह तथा मौलिकता के प्रयासों की ओर भी सकेत किया गया है। इसी प्रकार नरसिंह महेता की समस्त रचनाओं तथा उनमें पाई जाने वाली विशिष्टताओं पर भी सक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। नरसिंह में पाई जाने वाली मौलिकता को भी स्पष्ट किया गया है।

पाँचवें अध्याय में इन दोनों कवियों के वात्सल्य वर्णन का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। वात्सल्य को रस की श्रेणी में तो अब सर्वसम्मत रूप से स्वीकार किया जाता है। सूर ने वात्सल्य निरूपण में किस प्रकार अपनी अद्वितीय प्रतिभा का प्रभावोत्पादक परिचय कराया है इसे विस्तारपूर्वक एव विशद ढग से इस अध्याय में बतलाया गया है। वात्सल्य के सयोग तथा वियोग इन दोनों पक्षों का वर्णन सूर ने किस उत्साह से तथा किस मार्मिकता से किया है इसे सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। यद्यपि नरसिंह ने वात्सल्य वर्णन के पद अधिक नहीं लिखे हैं, तथापि जितने भी लिखे हैं उन्हीं के आधार पर दोनों कवियों के वात्सल्य वर्णन की तुलना अवश्य की गई है।

छठे अध्याय में सूरदास और नरसिंह मेहता के पदों में प्रधान रूप से मिलने वाले शृगाररस के निरूपण पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है। महाभाव में लीन रहने वाले इन दोनों महाकवियों की प्रेमलक्षणा भक्ति उनके शृगारपरक पदों में किस प्रकार अभिव्यक्त हुई है तथा घोर शृगारिक वर्णनों में भी किस प्रकार अलौकिकता अभिव्यजित हुई है इसे स्पष्ट रूप से समझाया गया है। शृगार के सयोगपक्ष का वर्णन करने का इन दोनों कवियों का उत्साह परपरा के निर्वाह के साथ साथ मौलिक उद्भावनाओं को भी किस प्रकार अवकाश देता है इसे सोदाहरण स्पष्ट किया

गया है। जहाँ सूर ने सयोग शृगार और विप्रलभ शृगार दोनो का निरूपण सतुलित ढंग से किया है, वहाँ नरसिंह ने शृगार मे समोगपक्ष का वर्णन अधिक और उसके वियोगपक्ष का वर्णन अपेक्षाकृत नही के बराबर किया है इसे स्पष्ट करते हुए इसके कारणों पर भी विचार किया गया है।

सातवें अध्याय मे इन दोनो भक्तकवियो की भक्तिभावना पर प्रकाश डाला गया है। इन दोनो कवियो के समस्त पदो का मूल प्रेरणा-स्रोत भक्तितत्त्व ही है इसे इस अध्याय मे प्रतिपादित किया गया है। इन दोनो कवियों की विनय-भावना की तुलना करते हुए दोनो कवियो के भक्ति के प्रचारार्थ अपनाए गए समान सिद्धातो पर विस्तार से विचार किया गया है। इन दोना कवियो के इस प्रकार के भक्तिपरक पदो की लोकप्रियता तथा उसके मनोवैज्ञानिक कारणो पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

आठवें अध्याय मे सूरदास और नरसिंह मेहता की रचनाओ के दार्शनिक पक्ष पर विचार किया गया है। इन दोना कवियों द्वारा प्रतिपादित तथा अभिव्यजित अद्वैतवाद पर तथा दोनो के समन्वयवादी दार्शनिक दृष्टिकोण पर पूरा प्रकाश डाला गया है। इन दोनो कवियो की घोर शृगारिकता मे भी छिपी हुई अद्भुत दार्शनिकता को स्पष्ट करते हुए इनके दार्शनिक पदो की तथा इन पदो म मिलने वाले दार्शनिक सिद्धान्तो की पर्याप्त मात्रा मे तुलना की गई है।

नवें अध्याय मे काव्य को सरसता प्रदान करने वाले इन दोना कवियो की रचनाओ के कलापक्ष पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय म भाषा, शैली, अलकार-प्रयोग कौशल, नायिका भेद इत्यादि कलापक्ष के तत्त्वो पर विचार करते हुए इन दोनो कवियो की इस दृष्टिकोण से तुलना करने का प्रयास किया गया है।

दसवें अध्याय मे इन दोनो कवियो के पदो मे मिलने वाले प्रकृतिवर्णन पर विचार किया गया है। प्राकृतिक सौंदर्य के मध्य मे विकसित होने वाला राधा और गोपियो का कृष्णप्रेम प्रकृति से पृथक नही हो सकता। इन दोना कवियो ने प्रकृति-सौंदर्य का वर्णन करन मे समान उत्साह दिखलाया है। इन दोनो कवियो का प्रकृतिप्रेम किस प्रकार अपने पदो मे कही स्वतत्र वर्णन के रूप मे, कही उद्दीपन के माध्यम से तो कही अलकार प्रयोग के रूप मे अभिव्यक्त हुआ है इसे सोदाहरण सिद्ध किया गया है।

इन दस अध्यायो के साथ सूरदास और नरसिंह मेहता का तुलनात्मक अध्ययन समाप्त होता है। इस विषय पर कार्य करते-करते तथा प्रबध को लिखते लिखते कई बार ऐसा अनुभव होता रहा कि कुछ अध्यायो पर तो पूरा प्रबध ही लिखा जा सकता है और लिखा जाना चाहिए भी। उदाहरणार्थ सूर और नरसिंह का शृगार वर्णन, सूर और नरसिंह की भक्तिभावना, सूर और नरसिंह की दार्शनिकता इत्यादि। प्रबध

के विषय को अध्याय में समाप्त कर देने पर आत्मसंतोष के स्थान पर असंतोष का अनुभव होना स्वाभाविक ही है। तब भी प्रयास मात्र करने के संतोष का अधिकारी तो अपने को समझ ही लेता हूँ। मुझे प्रेरणा और प्रोत्साहन देने के लिए मैं पूज्य गुरुवर डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय, डॉ० राजकिशोर पाण्डेय तथा डॉ० भीमसेन्द्र भट्ट का हृदय से आभारी हूँ।

सिकंदराबाद
१ ३-६८

— डॉ० ललितकुमार पारिख

विषय-सूची

अध्याय १

कृष्ण-भक्ति का जन्म एवं विकास

सगुण भक्ति की सर्वग्राह्यता

निर्गुण और सगुण भक्ति मे सगुण भक्ति की लोकप्रियता सर्वविदित है। इसका मुख्य और मनोवैज्ञानिक कारण यही है कि निर्गुणोपासना मे जो नीरस और रूखा दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया उसकी तुलना मे सगुण भक्ति मे उपासना का सरस, सहज एव सर्वग्राह्य स्वरूप पाया गया। निर्गुण निराकार ब्रह्म-तत्त्व को ज्ञान के माध्यम से समझ कर ग्रहण करना तथा योग-मार्ग का अवलम्बन कर उसकी कठिन तपस्या मे तन्मय रहना सबके लिए सभव नही[1]। सगुणोपासना ज्ञान के आडम्बर से मुक्त रहने के कारण स्वाभाविक प्रतीत होती है और मनुष्य-स्वभाव के अनुकूल एव अनुरूप होने के कारण लोकप्रियता भी प्राप्त करती है। सगुणोपासना मे हृदयपक्ष का प्राधान्य है जिसके फलस्वरूप हृदय मे उद्भूत होने वाली भावुकता का महत्त्व अनायास ही अत्यधिक हो जाता है। किन्तु निर्गुण भक्ति मे बुद्धि-पक्ष की प्रधानता है जिसके परिणाम-स्वरूप ज्ञान को मुख्य आधार मानना पडता है। निर्गुणोपासना मे इसीलिए बुद्धि के श्रमित होने की ओर परिणामत अधूरे ज्ञान के कारण पग पग पर मिथ्याभिमान उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक रहती है।

हमारे देश मे ईश्वर-प्राप्ति के लिए ज्ञान-मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म-मार्ग के नाम से तीन मार्ग माने गए हैं। ये तीनो मार्ग तब से चले आ रहे है जब से मानव-जीवन मे परम कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। समय समय पर परिस्थिति-वश कभी किसी को प्रधान माना गया और कभी किसी को गौण। किन्तु युगो के अनुभव के आधार पर मानव-मन ने भक्ति-मार्ग को ही राजमार्ग अनुभव किया है। भक्ति-तत्त्व के प्रवर्तक, प्रचारक एव प्रमुख आचार्य श्री नारद मुनि ने भी अपने भक्ति-सूत्रो मे भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा प्रधानता दी है। हिन्दी के लोकप्रिय एव

---

१ "कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक"। रामचरितमानस, उत्तर काड, दोहा ११८, (ख) प्रथम पक्ति।

सर्वोत्कृष्ट कवि गोस्वामी तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति का अभेद[1] बतलाते हुए भी भक्ति को सुगम और सुखदायी[2] कह कर प्रधानता दी है। उन्होंने भक्ति को प्रधानता देने का एक सुन्दर और काव्यमय कारण भी दिया है। वह यह कि माया नारी होने के कारण ज्ञान को आकृष्ट करके उसे भुलावे में डाल सकती है। किन्तु भक्ति तो स्वयं नारी होने के कारण माया का उस पर कोई जादू नहीं चल सकता।[3] तुलसीदास ने ज्ञान को दीपक माना है जो माया की हवा से बुझ सकता है और भक्ति को चिन्तामणि माना है, जिस पर माया की हवा का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।[4] महाकवि सूरदास ने भी निर्गुण-निराकार ब्रह्म को 'सब विधि अगम' मान कर 'सगुण-लीला के पद गाये हैं'।[5] सगुणोपासना में जिस सात्विक परम आनन्द की अनुभूति होती है और जिस अनिर्वचनीय प्रसन्नता का अनुभव होता है उसकी हम निर्गुणोपासना में कल्पना तक नहीं कर सकते। अतएव भक्ति का आनन्द भी ईश्वर प्राप्ति के अतिरिक्त एक बहुत बड़ी प्राप्ति है। सगुण भक्ति साधना मात्र नहीं रह जाती, वह अपने को साध्य भी सिद्ध करती है। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में सगुण भक्ति का महत्व और प्रचार अपने आप बढ़ता चला गया।

सगुण भक्ति में कृष्ण भक्ति की लोकप्रियता

सगुणोपासना में कृष्ण भक्ति की प्रधानता रही और उसका अधिक प्रचार हुआ, यह भी सर्वसम्मत तथ्य है। सगुण भक्ति में कृष्ण भक्ति का अधिक लोकप्रिय होना स्वाभाविक भी था क्योंकि शक्ति, शील और सौन्दर्य समेत केवल रक्षक एवं धर्म-संस्थापक के रूप में भगवान् की उपासना के स्थान पर इसमें भगवान् के प्रेम, सौंदर्य एवं माधुर्य समेत आनन्द—रूप को अपनाया गया। कृष्ण भक्तों ने "भगवान् को

---

१ "भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा।"
—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ११४ (ख) के बाद की पंक्ति।

२ "असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई।"
—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ११८ (ख) के बाद की पंक्ति।

३ 'मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा'
—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ११५ (ख) के बाद की पंक्ति।

४ 'कहेउ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई'॥
रामभगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परमप्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥'
—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ११९ (ख) के बाद।

५ 'सब विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन पद गावै॥'—'सूरसागर'
प्रथम स्कंध, पद २ की अंतिम पंक्ति।

सौन्दर्य की समष्टि और सौन्दर्य के आदि-स्रोत के रूप में देखा है और उस सौन्दर्य की व्याप्ति में सम्पूर्ण सृष्टि को अनुप्राणित पाया है। हृदय रमणीय वस्तु में स्वभावतः रमता है और इसमें आनन्द लेता है। इस प्रकार आनन्द का ही दूसरा नाम सौन्दर्य है। कृष्ण-भक्ति में प्रेम का उत्पादक और उद्दीपक कारण सौन्दर्य ही है।...कृष्ण-भक्तों ने रूप और गुण-सौन्दर्य के आकर्षण द्वारा रस अथवा आनन्द-रूप कृष्ण की उपासना की है।"[1]

कृष्ण-भक्ति का इतिहास

जिस कृष्ण-भक्ति ने अपनी सुगमता, सरसता, मधुरता एवं हृदयस्पर्शिता के कारण इतनी सर्वप्रियता पाई, उसके जन्म और विकास का इतिहास भी कोई कम सरस नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण की भावना का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम कब हुआ और कैसे इस भावना ने विकसित हो कर कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय का स्वरूप धारण किया इस पर अब कुछ विचार किया जाय।

धार्मिक भावना का केन्द्र बनने वाले कृष्ण भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में हमारे धार्मिक साहित्य में वर्णित मिलते हैं। भारतीय भक्ति-परम्परा के आदि-ग्रंथ ऋग्वेद में भगवान् विष्णु को सर्वोच्च देवता के रूप में वर्णित नहीं किया गया था। उपनिषद्काल तथा ब्राह्मणकाल में विष्णु ने इन्द्र का स्थान प्राप्त करना प्रारम्भ किया। 'ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ' में विष्णु को सर्वोच्च देवता के रूप में स्वीकार किया गया तथा अन्य देवताओं की विभूतियाँ और शक्तियाँ भी अब उनमें देखी जाने लगीं। 'तैत्तरीय आरण्यक' में नारायण और विष्णु का एक रूप में वर्णन मिलता है। चौथी शताब्दी में कृष्ण भगवान् के रूप में अवश्य वर्णित हुए हैं यद्यपि कृष्ण का नाम उस समय भी वासुदेव ही मिलता है।[2] व्याकरणाचार्य पाणिनि ने, जिनका समय ईसा के ८०० वर्ष पूर्व का है, अपने व्याकरण में वासुदेव और अर्जुन का देवताओं के रूप में उल्लेख किया है[3]। इसके आधार पर श्री भाडारकर, लोकमान्य तिलक, डा० राय चौधरी आदि विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वासुदेव-पूजा ईसा के सात सौ वर्ष पूर्व प्रचलित रही होगी[4]।

---

१ डा० दीनदयालु गुप्त, 'सूर प्रभा', पृष्ठ ६।

२ कन्हैयालाल मुन्शी, "Gujrat and its Literature" पृष्ठ १२६।

३ J. N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India, पृष्ठ ४६।

४ (१) Collected works of Sir R G Bhandarkar VOl IV.

चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहने वाले मैगस्थनीज ने, जिनका समय ईसा के ३०० वर्ष पूर्व का माना गया है, एक वाक्य लिखा है जिसका तात्पर्य यह है कि मथुरा और कृष्णपुर में कृष्ण की उपासना होती थी। 'महानारायण उपनिषद्' में, जो तीसरी शताब्दी के लगभग लिखा गया, यह बताया गया है कि वासुदेव शब्द का प्रयोग विष्णु के स्थान पर पर्यायवाची के रूप में हुआ है[1] अतएव कृष्ण और विष्णु में भेद नहीं समझना चाहिए। पतंजलि के महाभाष्य में, जो ईसा के १५० वर्ष पूर्व लिखा गया, वासुदेव का उल्लेख देवता के रूप में मिलता है। सर भाडारकर ने इस सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय सिद्धान्त स्थिर किया है। वे वासुदेव और कृष्ण में अन्तर देखते हैं। उनका यह मत है कि वासुदेव मूलतः मनुष्य ही थे, सात्वत या वृष्णि जाति के थे और ईसा के ६०० वर्ष पूर्व का उनका समय है। जीवन-भर इन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उनके देहोत्सर्ग के कुछ समय पश्चात् लोगों ने उन्हें उस देवता के साथ एकरूप कर दिया जिसका वे प्रचार करते थे। इसी प्रकार पहले वे नारायण के साथ, बाद में विष्णु के साथ और अन्त में मथुरा के गोपाल कृष्ण के साथ एक रूप कर दिये गये।[2] इस सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार की भक्ति करने वालों ने ही 'भगवद्गीता' को जन्म दिया जिसमें कृष्ण को भगवान् के अवतार के रूप में वर्णित किया गया।

ग्रीयर्सन, विन्टरनित्ज और गार्बे इस सिद्धान्त से सहमत हैं और बड़ी दृढ़ता के साथ इसका समर्थन करते हैं। परन्तु हापकिन्स तथा कीथ इस सिद्धान्त को अनैतिहासिक और अतएव निरर्थक सिद्ध करना चाहते हैं। अधिकांश विद्वान इन्हीं के पक्ष में हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नामक ग्रन्थ में कृष्ण और वासुदेव के एकत्व के सम्बन्ध में निम्न प्रकार से प्रकाश डाला है —

"कृष्ण एक वैदिक ऋषि का नाम था, जिसने ऋग्वेद के अष्टम मंडल की रचना की थी। वह उसमें अपना नाम कृष्ण लिखता है। अनुक्रमणिका लेखक उसे आंगिरस नाम देता है। इसके बाद 'छांदोग्य उपनिषद्' में कृष्ण देवकी के पुत्र के रूप में उपस्थित किये जाते हैं। वे घोर आंगिरस के शिष्य हैं।...यदि कृष्ण भी आंगिरस थे तो

---

(२) बालगंगाधर तिलक, 'गीतारहस्य', पृष्ठ ५४६-५४७।

(३) डा० राय चौधरी, 'The Early History of the Vaishnava Sect' पृष्ठ २४।

१ J N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India'। पृष्ठ ४६।

२ डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ ७६२।

'ऋग्वेद' के समय से 'छांदोग्य उपनिषद्' के समय तक उनके सम्बन्ध में जनश्रुति चली आती होगी। इस जनश्रुति के आधार पर कृष्ण का साम्य वासुदेव से हुआ होगा, जब वासुदेव देवत्व के पद पर अधिष्ठित हुए होंगे [1]।

कृष्ण और वासुदेव के एकत्व का एक और कारण बतलाते हुए वे लिखते हैं—" 'जातकों' की गाथा के भाष्यकार का मत है कि कृष्ण एक गोत्र नाम है और यह क्षत्रियों द्वारा भी यज्ञ-समय में धारण किया जा सकता था। इस गोत्र का पूर्ण रूप है 'काष्र्णायन'। वासुदेव भी उसी काष्र्णायन गोत्र के थे, अत उनका नाम कृष्ण हो गया। इस प्रकार कृष्ण ऋषि का समस्त वेद-ज्ञान और देवकी का पुत्र-गौरव वासुदेव के साथ सम्बद्ध हो गया क्योंकि वे अब कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हो गए"[2]।

'रामायण' और 'महाभारत'—इन दोनो महाकाव्यों में राम और कृष्ण भगवान् विष्णु के अवतारों के रूप में वर्णित मिलते हैं। अवतार-वाद के सिद्धान्त का जन्म कब और किन परिस्थितियों में हुआ यह भी सोचने की बात है। भगवान् बुद्ध के पूर्वावतारों की कथा से प्रेरणा पा कर इन महाकाव्यों में यह कल्पना जोड दी गई होगी ऐसा एक मत है। 'भगवद्गीता', जिसमें कृष्ण को पूर्णावतार के रूप में प्रस्तुत किया गया है, उसके रचनाकाल का निर्णय करना भी काफी मतभेद होने के कारण कठिन है। श्री तेलंग इसे ईसा पूर्व चौथी शताब्दी की रचना मानते हैं। किन्तु होपकिन्स, कीथ आदि कुछ विद्वान् इसका आज का स्वरूप ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी से अधिक पुराना मानने को तैयार नहीं हैं। श्री भांडारकर के कृष्ण-भक्ति की उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए गार्बे ने इसका निर्माण-काल ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी स्थिर किया है। परन्तु सांख्ययोग आदि दर्शनों के आधार पर कृष्ण का महत्त्व बढाने के लिए ईसा की दूसरी शताब्दी में इसका पुनर्निर्माण हुआ होगा। विन्टरनित्ज़, ग्रीयर्सन आदि कुछ विद्वान् इस विचारधारा से सहमत हैं।

'भगवद्गीता' में सासारिक बन्धनों से उद्धार पाने के तीन मार्ग—ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग और भक्ति मार्ग बतलाये गये हैं। सच्चे हृदय से कृष्ण की भक्ति करना ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग से सरल और उत्तम बतलाया गया है। भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित होने के कारण कृष्ण-भक्ति का स्वरूप और भी विकसित हो गया। अब कृष्ण-भक्ति ने सच्चा और सामूहिक प्रचार पाया। विष्णु के उपासक वैष्णवों ने कृष्ण को मन्दिर में देवता के रूप में प्रतिष्ठित करके उनकी विधिवत् भक्ति करना प्रारंभ किया। 'भगवद्गीता' के बाद अधिक विकसित होनेवाली कृष्ण-भक्ति में एक

---

१ डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृष्ठ ४१३।
२ डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ ४१३।

विशेष उल्लेखनीय बात देखी गई और वह यह कि पशु-बलिदान का अन्त हुआ[१]। 'भगवद्-गीता' का एक आश्चर्यपूर्ण तत्त्व है कृष्ण का देवता के रूप में अधिष्ठित होना तथा कृष्ण-भक्ति का सामूहिक प्रचार होना। मूल महाकाव्य 'महाभारत' में कृष्ण केवल राजा, योद्धा, राजनीतिज्ञ आदि सामान्य रूपों में चित्रित किये गए हैं। किन्तु 'गीता' में वे आध्यात्मिक दार्शनिकता की बातें समझाने वाले गुरु के रूप में चित्रित किये गये हैं। यहाँ वे उपनिषदों का दर्शन समझाते हैं तथा अपने को सर्वोच्च, सर्वोपरि आत्मा घोषित करते हैं[२]। हमारे देश के महान् एवं उच्च दर्शन को फिर एक बार अनासक्ति कर्म और शील के धरातल पर ला कर सर्वग्राह्य स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। 'भगवद्-गीता' के साहित्यिक, धार्मिक एवं दार्शनिक महत्त्व को सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं।

माभारत में कृष्ण का स्वरूप

महाभारत को धर्म, दर्शन, राजनीति, सिद्धान्तों तथा नियमों के ज्ञानकोष के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। कृष्ण की महिमा का प्रारंभ तथा कृष्ण-भक्ति का प्रचार यहीं से देखा जाता है। धार्मिक भावना के केन्द्र-स्वरूप श्री कृष्ण को एक साधारण मनुष्य के रूप में ही मूल 'महाभारत' में वर्णित किया गया है ऐसा कतिपय विद्वानों का मत है, जिनमें होपकिन्स मुख्य हैं। इन विद्वानों का यह अनुमान है कि कृष्ण को देवता के रूप में आगे चल कर ही स्वीकार किया गया होगा। परन्तु ग्रीयर्सन, गार्बे आदि अन्य विद्वानों का यह दृढ़ मत है कि कृष्ण देवता के रूप में ही 'महाभारत' में वर्णित हैं[३]।

'महाभारत' के बारहवें भाग 'मोक्षधर्म' के उत्तरार्द्ध में कृष्ण भक्ति की बातें विस्तारपूर्वक बतलाई गई हैं। इसके तेरहवें भाग में एक अध्याय पाया जाता है जिसमें भगवान् के सहस्र नाम मिलते हैं। इसके पश्चात् ही विष्णु-सहस्र नाम का प्रचार हुआ होगा। वैष्णव धर्म का दार्शनिक आधार और भी दृढ़ करते हुए कृष्ण भक्ति का प्रचार करना, कृष्ण का विष्णु के अवतार के रूप में सर्वोच्च देवता समझा जाना इत्यादि गीता के ही सिद्धान्तों की पुनरुक्ति 'अनुगीता' में पाई जाती है। किन्तु एक नई बात इसमें यह पाई जाती है कि विष्णु, ब्रह्मा और शेष नाग की कल्पना तथा

---

[१] J N Farquhar and H D Griswold 'The Religious Quest of India'। पृष्ठ ८८-८९।

[२] J N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India'। पृष्ठ ८९।

[३] J. N. Farquhar and H D Griswold, The Religious Quest of India'। पृष्ठ ४६।

भगवान् के छः अवतारों की कथा का उल्लेख इसमें प्राप्त होता है। महाभारत के बारहवें भाग में भीष्म के द्वारा विष्णु की स्तुति का प्रसंग मिलता है। अब अवतार-रूप में श्रीकृष्ण उपनिषदों के परब्रह्म माने जाने लगे। 'महाभारत' के 'मोक्ष धर्म' भाग के अन्तर्गत 'नारायणीय' में वैष्णव सम्प्रदाय का विकास देखा जाता है। भागवत् नाम के साथ-साथ सात्वत तथा पाञ्च-रात्र नाम भी मिलते हैं। चित्र-शिखंडी ऋषियों द्वारा सम्पादित पांचरात्र साहित्य भी मिलता है। इस 'नारायणीय' में नारद की उत्तर की यात्रा का वर्णन है। वे क्षीर-सागर के मध्य में बसे हुए श्वेत-द्वीप के श्वेत-मनुष्यों के द्वारा विष्णु की उपासना होती हुई देखते हैं। इन मनुष्यों का, इनके विश्वासों का, इनकी पवित्रता का तथा इनकी उपासना-पद्धति का इस ग्रंथ में विस्तृत वर्णन मिलता है[1]। 'नारायणीय' में नारायण की अभिव्यक्ति व्यूह के माध्यम से हुई है जिसमें चतुष्पाद-ब्रह्म की कल्पना करके विष्णु के चार रूप बतलाये गये हैं। वासुदेव से संकर्षण, संकर्षण से प्रद्युम्न, प्रद्युम्न से अनिरुद्ध और अनिरुद्ध से ब्रह्मा :—

वासुदेव—आदि ब्रह्म संकर्षण—प्रकृति प्रद्युम्न—मानस अनिरुद्ध—अहंकार	ब्रह्मा-सर्वभूतानि

इस योजना का रहस्य या उद्देश्य संदिग्ध ही रह जाता है। वासुदेव कृष्ण हैं, बलराम या संकर्षण कृष्ण के भाई हैं, प्रद्युम्न कृष्ण का पुत्र है और अनिरुद्ध उनका पौत्र है। सम्भवतः ये तीनों गौण देवता थे, जिन्हें कृष्ण से सम्बद्ध करके महत्त्व प्रदान करना ही इस व्यूहयोजना का उद्देश्य रहा है।

विष्णु अपने इन चारों रूपों में संसार में अवतरित होते हैं और उन्हीं से अवतार की सृष्टि होती है। 'नारायणीय' में अवतारवाद का सिद्धान्त अत्यधिक विकसित पाया जाता है क्योंकि जहाँ पहले 'अनुगीता' में केवल छः अवतारों का उल्लेख मिलता है, वहाँ 'दशावतार' की मान्यता उत्पन्न और स्वीकृत हुई।

'महाभारत' में कृष्ण की कथा संक्षेप में इस प्रकार मिलती है। उनका जन्म मथुरा में कंस तथा अन्य राक्षसों के संहार के लिए हुआ और इस लोक-कल्याण के कार्य को सम्पन्न करके वे सौराष्ट्रान्तर्गत द्वारिका में जा कर बसे। उनके माता-पिता का नाम देवकी और वसुदेव बताया गया है। परन्तु कंस के क्रोध से बचने के लिए उन्हें जन्म के उपरान्त तुरन्त नन्द-यशोदा के यहाँ पहुँचाने की तथा वहीं ग्वालों के

---

[1] J N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India' पृष्ठ ९९।

मध्य में उनके बड़े होने की कथा इसमें नहीं मिलती है। बालकृष्ण की स्तुति होने लगी हो ऐसा भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है। 'हरिवंश' आदि पुराणों में कृष्ण के बाल-चरित्र का तथा गोपियों के साथ के संयोग-वियोग का जो वर्णन मिलता है, वह यहाँ पर बिल्कुल नहीं है। अपवाद-रूप कुछ अंश यत्र-तत्र मिलते हैं, जो निश्चित ही बाद में जोड़ दिये गये होंगे ऐसा अनुमान है।[१] एक विचित्र बात यह भी देखी जाती है कि जिस राधा से कृष्ण की अनेकानेक लीलाएँ सम्बद्ध हैं, उसका या उन लीलाओं का यहाँ निर्देश तक नहीं। 'महाभारत' के बाद ही राधा की कल्पना अस्तित्व में आई होगी ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचना सर्वथा यथार्थ है।

पुराणों मे कृष्ण का स्वरूप

अब पुराणों में कृष्ण की भावना का और विकास कैसे हुआ इसके इतिहास का विहंगावलोकन किया जाय। पुराणों का उपयोग साम्प्रदायिक प्रचार के माध्यम के रूप में ही अधिक हुआ। वैष्णवों ने पुराणों से अधिकाधिक लाभ उठाया। अब कृष्ण-भक्ति का विकास निश्चित रूप से और तीव्र गति से होने लगा। 'हरिवंश-पुराण' तथा 'विष्णु पुराण' में कृष्ण के चरित्र को प्राचीन राजाओं की वंशावली से जोड़ने का प्रयत्न किया गया। पुराणों का साहित्य अपने मूल रूप में तो अत्यन्त प्राचीन रहा होगा, किन्तु उसमें समय-समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे होंगे यह निश्चित है। इस समय उपलब्ध होने वाले पुराणों ने अपना नया रूप गुप्त राजाओं के स्वर्ण-युग में तथा उसके बाद प्राप्त करना प्रारम्भ किया होगा ऐसा अनुमान है।[२] पुराणों की संख्या परम्परा से अट्ठारह मानी गई है। परन्तु वास्तव में उप पुराणों की गणना न करें तब भी बीस पुराण तो मिलते ही हैं, जिनके नाम निम्न प्रकार है :—

१ ब्रह्म-पुराण
२ पद्म पुराण
३ विष्णु पुराण
४ शिव-पुराण
५ मार्कण्डेय-पुराण
६ अग्नि पुराण
७ भागवत-पुराण
८ नारदीय पुराण
९ भविष्य-पुराण
१० ब्रह्मवैवर्त्त पुराण

---

[१] J N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India'—पृष्ठ १००।

[२] J N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India'—पृष्ठ ११८।

११. लिंग-पुराण	१६. मत्स्य-पुराण
१२ वाराह-पुराण	१७ गरुड-पुराण
१३. स्कन्द-पुराण	१८ ब्रह्माण्ड-पुराण
१४ वामन-पुराण	१९ हरिवंश-पुराण
१५. कूर्म-पुराण	२० वायु पुराण

'हरिवंश-पुराण' में शिव और विष्णु को समान या एक ही बतलाया गया है। यह समन्वय काफी महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। बाद में लिखे जाने वाले स्कन्द-पुराणों में भी इस समन्वयवाद के दर्शन होते हैं जहाँ शिव और विष्णु में अभेद देखा गया है। 'हरिहर' नामक नए देवता की कल्पना भी मिलती है। भागवत सम्प्रदाय तब तक निश्चित रूप से अस्तित्व में आ गया होगा, क्योंकि केवल भागवत नाम का ही उल्लेख मिलता हो ऐसी बात नहीं है, प्रत्युत भागवत सम्प्रदाय का प्रसिद्ध मन्त्र "ओऽम् नमो भगवते वासुदेवाय नम" भी उद्धृत किया गया है।

'हरिवंश-पुराण' तथा 'विष्णु-पुराण' प्राचीन सामग्री के आधार पर बडी सतर्कता के साथ पुन लिखे गये होंगे ऐसा जो अनुमान किया गया है वह ठीक है। इन दोनों पुराणों का रचनाकाल सन् ४०० ईस्वी के अधिक बाद का नहीं हो सकता।[१] इन दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त मात्रा में साम्य के तत्त्व मिलते हैं, किन्तु कृष्ण की कथा को विकसित करने का ढंग दोनों पुराणों का अपना-अपना निजी है। 'हरिवंश-पुराण' में कृष्ण की बाल्यावस्था तथा यौवनावस्था की अनेकानेक लीलाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है, जिनका 'महाभारत' में निर्देश तक नहीं मिलता। 'विष्णु-पुराणों' में 'हरिवंश-पुराण' से अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से इन लीलाओं का वर्णन मिलता है—यहाँ तक कि सभोग-शृङ्गार भी एक उदात्त स्वरूप में इसमें विद्यमान है। मथुरा में तथा उसके चारों तरफ प्रसिद्ध होने वाली कृष्ण-सम्बन्धी किंवदन्तियों के आधार पर कृष्ण और बलराम के राक्षसों के सहार के चमत्कारपूर्ण कार्यों का वर्णन 'हरिवंश पुराण' में किया गया है। ग्राम्य जीवन के दृश्यों का तादृश्य वर्णन करते हुए वहाँ के आमोद-प्रमोद, हास्य तथा मनोरंजन के बीच कृष्ण को गोपिकाओं का हृदय जीतते हुए तथा उनके साथ रात रात भर रासलीला खेलते हुए वर्णित किया गया है। 'महाभारत' के कृष्ण-चरित्र के इस प्रकार के विकास के कारण 'हरिवंश-पुराण' अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

इस प्रकार पुराणों में गोपाल कृष्ण की भावना का विकास देखा जाता है। "गोपालकृष्ण की भावना का विकास 'हरिवंश पुराण' में इस प्रकार हुआ कि ३८०८

---

[१] J. N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India'—पृष्ठ १४३।

वें श्लोक में कृष्ण ने अपने पिता नन्द से गोवर्धन-पूजा करते समय अपने को 'पशु-पालक' कहा है और अपना वैभव गोधन से ही माना है। ३५३२ वें श्लोक से उनका निवास ब्रज और वृन्दावन ज्ञात होता है। श्री कृष्ण की गोवर्धन-पूजा और ब्रज-निवास में एक ऐतिहासिक सामग्री मिलती है[१]। गोपालकृष्ण की उपासना के इति-हास के सम्बन्ध में सर भाण्डारकर का मत है कि द्वितीय और तृतीय शताब्दी में 'आभीर' नाम की एक जाति-विशेष रहती थी जिसने गोपालकृष्ण को देवता के रूप में स्वीकार करके कृष्ण भक्ति के विकास में अपूर्व सहयोग दिया[२]। कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन 'नारद पांचरात्र' की 'ज्ञानामृत सारसंहिता' में भी उपलब्ध होता होता है जिसका रचनाकाल ईसा की चतुर्थ शताब्दी के बाद का ही माना जाता है।

'विष्णु पुराण' को वैष्णवों का शुद्ध साम्प्रदायिक ग्रंथ माना जा सकता है। इसके ५वें ग्रंथ में, जो कि 'विष्णु-पुराण' का हृदय है, कृष्ण की कथा अपने विकसित रूप में मिलती है, किन्तु इसमें कृष्ण को विष्णु के पूर्णावतार के रूप में नहीं अपितु केवल अंशावतार के रूप में ही वर्णित किया गया है।

'भागवत-पुराण' कृष्ण की बाल्यावस्था और यौवनावस्था को ही केन्द्र बना कर लिखा गया है। इसमें गोपियों का वर्णन अधिक विस्तार के साथ किया गया है। 'राधा' का निर्देश इस ग्रंथ में भी नहीं मिलता। निश्चित ही 'राधा' बाद की कल्पना है। परन्तु इस वर्णित गोपियों में एक गोपी कृष्ण को विशेष प्रिय है, जो कृष्ण के साथ अकेली विहार करते रहने का सौभाग्य प्राप्त करती है। उसके सौभाग्य को देख कर अन्य गोपियाँ कल्पना करती हैं कि निश्चित ही इस गोपिका ने अपने पूर्व जन्म में विशेष निष्ठा और प्रेम के साथ कृष्ण की भक्ति की होगी, जिसके फल-स्वरूप आज वह कृष्ण के विशेष स्नेह की कृपा पात्री बन सकी है। यहीं से 'राधा' की कल्पना का प्रारंभ हुआ होगा ऐसा सार्थक अनुमान किया जा सकता है। राधा शब्द की व्युत्पत्ति 'राध' धातु से हुई होगी, जिसका अर्थ होता है प्रसन्न या प्रमुदित करने वाली। 'आराधना' शब्द से भी व्युत्पत्ति संभव है। किस ग्रंथ में राधा का उल्लेख सर्व प्रथम हुआ होगा इसका निश्चित रूप से निर्णय करना यद्यपि कठिन है, तथापि राधावल्लभीय संप्रदाय की रचना 'गोपाल तापनीय उपनिषद' में इसका सर्व-प्रथम उल्लेख होने की संभावना सोची गई है[३]।

---

१ डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ ४६६।

२ Sri Bhandarkar, 'Vaishnavism, Shaivism and Minor Religious Systems—पृष्ठ ३७।

३ J N Farquhar and H D Griswold, The Religious Quest of India'—पृष्ठ २१९।

'भागवत-पुराण' वास्तव मे एक बृहत् तथा अत्यत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। पूर्ववर्ती साहित्य से यह पर्याप्त मात्रा मे भिन्न प्रतीत होता है क्योंकि इसमे भक्ति का नया सिद्धान्त और दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है और इसी मे उसकी वास्तविक महत्ता दृष्टिगोचर होती है। इस ग्रथ मे भक्ति-सम्बन्धी कुछ श्रेष्ठ उक्तियाँ ऐसे उत्तम एव प्रभावोत्पादक ढग से कही गई हैं कि इन्हे भक्ति-साहित्य मे सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जा सकता है। विष्णुपुरी नाम के भक्त ने 'भक्ति-रत्नावली' के नाम से 'भागवत' की भक्ति-सम्बन्धी उक्तियो के अशो का बड़ा ही सुन्दर संग्रह किया है, जहाँ हम भक्ति-भावना को अपने उन्नत, विशिष्ट एव श्रेष्ठतम रूप मे पाते हैं।

इस ग्रंथ मे भावुकता की चरम सीमा के रूप मे भक्ति को वर्णित किया गया है। इस भक्ति से प्रभावित व्यक्ति का कठ प्रेमाधिक्य के कारण गद्-गद हो जाता है, नेत्रो मे प्रेमाश्रु बहने लगते हैं, शरीर प्रेम-पुलकित हो जाता है तथा भक्ति के आवेश मे वह सुध-बुध खो कर कृष्णमय हो जाता है। कृष्ण की मूर्त्ति या चित्र देखते समय, उनकी स्तुति करते समय, कृष्ण-भक्तो की सगति मे अथवा कृष्ण चरित्र का पठन या श्रवण करने पर कृष्ण-भक्तो की भक्ति-भावुकता से गद्-गद हो जाने की दशा का सर्वत्र विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। भक्ति की तीव्रता के फलस्वरूप आत्मसमर्पण, दीनता, विनम्रता तथा एक-निष्ठता की भावना दृढ़तर हो जाती है। यही भावना मोक्षप्राप्ति के द्वार तक हमे ले जाती है। इस पुराण मे वर्णित भक्ति 'भगवद्गीता' मे वर्णित भक्ति से सर्वथा भिन्न एव नित्य-नूतन तथा जीवन्त है।

'भागवत-पुराण' मे शृगारिक तत्त्व का सन्निहित होना एक विशेष उल्लेखनीय तथा महत्वपूर्ण बात है। यद्यपि सारा शृगार वस्तुत उदात्त और दिव्य शृगार ही है तथा उसकी अपनी निजी विशिष्ट दार्शनिक पृष्ठभूमि भी है, तथापि शृगारवर्णन मे शृंगाररस की सभी उद्-भावनाओं को स्थान मिला है। काव्यत्व की दृष्टि से ऐसे वर्णन बड़े सुन्दर, कलात्मक एव हृदय-स्पर्शी प्रतीत होते हैं। यह सब इस पुराण के 'दशम् स्कध' मे वर्णित है, जिसकी लोकप्रियता का सबसे बडा प्रमाण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि इस अश का अनुवाद प्राय सभी प्रमुख भारतीय भाषाओ मे हुआ है। 'भागवत-पुराण' के इस दिव्य भक्तिपरक शृगार ने ही आगे चलकर उद्भूत होने वाले कृष्ण-भक्ति सप्रदायो के लिये अपने को आधार और नीव सिद्ध किया।

भागवत धर्म की प्रतिष्ठा तथा 'भागवत-पुराण' की रचना के इतिहास के सम्बन्ध मे 'भागवत-पुराण' मे एक कथा वर्णित है। इस कथा मे बतलाया गया है कि जब व्यासजी ने देखा कि महाभारत और गीता मे प्रतिपादित नैष्कर्म्य प्रधान भागवत-धर्म मे भक्ति का यथार्थ रूप नही निखर पाया तब उन्होने नारद मुनि को बुला कर अपनी मनोव्यथा कही। इसके पश्चात् इसी की पूर्ति के निमित्त भक्ति-

प्रधान 'भागवत-पुराण' की रचना करके उन्होंने अपूर्व सतुष्टि का अनुभव किया।

सभी विद्वान् 'भागवत-पुराण' को अन्तिम पुराण मानते है। कुछ समय तक विद्वानों ने भ्रमवश बगाल के बोपदेव नाम के एक विद्वान भक्त को उनकी भागवत-सम्बन्धी रचनाओं के आधार पर 'भागवत-पुराण' का रचयिता मानना चाहा था। परन्तु 'भागवत पुराण' मध्वाचार्य के २०० वर्ष पूर्व भी एक महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथ के रूप में प्रसिद्ध था। मध्वाचार्य का समय निश्चित रूप से बोपदेव के ५० वर्ष पूर्व का है। इस प्रकार इस महान् ग्रंथ को बोपदेव की रचना मान कर उनके समय को—तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी को ग्रंथ का रचना-काल मानना सर्वथा अनुचित है। सन् १०३० ई० में अलबेरूनी द्वारा लिखे गये भारत-सम्बन्धी ऐतिहासिक ग्रन्थ में प्राप्त होने वाले 'भागवत-पुराण' के उल्लेख के आधार पर इसका रचना-काल सन् ६०० ईस्वी निश्चित किया गया है।

'भागवत-पुराण' की रचना तमिल देश में हुई होगी ऐसा अनुमान किया जाता है क्योंकि 'भागवत माहात्म्य' में भक्ति एक नारी के रूप में वर्णित है जो अपना जन्म-स्थान द्रविड देश बतलाती है। 'भागवत-पुराण' के आधार पर 'नारद भक्तिसूत्र' और 'शाण्डिल्य भक्तिसूत्र' की रचना हुई। यद्यपि इन ग्रन्थों में भक्तिभावना पर्याप्त मात्रा में विकसित हुई तथा प्रभावोत्पादक ढग से अभिव्यक्त भी हुई, तथापि इन ग्रन्थों में भक्ति की साकार मूर्ति राधा का कृष्ण के साथ वर्णन तो क्या उल्लेख तक नहीं मिलता है।

'नृसिंह पुराण' में भगवान् विष्णु के दशावतार का वर्णन है और इन अवतारों में कृष्ण के साथ बलराम का भी निर्देश मिलता है। परमात्मा के रूप में श्रीकृष्ण सर्वप्रथम वनदेवता के रूप में स्वीकृत हुए होंगे ऐसा भी एक मत है।[१] जो स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक और स्वीकार्य प्रतीत होता है।

भागवत के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि पूर्ण और पावन शील के उच्च समधरातल पर सम्पूर्ण मानवता को ले आने के उद्देश्य से ही कृष्ण-भक्ति का आन्दोलन प्रारंभ हुआ होगा। ज्ञान और प्रेमतत्त्व का समन्वय भागवत की विशेषता है।

कृष्ण-भक्ति के विभिन्न सम्प्रदाय

कृष्ण भक्ति के विकास और प्रचार में अनेक सम्प्रदायों का बहुत बड़ा योग रहा। सातवीं, आठवीं और नवीं शताब्दी में दक्षिण के आलवारों द्वारा प्रचारित प्रेम-लक्षणा कृष्ण-भक्तिवाद में सम्प्रदायों के आचार्यों द्वारा दार्शनिक रूप में प्रस्तुत होने

---

१. डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृष्ठ ४६७।

लगी। सन् १००० ईस्वी के लगभग यामुनाचार्य नाम के विद्वान् भक्त ने प्रपत्ति और शरणागति का सिद्धान्त स्थिर करके भक्ति का प्रचार किया। आलवार भक्त-कवियों के पदों का 'नालावीर प्रबन्धम्' नाम से संग्रह करने वाले नाथमुनि के ये पौत्र थे। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय का विकास तमिल प्रान्त में विशेष रूप से हुआ था। 'तेंगलई-मत' जिसे 'टेकलई-मत' भी कहा जाता है, उसके अनुसार तमिल भाषा को महत्त्व दे कर, संस्कृत का त्याग करके, तमिल मे कृष्ण-साहित्य का सृजन होने लगा। इससे प्रेरणा पा कर अन्य प्रान्तों ने भी शनैः-शनैः संस्कृत का त्याग करके अपनी भाषा मे भक्ति साहित्य का सृजन करना प्रारंभ किया। दक्षिण के मन्दिरों मे आल्वार भक्तों के पदों को विधिपूर्वक गाये जाने का प्रबन्ध भी हुआ था। यामुनाचार्य ने विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इनकी प्रमुख रचनाएँ 'सिद्धित्रय', 'आगम प्रमाण्य', 'गीतार्थ संग्रह' इत्यादि हैं। उनके बड़े पौत्र रामानुज ने विशिष्टाद्वैत को और भी दृढ़ दार्शनिक रूप प्रदान किया। यामुनाचार्य के बाद रामानुज ने गद्दी पाई।

रामानुज ने 'समुच्छाया' सिद्धान्त की स्थापना की। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को ज्ञान अर्जित करते हुए, भक्ति-भावना को दृढ़ रखते हुए अपना कर्त्तव्य बराबर करते रहना चाहिए, उसे कर्त्तव्यविमुख कभी भी नहीं होना चाहिए। ऐसा करने पर ही मनुष्य मोक्ष या मुक्ति का अधिकारी होता है। रामानुजाचार्य बहुत बड़े समाज सुधारक भी थे। शूद्रों तथा अस्पृश्यों को भी वे विष्णु-भक्ति का ज्ञान कराते थे। उन्होंने एक बार अस्पृश्यों के लिए भी मन्दिर-प्रवेश का प्रबन्ध करवाया था। वे उनके साथ भोजन तक करते थे ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार वे अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए प्रयत्नशील रहे। उन्होंने पूरे भारत की यात्रा की थी। वे दक्षिण में रामेश्वर तक गए, महाराष्ट्र तथा गुजरात में भी गए, काश्मीर तक जा कर काशी और जगन्नाथपुरी गये और अन्त में तिरुपति और श्रीरंगम् भी गये। भक्ति को देशव्यापी आन्दोलन के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय इनको दिया जा सकता है। सन् १०९८ ईस्वी में चोल वंश के शैव राजा कुलोत्तुंग प्रथम ने वैष्णवों को बन्दी बना कर कष्ट देना प्रारंभ किया और इसमें विवश होकर रामानुज को भागना पड़ा। वे मैसूर गये और वहाँ राज्याश्रय प्राप्त करके वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार करते रहे। चोल राजा की मृत्यु सन् १११८ ईस्वी में हुई और तब सन् ११२२ ईस्वी में वे फिर से श्री रंगम् लौटे जहाँ उनकी मृत्यु सन् ११३७ ईस्वी में हुई। उनके देहविलय के बाद लोगों ने भगवान् के अवतार के रूप में उनकी पूजा भी की।

निम्बार्क संप्रदाय

सन् ११५० ईस्वी के लगभग राधा और कृष्ण की शुद्ध भक्ति का एक सम्प्रदाय तेलंगाना में निम्बार्काचार्य ने प्रस्थापित किया। निम्बार्क दक्षिण के तेलगुभाषी प्रान्त

के विद्वान् ब्राह्मण थे जो वृन्दावन में जाकर स्थिर हुए। निम्बार्क का नाम पहले भास्कर था ऐसा कहा जाता है। वे रामानुजाचार्य से प्रभावित हुए थे। वे 'ध्यान' को विशेष महत्त्व प्रदान करते थे। 'भेदाभेद' का इनका दार्शनिक सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है। निम्बार्क ने राधा-भक्ति का प्रचार करके मधुर भक्ति को विकसित किया। वे कहते हैं कि "हम राधा की भक्ति करते हैं—उस राधा की जो कृष्ण की गोद में बाईं ओर बैठी रह कर स्वयं प्रसन्न रहती है और कृष्ण को भी प्रमुदित करती है।" हिन्दी के रीतिकालीन लोकप्रिय कवि बिहारीलाल ने अपनी सत-सई के मंगलाचरण के दोहे में इसी प्रकार का भाव अभिव्यक्त किया है।

"मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्याम हरितदुति होइ॥"

निम्बार्काचार्य एक दिव्य "गोलोक" की कल्पना में विश्वास करते हैं तथा राधा को उस 'गोलोक' में सदा कृष्ण के सान्निध्य का सुख और सौभाग्य प्राप्त करती हुई वर्णित करते हैं। निम्बार्क संप्रदाय में कृष्ण को केवल विष्णु का अवतार ही नहीं माना गया अपितु उसे परब्रह्म माना गया। 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ', 'दशश्लोकी', 'वेदान्त कौस्तुभ' आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

माध्व संप्रदाय

निम्बार्क के पश्चात् मध्वाचार्य का समय आता है, जिन्होंने कृष्ण-भक्ति के एक नये संप्रदाय को जन्म दिया जिसे माध्व संप्रदाय कहते है। मध्वाचार्य का समय सन् ११९९ से १२७८ ईस्वी बतलाया जाता है। इनका जन्म कन्नड प्रान्त के अंतर्गत उदिपि गाँव में हुआ। छोटी आयु में ही संन्यासी बन कर, शंकराचार्य के वेदान्त का अध्ययन करके वे कृष्ण भक्ति का दार्शनिक आधार तैयार करने में संलग्न हो गये। वे अपने को वायु का अवतार मानते थे। उन्होंने बड़े मनोयोग के साथ 'ऐतरेय उपनिषद्', 'महाभारत' तथा 'भागवत पुराण' का भी अध्ययन किया। 'भागवत-पुराण' ने उनके जीवन तथा धार्मिक विचारों को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। रामानुजाचार्य और उनमें एक बात का विशेष रूप से अंतर पाया जाता है और वह यह कि रामानुज अद्वैतवाद में विश्वास करने वाले थे और मध्वाचार्य द्वैतवाद में। वे जीव और ब्रह्म में स्पष्ट भेद पाते हैं। उनका भक्ति सिद्धान्त भागवत संप्रदाय से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। वेदान्त सूत्रों पर उन्होंने भाष्य तथा अनुव्याख्यान लिखे। 'भागवत तात्पर्य निर्णय' नामक उनकी रचना विशेष महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। उन्होंने राधा की कल्पना को स्वीकार नहीं किया। मध्वाचार्य के देहावसान के ५० वर्ष बाद जयतीर्थ इस संप्रदाय के मुख्य आचार्य हुए जिनकी लिखी हुई मध्वाचार्य के ग्रंथों की टीकाएँ इस संप्रदाय की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में से हैं।

विष्णुस्वामी सम्प्रदाय

मध्वाचार्य के द्वैतवाद सिद्धान्त को स्वीकार करने वाला विष्णुस्वामी सम्प्रदाय विष्णुस्वामी जी द्वारा प्रस्थापित हुआ था। विष्णुस्वामी दक्षिण के थे। वे राधा की कल्पना स्वीकार करते हैं। 'भक्तमाल' में उन्हें ज्ञानेश्वर के गुरु के रूप में वर्णित किया गया है। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं —'गीता की टीका', 'वेदान्त-सूत्रों की टीका', 'भागवतपुराण की टीका', 'भागवत-भाष्य', 'सर्वदर्शन सग्रह,' 'साकार सिद्धि' इत्यादि। उनके द्वारा प्रस्थापित सम्प्रदाय एवं प्रतिपादित सिद्धान्तों का पर्याप्त मात्रा में प्रचार हुआ और कई शताब्दियों तक यह सम्प्रदाय लोकप्रिय भी रहा। विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी 'गोपाल तापनीय उपनिषद' तथा 'गोपाल सहस्र नाम' का विशेष रूप से उपयोग करते हैं। 'विष्णुस्वामी सम्प्रदाय' विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के अंत में वल्लभ सम्प्रदाय में सन्निहित हो गया क्यों कि इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के आधार पर ही महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग प्रस्थापित किया था।

दत्तात्रेय सम्प्रदाय

दत्तात्रेय सम्प्रदाय कृष्ण के अवतार भगवान् दत्तात्रेय द्वारा ही प्रस्थापित हुआ है ऐसा उसके अनुयायियों का विश्वास है। यह सम्प्रदाय श्रीदत्त सम्प्रदाय या मानभाऊ पंथ के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को सर्वोच्च देवता माना जाता है और अन्य देवताओं को तनिक भी महत्त्व नहीं दिया जाता। इस सम्प्रदाय का केन्द्र महाराष्ट्र रहा। महाराष्ट्र में भक्ति का आंदोलन ज्ञानेश्वर नाम के लोकप्रिय भक्त-कवि के समय से प्रारंभ होता है। 'ज्ञानेश्वरी' के नाम से इन्होंने मराठी में श्रीमद्-भागवत पर एक अपूर्व टीका लिखी है। इसमें लगभग १०,००० श्लोक हैं। इस ग्रंथ का रचना-काल सन् १२९० ईस्वी है। इस ग्रंथ का आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा साहित्यिक महत्त्व असाधारण है। इस ग्रंथ का अनुवाद भी अनेक भारतीय भाषाओं में हुआ है। इन्होंने भक्ति के 'अभंग' भी लिखे हैं। इनकी रचनाओं ने तत्कालीन तथा बाद की जनता को भक्ति के क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। ज्ञानेश्वर तथा अन्य मराठी भक्त कवियों ने राधा का निर्देश नहीं किया है।

महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर के बाद नामदेव नाम के विशेष रूप से उल्लेखनीय कृष्ण-भक्त-कवि हुए। ये जाति के दर्जी थे और अपने भक्तिपूर्ण पदों के लिए प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। इनका समय सन् १४०० और १५०० ईस्वी के बीच का माना जाता है। मराठी के अतिरिक्त दक्खिनी में भी इनके कुछ पद मिलते हैं। ये विट्ठल या विठोबा के भक्त थे। महाराष्ट्र में कृष्ण का नाम विट्ठल या विठोबा के रूप में ही अधिक प्रचलित है। 'हरिकथा' की पद्धति महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है जिसमें पदों को जोर-जोर से गाकर गद्य में समझाया जाता है और बार-बार 'जय रामकृष्णहरि' पुकारा

जाता है। कुछ इससे मिलती-जुलती प्रथा दक्षिण मे भी है, जिसे 'कालक्षेपम्' कहते हैं। महाराष्ट्र के अंतर्गत पढरपुर मे विठोबा का मन्दिर है तथा यह कृष्ण भक्तो के लिए एक तीर्थधाम के समान है।

राधावल्लभी संप्रदाय

राधावल्लभी सप्रदाय की स्थापना का श्रेय गोस्वामी हित-हरिवश जी को है। यह सप्रदाय वि स १६४२ मे अस्तित्व मे आया। यह सप्रदाय कुछ अशा म माधव और निम्बार्क सप्रदाय पर आधारित है। हितहरिवश 'राधासुधानिधि' नाम के सस्कृत ग्रथ की तथा 'चौरासी पद एव स्फुट पद' की व्रजभाषा मे रचना की है। इस सप्रदाय मे राधा को कृष्ण से भी ऊँचा स्थान दिया जाता है और राधा की उपासना के द्वारा ही कृष्ण की कृपा प्राप्त की जाती है। इस सप्रदाय का व्रज के अतिरिक्त गुजरात मे भी काफी प्रचार हुआ।

हरिदासी सप्रदाय

हरिदासी सप्रदाय के सस्थापक स्वामी हरिदास हैं जिनका समय विक्रम की सत्रहवी शताब्दी का अन्त माना जाता है। इस सप्रदाय के सिद्धान्त चैतन्य सप्रदाय से बहुत मिलते-जुलते हैं।

चैतन्य सप्रदाय

चैतन्य सप्रदाय की स्थापना सोलहवी शताब्दी मे चैतन्य महाप्रभु के द्वारा हुई। चौदहवी शताब्दी मे चडीदास नाम के बगाल के कवि हुए थे जिनके पद भक्तिमाधुर्य से पूर्ण थे। चडीदास के पदो न माधवेन्द्रपुरी नाम के बगाली सन्यासी को अत्यन्त प्रभावित किया, जो मध्वाचार्य के अनुयायी थे और वृन्दावन मे आ कर बस गये थे। कृष्णभक्ति का प्रचार करते हुए माधवेन्द्रपुरी ने एक कृष्ण मन्दिर की प्रतिष्ठा की, जिसने बगाली भक्तो को आकर्षित किया। उनके शिष्य ईश्वरपुरी ने चैतन्य को, जिनका नाम पहले निमाई था, कृष्णभक्ति के रग से रग दिया। चैतन्य महाप्रभु ने वैष्णववाद मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी। चैतन्य सम्प्रदाय मे जाति-पाँति का बन्धन न था। इस सप्रदाय मे, रूपा और सनातन नाम के मुस्लिम दरबारी भी, चैतन्य के अनुयायी लोकनाथ के समय मे कृष्ण भक्त बन कर विधिवत् दीक्षित हुए। इस सप्रदाय मे राधा को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया। पतिभाव से कृष्ण की उपासना करने की मधुर-भक्ति की पद्धति का इतना प्रचार हुआ कि लोग कृष्ण-भक्ति मे पागल होने लगे।

वल्लभ सप्रदाय

वल्लभ सप्रदाय तैलग देश के विद्वान् कृष्णभक्त वल्लभाचार्य द्वारा प्रस्थापित

हुआ। इनका समय सन् १४७९ ईस्वी तथा १५३१ ईस्वी के मध्य का है। ये चैतन्य के समकालीन थे। हिन्दी प्रान्तों मे कृष्णभक्ति के प्रचार का श्रेय इन्ही को है। ये निम्बार्क से अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे क्योंकि 'गोलोक' तथा राधा को उन्होने विशेष महत्व प्रदान किया। वे अपने को अग्नि का अवतार कहते थे और कृष्ण के सिवा किसी को अपना गुरु मानने को तैयार नही थे। 'पुष्टिमार्ग' की स्थापना इन्होंने ही की जिसके अनुसार भक्ति भगवान् की कृपा से ही प्राप्त होती है। वल्लभाचार्य तथा उनके अनुयायी कृष्ण को ब्रह्म मानते हैं और सारी सृष्टि अग्नि से उत्पन्न होने वाले स्फुल्लिगों के समान कृष्ण से उत्पन्न हुई है ऐसा विश्वास करते है। कृष्ण का स्वर्ग ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के स्वर्ग से भी ऊँचा है और उसका नाम 'व्यापीवैकुंठ' है, जिसमे वृन्दावन, गोलोक तथा दिव्य वनसमूह है। कृष्ण से ही राधा उत्पन्न हुई है और इन दोनो के रोमछिद्रो से गोप-गोपिकाएँ एव गाये उत्पन्न हुई हैं। सख्य-भाव से कृष्णभक्ति करना तथा गुरु को कृष्ण के समान महत्त्व प्रदान करना इस सप्रदाय की विशेषता है। स्त्रियों के लिए गोपीभाव से कृष्ण-भक्ति करने का आदेश है। सायुज्ज-मुक्ति प्राप्त करना, गोलोक मे कृष्ण का सानिध्य प्राप्त करना ही भक्तों के लिए ध्येय माना गया। इस सप्रदाय का मत्र है "श्री कृष्ण शरण मम"। समर्पणभाव इस सप्रदाय का आधार-तत्त्व है। वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने चार-चार प्रमुख शिष्यो को चुन कर 'अष्टछाप' की स्थापना की थी। गोकुलनाथ की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' न इस सप्रदाय के प्रचार और प्रसार मे विशेष योग दिया। इस सप्रदाय के सर्वश्रेष्ठ एव लोकप्रिय कवि सूरदास हुए हैं।

गुजरात मे कृष्ण-भक्ति का विकास

एक किवदन्ती के अनुसार गुजरात मे कृष्ण-भक्ति का जन्म तभी हुआ होगा जब कृष्ण न गुजरात मे समुद्र मे स्थान बनाकर द्वारिका की स्थापना करके उसे अपनी राजधानी बनाया होगा। गुजरात मे द्वारिकाधीश रणछोड़राय के दो मुख्य मन्दिर हैं—एक द्वारिका मे और दूसरा डाकोर मे। सन् १४१७ ईस्वी मे अकित किये गये जूनागढ़ के गिरनार पर्वत के शिलालेख का आरम्भ 'माखन चोर दामोदर' की स्तुति से होता है।[१] सन् १४६६ में सौराष्ट्र के वाघेला वश के राजा मोकल सिंह ने भागवत सप्रदाय के अनुयायियों की रक्षा की थी यह इतिहाससम्मत तथ्य है[२] सन् १४१६ ईस्वी मे श्री नृसिंहारण्य मुनि द्वारा लिखे गये 'विष्णु-भक्ति चन्द्रोदय' नामक ग्रथ मे प्रतिपादित कृष्ण भक्ति ने भी कृष्ण के प्रचार मे अवश्य योग दिया होगा[३]। चौदहवीं और पद्रहवी शताब्दी मे रामानदजी का गुजरात मे काफी प्रभाव पाया जाता है[४]।

१, २, ३, ४ K. M Munshi, 'Gujrat and its Literature,' पृष्ठ ११६।
२

रामानुजाचार्य ने, जिनका समय सन् १००० के लगभग है, गुजरात की यात्रा की थी ऐसा उल्लेख मिलता है[१]। अतएव उनकी यात्रा का गुजरात की तत्कालीन जनता पर अवश्य ही प्रभाव पडा होगा। गुजरात मे राधावल्लभी सप्रदाय का विशेष आदर हुआ है। वल्लभ सप्रदाय का वहाँ सबसे अधिक प्रचार हुआ। व्रज के निकट होने के कारण व्रज मे विकसित होती रहने वाली कृष्णभक्ति का गुजरात मे प्रचार और प्रसार बराबर होता रहा। चैतन्य महाप्रभु ने सन् १५११ ईस्वी मे सौराष्ट्र की यात्रा करते हुए नरसिंह मेहता की जन्मभूमि जूनागढ मे रणछोड जी के मन्दिर म भगवान् के दर्शन किये ऐसा उल्लेख उनके सहयात्री गोविन्ददास जी ने अपनी एक रचना मे किया है[१]।

स्वामीनारायण सप्रदाय

सहजानन्द स्वामी द्वारा गुजरात मे प्रस्थापित स्वामीनारायण सप्रदाय ने भी कृष्ण भक्ति के विकास मे अपना विशेष योग दिया है, जो आज भी प्रचलित और लोकप्रिय है। इस सप्रदाय का अस्तित्व गुजरात के अतिरिक्त और कही नहीं पाया जाता। इस सप्रदाय म राधाकृष्ण की उपासना की जाती है। इस सप्रदाय की स्थापना सन् १८०४ ईस्वी के आसपास की गई थी। इसम मूर्ति के स्थान पर चित्रों की पूजा अधिक होती है। इस सप्रदाय मे चारित्र्य की शुद्धता और स्त्री-पुरुषो के सबन्ध की मर्यादा का विशेष आग्रह रखा जाता है। स्त्रिया और पुरुषों के मन्दिर भी इस सप्रदाय मे अलग अलग होते हैं। अहमदाबाद से बारह मील दूर जेतलपुर म स्वामीनारायण सप्रदाय की मुख्य गद्दी है[२]। यह सप्रदाय गुजरात का अपना विशिष्ट कृष्ण-भक्ति सप्रदाय है।

---

[१] J N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India', पृष्ठ २४५।

[२] K M Munshi 'Gujrat and its Literature', पृष्ठ १४६।

[३] J N Farquhar and H D Griswold, 'The Religious Quest of India', पृष्ठ ३१८।

अध्याय २

हिन्दी और गुजराती का कृष्ण-काव्य

कृष्ण काव्य की परपरा

कृष्ण-भक्ति के विकास पर विचार करते समय देखा गया कि साम्प्रदायिकता, दार्शनिकता एव धार्मिकता से पूर्ण अनेक रचनाएँ कृष्ण-सम्बन्धी लिखी गई। 'महाभारत', 'भागवत-पुराण', 'हरिवश-पुराण', 'विष्णु-पुराण', 'गोपाल पूर्वतापनीय उपनिषद', 'गोपालोत्तर तापनीय उपनिषद' इत्यादि अनेक कृष्ण-सम्बन्धी रचनाओं के विषय मे कृष्ण-भक्ति के विकास का दिग्दर्शन कराते समय ही पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कृष्ण-सम्बन्धी ग्रथो पर टीका-ग्रन्थ भी अनेक लिखे गये। प्रान्तीय भाषाओं मे भी मौलिक एव अनुवादो के रूप मे कृष्ण-साहित्य पर्याप्त मात्रा मे लिखा गया। इन सबमे केवल 'भागवत' के दशमस्कंध को ही अपेक्षाकृत शुद्ध-साहित्य के रूप म स्वीकार किया जा सकता है।

संस्कृत के अतिरिक्त अपभ्रश मे भी कृष्ण-काव्य की परपरा मिलती है। अपभ्रश मे कृष्ण-काव्य से सम्बन्धित ग्रथ 'हरिवश-पुराण' के नाम से मिलते है। सभवत ये रचनाएँ सुप्रसिद्ध पुराण ग्रथ 'हरिवशपुराण' के आधार पर की गई हैं। कुछ कृष्ण-काव्य अन्य नामो से भी उपलब्ध होते हैं। अपभ्रश के इन ग्र थो म स्वयभू कवि का 'रिट्ठनेमि चरिउ' (रिष्टनेमि चरित) जिसका रचनाकाल ८ वी शताब्दी बतलाया गया है, पुष्पदन्त का 'महा-पुराण' जिसका रचनाकाल १० वी शताब्दी माना गया है, धवलकवि का 'हरिवश पुराण' जो कि ११ वी शताब्दी की रचना मानी जाती है तथा सोलहवी शताब्दी मे लिखा गया यवि यश कीर्ति का 'हरिवश-पुराण' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपभ्रश के कृष्ण-कवियो मे स्वभू और पुष्पदन्त की रचनाएँ कुछ साहित्यिक मूल्य रखती हैं। 'रिट्ठनेमि चरिउ' मे कुछ तीर्थंकरो के जीवन के साथ-साथ कृष्ण-कथा का भी वर्णन है। इस ग्र थ मे वर्णित कृष्ण का रूप महाभारत से प्रभावित है, किन्तु साथ ही साथ जैन धर्म की मान्यताओ के अनुरूप वर्णन किये गये हैं। यादव-काण्ड, कुरु-काण्ड, युद्ध-काण्ड और उत्तर-काण्ड नाम के चार काण्डो मे कृष्ण चरित्र का वर्णन है।

अपभ्रश मे कृष्ण-काव्य को विकसित करने वाले महानुभावो मे पुष्पदन्त का

नाम विशेषरूप से प्रसिद्ध है। 'महापुराण' नामक ग्रंथ में इन्होंने कृष्णचरित्र का बड़ा मनोहर वर्णन किया है। कुल १२० संधियों में विभक्त इस ग्रंथ में ६३ महा-पुरुषों के जीवनचरित्रों का वर्णन है। कृष्णचरित्र का वर्णन १२ संधियों में किया गया है। इनका कृष्णचरित्र वर्णन संस्कृत के 'हरिवंश पुराण' से अत्यधिक प्रभावित है। गोकुल की लीलाओं के अंतर्गत इस ग्रंथ में कृष्ण की बाल्यावस्था एवं यौवना-वस्था की क्रीडाओं का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। कृष्ण कभी मथानी तोड़ देते हैं तो कभी दही का मटका नीचे लुढ़का देते हैं। वे कभी बछड़ों के साथ दौड़ने-उछलते है तो कभी हवा में दूध दुहने का अभिनय करते हैं। गोपियाँ भी टूटी हुई मथानी का मूल्य आलिगन के रूप में माँगती हैं। इस रचना में साहित्यिक सौन्दर्य पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होता है।

प्रान्तीय भाषाओं में तमिल प्रान्त के बाहर आलवार कवियों के कृष्ण-भक्ति के, प्रेमलक्षणा भक्ति एवं माधुर्यभावना से युक्त, पदों का महत्त्व असाधारण है। इन कवियों ने संस्कृत का माध्यम छोड़कर अपने प्रान्त की, सर्व साधारण की भाषा के माध्यम द्वारा कृष्णकाव्य का सृजन तथा कृष्ण-भक्ति का प्रचार करने का सर्वप्रथम एवं स्तुत्य प्रयास किया। संगीत के समन्वय के कारण इन्हें लोकप्रियता भी विशेष प्राप्त हुई। इन बारह कवियों में तिरुमल्लई, नामाल्लवार तथा आन्दाल का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। कवयित्री एवं महिला-भक्त आन्दाल का स्थान मीराबाई के समान सम्मानपूर्ण है। आलवार कवियोंके कृष्ण-काव्य का संग्रह नाथमुनि ने 'नालायीर प्रबन्धम' के नाम से किया है जिसमें कृष्णलीलागान के ४००० पद उपलब्ध होते हैं। ये आल-वार कवि 'भागवत पुराण' से स्पष्ट रूप से प्रभावित है क्योंकि इन कवियों ने भगवान् का गुणगान तथा लीलागान ठीक वैसे ही किया है जैसे 'भागवत-पुराण' में किया गया है।

संस्कृत में साहित्यिक रूप में प्रस्तुत होने वाली कृष्ण काव्य सम्बन्धी रचनाओं में कवि भास की 'बालचरित' नामक नाट्यरचना महत्त्वपूर्ण है। कवि भास का समय ईसा की तीसरी शताब्दी माना गया है। उमापति नाम के एक और उल्लेखनीय कृष्णकवि ग्यारहवीं शताब्दी में मिलते हैं। संस्कृत में सम्पूर्ण साहित्यिक सौष्ठव के साथ प्रस्तुत होने वाली कृष्ण साहित्य की प्रथम प्रसिद्ध रचना कवि जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' ही है।

जयदेव

कवि जयदेव ने ब्रजभाषा के कृष्ण-कवि सूरदास को, मैथिली भाषा के कृष्ण-कवि विद्यापति को, बंगाली के कृष्ण कवि चंडीदास को, गुजराती के कृष्ण कवि नरसिंह महता को, राजस्थान की कवयित्री मीराबाई को तथा अन्य अनेकानेक कृष्ण-कवियों

को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित किया है यह एक निर्विवाद तथ्य है। काव्यत्व के दृष्टिकोण से कृष्ण-काव्य का सूत्रपात कवि जयदेव के 'गीत गोविन्द' से ही मानना चाहिए।

जयदेव ने राजकवि के रूप मे बगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबार मे बडा आदर और यश प्राप्त किया था। राजा लक्ष्मणसेन के शासनकाल के आधार पर जयदेव का समय बारहवी शताब्दी माना गया है। राजा लक्ष्मणसेन के राज्याश्रय मे ही कवि जयदेव ने 'गीत गोविन्द' की रचना की होगी इसमे कोई सदेह नही। 'गीत गोविन्द' मे राधाकृष्ण के प्रेमोन्माद का, उनकी मधुर लीलाओ का तथा प्रेम की मादकता का बडा ही रसिक एव हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है। श्रुति मधुर कोमलकान्त पदावली की इनकी वर्णन शैली काव्य के सौष्ठव एव माधुर्य को अनेक गुणा बढा कर उसे प्रभावोत्पादक बनाती है। राधा की कल्पना पहली बार ही साहित्य मे जीवन्त, मधुर एव प्रेमपूर्ण रूप मे प्रस्तुत की गई। 'गीत गोविन्द' मे उसके वर्णन पढ कर पाठक प्रेमविभोर-आनन्दविभोर हो उठते है। प्रेम के बाणो की मधुर पीडा का वर्णन पाठक के चित्त मे भी एक मधुर टीस उत्पन्न करता है। कीथ ने 'गीत गोविन्द' की प्रशसा करते हुए यथार्थ ही कहा है कि 'गीत गोविन्द' की पदावली इतनी मधुर और भावो के अनुकूल है कि उसका अनुवाद अन्य किसी भाषा मे करना असम्भव ही है[१]। सस्कृत के गीति-काव्य और कृष्ण-काव्य मे 'गीत गोविन्द' अद्भुत, अद्वितीय एव अमर है। यमक, अनुप्रास इत्यादि अलकारो के प्रयोग का ऐसा कौशल तथा ऐसी मार्मिक भावाभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है। यद्यपि इस काव्य म आध्यात्मिकता या दार्शनिकता की विशेष छाप नही है, तथापि कुछ विद्वान् आध्यात्मिकता का चश्मा चढा कर इसमे वर्णित लौकिक शृगार मे आध्यात्मिक सकेत देखने का मिथ्या प्रयत्न करते हैं। कवि जयदेव ने सस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी मे भी कविता की है ऐसा अनुमान है। परन्तु हिन्दी की कविता मे वे अपना वह काव्य कौशल नही दिखला सके हैं जो 'गीत गोविन्द' मे प्रारभ से अन्त तक स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। 'गुरुग्रन्थ साहब' मे उनके दो एक हिन्दी पद मिलते है जो भाषा और भाव की दृष्टि से अत्यन्त साधारण हैं। उनकी हिन्दी रचना है भी बहुत कम। 'गीत गोविन्द' के कारण ये बाद के कृष्ण-कवियो के लिए प्रेरणास्थान एव आधार स्वरूप बने। उनका सबसे अधिक प्रभाव विद्यापति पर ही ज्ञात होता है। कृष्ण-काव्य की परपरा मे जयदेव के पश्चात् विद्यापति का ही नाम लिया जा सकता है, जिन्हे इस क्षेत्र मे सम्मानपूर्ण स्थान मिला हुआ है।

---

१ Keith, 'A History of Sanskrit Literature', पृष्ठ १९६।

विद्यापति

विद्यापति ने मैथिली में बड़े ही सुन्दर, सरस और मधुर पद लिखे हैं। सीमा-प्रान्त के कवि होने के कारण इनके पद बंगाली में भी पाठ भेद के साथ मिलते हैं और इसीलिए कुछ वर्ष पूर्व, जब कि राजकृष्ण मुकर्जी और डा० ग्रीयर्सन ने इस विषय में खोज-बीन करके प्रकाश नहीं डाला था, बंगाली लोग इन्हें बंगाली कवि ही मानते थे। कवि विद्यापति संस्कृत के भी प्रकाण्ड पंडित थे। विद्यापति ने मैथिली के अतिरिक्त संस्कृत में तथा अवहट्ट में भी रचनाएँ की हैं। संस्कृत में इनकी दस-ग्यारह रचनाएँ मिलती हैं। अवहट्ट में इन्होंने 'कीर्तिलता' तथा 'कीर्तिपताका' नामक दो रचनाएँ की हैं। 'कीर्तिलता' की भाषा के लिए कवि ने स्वयं कहा है

"देसिल बतना सब जन मिट्ठा। तें तैसन जपओ अवहट्टा॥" अर्थात्, देशी भाषा सब को मधुर प्रतीत होती है और इसीलिए मैं उसी प्रकार के देशी भाषा से मिले हुए अपभ्रंश का प्रयोग करता हूँ।[१]

मैथिली में लिखी गई पदावली नामक रचना वास्तव में कोई स्वतंत्र रचना नहीं है, अपितु जीवन भर में लिखे गये उनके पदों का संग्रह है। इन्हीं पदों में भगवान् शंकर, देवी दुर्गा, गंगा इत्यादि की स्तुति तथा काल सम्बन्धी पदों के अतिरिक्त राधा-कृष्ण सम्बन्धी पद भी पर्याप्त मात्रा में हैं। इन पदों में राधा कृष्ण के उन्मुक्त प्रेम की तन्मयता का बड़ा ही मनोहर वर्णन मिलता है। कवि विद्यापति के राधा-कृष्ण-सम्बन्धी पदों को भक्तिपरक माना जाय या केवल शृंगारिक समझा जाय यह एक बहुत बड़ा विवादग्रस्त विषय हो गया है। इनके राधा-कृष्ण-सम्बन्धी पदों को सुन कर चैतन्य महाप्रभु भक्ति के भावावश में बेसुध हो जाते थे इस बात को ले कर कई विद्वानों ने यह सिद्ध करना चाहा है कि विद्यापति के इस प्रकार के पदों में भक्ति भावना ही मुख्य है। परन्तु वास्तव में चैतन्य महाप्रभु की अपनी भक्ति भावना तीव्र होने के कारण ही तथा सन्तस्वभाव के अनुसार वारि विकार को तज कर पय-गुण ग्रहण करने की प्रवृत्ति प्रबल होने के कारण ही, वे इनके पदों को सुन कर भक्ति भावना में विभोर होकर लोट-पोट हो जाते यह अधिक संभव है। उनमें राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना रही हो और उसी को उन्होंने अपने पदों में अभिव्यक्त करना चाहा हो यह संभव है, किन्तु शृंगारिकता ने उनकी भक्ति-भावना और उसे प्रकट करने की उनकी इच्छा पर बहुत बड़ा आवरण डाल दिया है। इसे अब निर्विवाद तथ्य के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। उनका शृंगार-वर्णन अद्भुत एवं अनुपम है इसमें कोई संदेह नहीं। उद्दीपन के रूप में किया गया प्रकृति-वर्णन भी बड़ा मनोहर है। शृंगाररस का माधुर्य, श्रुतिमधुर संगीत-योजना के कारण अनेक गुणा बढ़ गया है।

---

[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ५।

विद्यापति को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई थी और इसका सबसे बडा कारण चैतन्य महाप्रभु के द्वारा इनके पदो का प्रचार होना ही है[1]। विद्यापति की लोकप्रियता का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्हे प्रशसको से अनेक उपाधियाँ मिली, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

१ कविवर	६ अभिनव जयदेव
२ सुकवि	७ नवकवि शेखर
३ कविरजन	८ खेलन कवि
४. कविकण्ठहार	९ कवि रतन
५. मैथिल-कोकिल	१० सरस कवि

इनकी कविता अत्यन्त श्रुतिमधुर, मजुल एव भावविभूषिता है। और राधा-कृष्ण के प्रेम की तन्मयता का इनका वर्णन मन को मुग्ध कर देने वाला है।

हिन्दी मे कृष्ण-काव्य का विकास मुख्य रूप से ब्रजभाषा मे ही हुआ। ब्रजभाषा मे कृष्ण-काव्य का विकास होने का समस्त श्रेय वल्लभाचार्य को दिया जाना चाहिए क्योकि उन्ही से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर तथा उनके 'पुष्टिमार्ग' मे दीक्षित हो कर अनेक कृष्णभक्तो ने कृष्ण-काव्य की रचना की। महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने 'पुष्टिमार्ग' के चार-चार प्रमुख कृष्णभक्तो को अपने विशेष शिष्य बना कर जिस 'अष्टछाप' की स्थापना की उसके आठो कृष्ण-भक्तों ने ऐसे सुन्दर और उत्कृष्ट कृष्ण-काव्य का सृजन किया जिससे बाद के अनेक कृष्ण कवियो को कृष्ण-काव्य के सृजन के लिए प्रेरणा मिली।

ब्रजभाषा का कृष्ण-काव्य महाकवि सूरदास से प्रारभ होता है, जिन्हें ब्रजभाषा के वाल्मीकि कहना कोई अतिशयोक्ति नही। सूर-साहित्य की विशेषताओ का चौथे अध्याय मे विस्तार के साथ अध्ययन किया जायगा, अतएव उन्हें छोडकर अन्य कृष्ण-कवियो के कृष्ण-काव्य का सक्षेप मे विहङ्गावलोकन किया जाय।

नन्ददास

सूरदास के पश्चात् साहित्यिक महत्त्व के दृष्टिकोण से नन्ददास का स्थान है, जो गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। उनकी कुल १६ रचनाओ मे से कुछ मुख्य एव ख्यात-रचनाओ के नाम निम्न प्रकार हैं —

१ विरहमजरी	४ श्याम सगाई
२ रसमजरी	५ रास पचाध्यायी
३. रुक्मिणी मगल	६ भवरगीत

---

१ प्रोफेसर जनार्दन मिश्र, 'विद्यापति' पृष्ठ ३२।

नन्ददास अपनी काव्य-रचना और शैली के लिए जयदेव की कोमलकान्त पदावली तथा मैथिल कोकिल विद्यापति की पदावली से अवश्य प्रभावित हुए। इन्होंने अपनी रचनाओं मे रस और भावो की सृष्टि बडी सुन्दरता, सरसता एव मधुरता के साथ की है। रस मे उन्होंने मुख्यत रसराज शृङ्गार, करुण तथा शातरस का ही विशद ढग से वर्णन किया है। भावनिरीक्षण, रस निरूपण तथा भावाभिव्यक्ति-कौशल इनकी रचनाओं मे सर्वत्र झलकता है। इन्होने चित्त की गूढतम वृत्तियो को अतर्दृष्टि से देखा और मधुर एव मजुल शब्दावली मे कलात्मक ढग से सुसज्जित किया। इनके सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि 'और कवि गढिया, नन्ददास जडिया।' भाव-चित्रण तथा भाषा-माधुर्य की जैसी सफलता नन्ददास को मिली है वैसी परमानन्ददास को तो मिली ही नही है। कदाचित् सूरदास और तुलसीदास को भी अपनी कुछ ही पक्तियों मे मिली हो।[१] इनका प्रकृति-वर्णन भी बडा ही अद्भुत है एव अनुपम है जो स्वतत्र रूप मे, उद्दीपन के रूप मे तथा अलकारो के रूप मे मिलता है। डा० दीनदयालु गुप्त के अनुसार केवल पदलालित्य और भाषा-माधुर्य की दृष्टि से देखा जाय तो नन्ददास अपने कुछ चुने हुए ग्रन्थो की भाषा के कारण अष्टछाप के कवियो मे प्रथम स्थान पाते हैं।[२] कृष्ण-काव्यों को विकसित करने वाले कवियो मे नन्ददास का अपना विशिष्ट एव महत्त्वपूर्ण स्थान है इस विषय मे दो मत हो नही सकते।

परमानन्ददास

परमानन्ददास महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे और 'अष्टछाप' के कवियों मे साहित्यिक महत्व के दृष्टिकोण से सूरदास के पश्चात् इन्ही को स्थान दिया जाना चाहिए, ऐसा डा दीनदयालु गुप्त का आग्रह है[३]। महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षित होने के पूर्व ही इनके मन की वृत्ति वैराग्यमयी थी और तभी से वे एक सफल और लोकप्रिय कवि तथा गायक के रूप मे प्रसिद्ध हो गए थे[४]। परमानन्ददास जीवन भर अविवाहित और अपरिग्रही रहे। ये बडे दृढ-सकल्प थे क्योकि माता-पिता के आग्रह करने पर भी ये विवाह के लिए टस से मस नहीं हुए। इनके काव्य की प्रशसा करते हुए गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने स्वय कहा था—'ये पुष्टि मार्ग मे दोइ सागर भये—एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास'[५]। इनका विरह वर्णन बडा ही मर्मस्पर्शी है।

---

१ डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय', पृष्ठ ८६३।
२ डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' पृष्ठ ८६५।
३ डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' पृष्ठ २१६।
४ डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' २२०।
५ डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' २२१ (उद्धरण)

इन्होंने राधाकृष्ण सम्बन्धी सैकडो पद लिखे हैं। इन्होंने कृष्णलीला के सरल एव मर्मस्पर्शी प्रसगो को ही कविता का विषय बनाया है इनकी भाषा सरल और भावानुकूल तथा शैली सरस और रस के अनुरूप होने के कारण इनके वर्णन बडे ही सजीव एव हृदयस्पर्शी प्रतीत होते है। 'अष्टछाप' के कवियो मे इनका स्थान सूरदास और नन्ददास के समान ही महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए।

'अष्टछाप' के अन्य ५ कवियो की नामावली उनकी प्रमुख रचनाओ के साथ इस प्रकार है —

१ कृष्णदास ... भ्रमरगीत, प्रेमतत्वनिरूपण।
२. कुभनदास .. केवल फुटकल पद मिलते हैं।
३ चतुर्भुजदास ... द्वादशयश, भक्तिप्रताप, हितजूको मगल।
४. छीतस्वामी .. स्फुट पद ही उपलब्ध होते हैं।
५. गोविन्दस्वामी . केवल फुटकल पद ही प्राप्त होते है।

'अष्टछाप' के कवियो की कृष्ण-काव्य को जो देन है वह असाधारण है। कृष्ण-काव्य का प्रारभ और उसका श्रेष्ठतम विकास इन्ही कवियो की रचनाओ मे देखा गया।

हितहरिवश

राधावल्लभ सप्रदाय के प्रवर्त्तक गोसाई हितहरिवशजी ने तथा इस सप्रदाय के अन्य अनेक कवियो ने कृष्ण-काव्य को पर्याप्त रूप से विकसित किया। श्री हितहरिवश जी के पदों का सग्रह 'हित चौरासी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे राधाकृष्ण सबधी ८४ पद है जो बडे ही मनोहर, श्रुतिमधुर एव हृदय को छूने वाले है। राधावल्लभ सप्रदाय के सिद्धान्त सम्बन्धी भी इनके अनेक फुटकल पद मिलते हैं। सस्कृत मे इन्होने 'राधासुधानिधि' नामक २७० श्लोको का स्तोत्र-काव्य लिखा है। इनका ब्रजभाषा काव्य बडा ही चित्रात्मक है, जो भावानुकूल भाषा और रसानुरूप शैली के कारण अत्यत मनोहर एव मार्मिक प्रतीत होता है। इनकी कविता मे सगीत का समन्वय अपने मधुरतम रूप मे है। इसीलिए ये कृष्ण की मुरली के अवतार माने जाते थे। श्री विजयेन्द्र स्नातक ने अपने ग्रथ 'राधावल्लभ सप्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य' मे इनकी कविता के सबध मे यथार्थ ही लिखा है कि "काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से इनके साहित्य का मूल्याकन नही हुआ। फलत हिन्दी साहित्य के इतिहास मे हितजी का सम्प्रदाय-प्रवर्तक के रूप में नामोल्लेख मात्र ही उपलब्ध होता है। भक्तकवि के रूप मे उन्हें उचित सम्मान नही दिया जाता। हमारी यह निश्चित धारणा है कि यदि हित-हरिवशजी के ब्रजभाषा-साहित्य का विधिवत् अध्ययन-अनुशीलन किया जाय तो वह काव्य सौष्ठव तथा माधुर्यभाव का श्रेष्ठतम साहित्य सिद्ध होगा[१]।

---

१ विजयेन्द्र स्नातक, 'राधावल्लभ संप्रदाय' पृष्ठ ३४७।

राधावल्लभी सम्प्रदाय के अन्य कृष्ण कवियो की नामावली उनकी प्रमुख रचनाओं के साथ निम्न प्रकार है —

	कवि	रचना
(१)	श्री दामोदरदास (सेवकजी)	सेवकवाणी
(२)	श्री हरिराय व्यास	व्यासवाणी रागमाला
(३)	श्री चतुर्भुजदास	द्वादशयश, भक्तिप्रताप यश हितजू को मगल तथा फुटकल पद
(४)	श्री ध्रुवदास ..	वृन्दावन सत लीला, भजन शृगार-सतलीला इत्यादि ४२ ग्रंथ
(५)	श्री नेही नागरीदास	सिद्धान्त दोहावली, पदावली, रस पदावली
(६)	श्री कल्याण पुजारी	फुटकल पद
(७)	श्री अनन्य अली	कुल ७६ ग्रंथ अलग अलग लीलाओ के नाम से
(८)	श्री रसिकदास	प्रमादलता रसकदम्ब चूडामणि भाग २ रतिरगलता, माधुयलता इत्यादि २२ ग्रंथ
(९)	श्री वृन्दावनदास	लाडसागर रसिकपथ चन्द्रिका आर्त-पत्रिका व्रज प्रमानन्द सागर इत्यादि

मीराबाई

काव्यत्व की लोकप्रियता की एव एकमात्र कवयित्री होने के गौरव की दृष्टि से मीराबाई का स्थान व्रजभाषा के कृष्ण काव्य मे अत्यन्त सम्मानपूर्ण एव महत्वपूर्ण है। इनकी प्रसिद्ध रचनाए निम्न प्रकार हैं —

१ नरसी का मायरा ३ राग गोविन्द
२ गीत-गोविन्द टीका ४ राग सोरठ

इनकी कविता व्रजभाषा के अतिरिक्त राजस्थानी और गुजराती मे भी मिलती है। इनकी वाणी का गुजरात और राजस्थान मे बहुत आदर है। गुजराती साहित्य

के कृष्ण काव्य के इतिहास मे इनका स्थान नरसिंह मेहता के बाद दूसरा है। इनका प्रेम वर्णन और श्रृंगार वर्णन अत्यंत पवित्र और दिव्य है। इनके मधुर एवं मार्मिक पदो मे इनकी तीव्रानुभूति पूर्णरूपेण प्रस्फुटित होती है। इनके पदो ने भाषा की सरलता और शैली की सरसता के साथ सगीत की मधुरता के समन्वय के कारण अत्यंत लोकप्रियता पाई।

व्रजभाषा के अन्य उल्लेखनीय कृष्ण-कवियो के नाम उनकी रचनाओ के साथ निम्न प्रकार है —

	कवि	रचना
(१)	छीहल	पचसहेली
(२)	लालदास	हरिचरित्र भागवत दशमस्कध भाषा
(३)	श्री गदाधर भट्ट	स्फुट पद
(४)	कृपाराम	हिततरगिणी
(५)	सूरदास मदनमोहन	स्फुट पद
(६)	नरोत्तमदास	सुदामा चरित
(७)	हरिराय	वर्षोत्सव
(८)	ललीर	डगौपद
(९)	गोविन्ददास	एकान्त पद
(१०)	स्वामी हरिदास	स्फुट पद
(११)	मुबारक	अलकशतक तिलशतक
(१२)	रसखान	प्रेमवाटिका सुजान रसखान
(१३)	सुन्दरदास	सुन्दर श्रृंगार
(१४)	सुखदेव मिश्र	अध्यात्म प्रकाश
(१५)	हरिवल्लभ	भगवद् टीका
(१६)	जगतानन्द	व्रजपरिक्रमा उपाख्यान सहित दशम स्कध
(१७)	विट्ठलनाथ	श्रृंगार मडन
(१८)	गोकुल नाथ	वैष्णवो की वार्ता
(१९)	बलभद्र मिश्र	गोवधन सतसई टीका दूषण विचार
(२०)	श्री भट्ट	युगलशतक

भक्तिकाल के कृष्ण काव्य की हिन्दी साहित्य की सबसे बडी देन यही रही कि इसमे वर्णित श्रृङ्गार रस ने काव्य के कलात्मक रूप की सृष्टि की जिसने बाद म

आने वाले रीतिकाल की नींव डाली। भक्तिकाल का कृष्ण-काव्य उच्च कोटि का काव्य है, जिसके द्वारा कवियों ने अपनी कल्पना शक्ति, काव्य शक्ति तथा कृष्ण-भक्ति का परिचय दिया।

कृष्ण-काव्य रचने की प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल रीतिकाल में भी पाई जाती है। परन्तु रीतिकाल के कृष्ण-काव्य में केवल राधा कृष्ण के प्रेम, सौन्दर्य और शृङ्गार को ही प्रधानता प्रदान की गई और भक्ति तत्व तो गौण होते-होते बिल्कुल अदृश्य हो गया। राधा और कृष्ण अब शृंगारिक कविता के आलम्बन मात्र रह कर नायक-नायिका के रूप में दिखलाये जाने लगे। कहीं कहीं भक्ति भावना मिलती भी है तो वह विलासमयी शृंगारिक भावनाओं के आवरण मात्र के रूप में।

यहाँ रीतिकालीन कृष्ण-काव्य पर संक्षेप में विचार किया जाय। केवल एक ही रचना के आधार पर अमर प्रसिद्धि पाने वाले रीतिकाल के सर्वोत्कृष्ट, सर्वप्रिय और प्रतिनिधि कवि बिहारी की 'बिहारी सतसई' में राधा-कृष्ण के संयोग वियोग का वर्णन बड़े अनूठे और मार्मिक ढंग से किया गया है। उनका मंगलाचरण का दोहा राधा की स्तुति और भवबाधाएँ हरने के कवि के निवेदन के रूप में मिलता है। इनके कुछ दोहों में भगवान् कृष्ण से मुक्ति के लिए विनय की गई है। ऐसे दोहों में कृष्ण-भक्ति पूर्णरूपेण अभिव्यक्त हुई है। इनकी कविता भी शृङ्गार मानी गई है और कविता का कलापक्ष इनकी कविता में अत्यन्त निखरे हुए रूप में देखने को मिलता है। राधा-कृष्ण-सम्बन्धी जिनकी रचनाएँ मिलती हैं ऐसे रीतिकाल के कवियों की नामावली उनकी रचनाओं के साथ निम्न प्रकार है —

कवि	रचना
(१) देव	राधाविलास
(२) कालिदास त्रिवेदी .	राधा-माधव-बुध मिलन-विनोद
(३) बीर .	कृष्णचन्द्रिका
(४) तोषनिधि	विनयशतक, नखशिख
(५) रघुनाथ .	रसिकमोहन, जगतमोहन
(६) सोमनाथ	कृष्णलीला पंचाध्यायी
(७) मनीराम मिश्र	आनन्द मंगल (भागवत के दशम-स्कंध का पद्यानुवाद)
(८) कुमारमणि भट्ट	रसिकरसाल
(९) चंदन ...	कृष्ण-काव्य
(१०) बेनी प्रवीन	शृङ्गार भूषण, नवरस तरंग
(११) जसवंत सिंह	शृङ्गार शिरोमणि
(१२) देवकीनन्दन	शृङ्गार चित्र

(१३) महाराज रामसिंह	....	रसनिवास
(१४) पद्माकर भट्ट	....	जगद्विनोद
(१५) ग्वाल कवि ...	....	गोपीपच्चीमी, कृष्णजू को नख-शिख, रसरग, भक्तभावन, रसिकानद
(१६) प्रतापसिंह	...	शृङ्गार मजरी, शृङ्गार शिरोमणि
(१७) रसिक गोविन्द	....	अष्टदेश भाषा (इसमे आठ बोलियो मे राधाकृष्ण की शृङ्गार लीला का वर्णन है,) समय प्रबन्ध (इसमे राधाकृष्ण की ऋतुचर्या का वर्णन है), युगलरसमाधुरी (इसमे राधाकृष्ण के विहार का वर्णन है)
(१८) श्रीधर या मुरलीधर	....	कृष्णलीलाओ के स्फुट पद्य
(१९) घनानन्द	....	सुजान सागर, विरहलीला, रसकेलिविल्ली, कवित्त सवैयो के फुटकल सग्रह
(२०) नागरी दास	....	गोपीप्रेमप्रकाश, रासरसलता, कृष्णजन्मोत्सव कवित्त, प्रिय जन्मोत्सव कवित्त, बालविनोद, निकुज विलास इत्यादि ७३ ग्रथ,
(२१) भगवतरसिक....	....	कृष्ण भक्ति के स्फुट पद्य
(२२) हठीजी ..	....	राधासुधाशतक
(२३) ब्रजवासीदास	....	ब्रजविलास
(२४) गोकुलनाथ, (२५) गोपीनाथ और (२६) मणिदेव	...	इन तीन कवियो ने मिल कर समग्र 'महाभारत' और 'हरिवश-पुराण' का अनुवाद किया है जिसे आचार्य शुक्ल जी ने कथा प्रबन्ध का अद्वितीय काव्य माना है।[१]

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ २६८।

गोकुलनाथ की अन्य रचनाएँ।		गोविन्द सुखद विहार, राधाकृष्ण विलास, राधा-नखशिख इत्यादि
(२७) कृष्ण दास ...	...	माधुर्य लहरी
(२८) नवलसिंह कायस्थ	...	व्रजदीपिका, रासपचाध्यायी, रसिकरजनी
(२९) चन्द्रशेखर ...	....	वृन्दावनशतक, हरिभक्ति विलास,
(३०) बाबा दीनदयाल गिरि	...	अनुराग बाग
(३१) गिरिधर दास	.	जरासधवध, रसरत्नाकर
(३२) द्विजदेव ...	...	शृङ्गारलतिका, शृङ्गार बत्तीसी

रीतिकाल के कवियो की रचनाओ मे कृष्णभक्ति गौण है और शृगारिकता अधिक। इन रचनाओ मे भाषा की सुन्दरता, भावो की मधुरता तथा शैली की सरसता पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है।

आधुनिक काल मे भी कृष्ण-काव्य की परपरा कुछ दिनो तक बराबर चलती रही—विशेषत: तब तक, जब तक कि कविता के लिए व्रजभाषा के प्रयोग का आग्रह होता रहा। आधुनिक काल मे व्रजभाषा कृष्ण काव्य करने वाले कवियो मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्री जगन्नाथ रत्नाकर तथा श्री वियोगी हरि प्रमुख और प्रसिद्ध हैं। भारतेन्दुजी के कृष्ण सम्बन्ध पदधी बडे ही मधुर है। रत्नाकरजी की 'उद्धवशतक' रचना साहित्यिक व्रजभाषा की श्रेष्ठ रचना है, जिसमे कवि की कलात्मक एव चमत्कारपूर्ण शैली का परिचय मिलता है। इनकी राधाकृष्ण सबधी फुटकल रचना भी मिलती हैं। श्री वियोगी हरि व्रजभूमि, व्रजभाषा तथा व्रजेश्वर के परम प्रेमी हैं। इन्होने अधिकतर पुराने कवियो की पद्धति पर बहुत से रसीले तथा भक्तिभावपूर्ण पदो की रचना की है, जिन्हे सुन कर आज के रसिक भक्त भी 'बलिहारी है' कहे बिना नही रह सकते। इनकी इस प्रकार की रचनाएँ 'प्रेमशतक', 'प्रेमाजलि' आदि मे मिलती हैं।[1]

खडी बोली मे भी अयोध्यासिह उपाध्याय की 'प्रियप्रवास' तथा मैथिलीशरण गुप्त की 'द्वापर' नामक कृष्ण-काव्य की सुन्दर रचनाएँ मिलती हैं।

हिन्दी के समस्त कृष्ण-काव्य का अध्ययन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि हिन्दी का कृष्ण-काव्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है जिसमे सूरदास सूर्य के समान द्युतिमान रत्न-सदृश हैं।

गुजराती का कृष्ण-काव्य

गुजराती भाषा का कृष्ण-काव्य अपनी प्रारभिक अवस्था मे लोक गीतों के रूप मे

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ५८९।

पाया जाता है, जो सौराष्ट्र के प्रचलित एवं प्रसिद्ध रास-गरवा-नृत्य के साथ-साथ गाये जाते रहे होंगे। इन लोकगीतों में गोपालकृष्ण नायक के रूप में चित्रित किये गये हैं, कामदेव से भी सुन्दर स्वरूप में वर्णित किये गये हैं और प्रेम तथा शृंगारिक भावना का केन्द्र बनाए गए हैं, जिनकी प्रेमिका के रूप में राधा की कल्पना प्रस्तुत की गई है [१]। रासनृत्य की लोकप्रियता ने उसे मेलों और धार्मिक उत्सवों में विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। मदनोत्सव दोलोत्सव, इत्यादि मनाये जाने लगे, जिनमें कृष्ण सम्बन्धी लोकगीतों को रास के साथ गाया जाता था। रास के इतिहास के सम्बन्ध में शाङ्‌र्गधर नाम के कवि ने लिखा है कि सौराष्ट्र की स्त्रियों को बाण की पुत्री उषा ने यह नृत्य सिखलाया था। जिसने स्वयं आद्याशक्ति पार्वती से यह सीखा था। रास-सम्बन्धी उपलब्ध होने वाले 'सप्तक्षेत्री' रास नामक तेरहवीं शताब्दी की रचना में ताल-रास तथा लकुट-रास-इन दो प्रकारों का वर्णन किया गया है, जो दोनों प्रकार आज भी गुजरात में प्रचलित, प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। रास के साथ गाये जाने वाले गीत रासक कहलाए। वसन्त में गाये जाने वाले रासगीत फाग कहलाए। पन्द्रहवीं शताब्दी के नरर्षि नाम के कवि के रास-गीत तथा फाग साहित्य में गुजराती के कृष्ण-सम्बन्धी साहित्य का प्रथम लिखित स्वरूप पाया जाता है। इसके दो-एक उदाहरणों का अध्ययन किया जाय —

रासक

श्रेष्ठ ग्राम्यसुन्दरी राधा ने गोपियों के साथ आकर भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की कि 'देखो दसों दिशाओं ने आज नया रूप धारण किया है। हे कृष्ण, कामदेव आप से गले मिलने आ रहे हैं। हे भगवान् मुरारी, आइये भी।' राधा के इस प्रेम-निवेदन को सुनकर भगवान् कृष्ण हर्षित हुए और उन्होंने अपने गोप-मित्रों की ओर देखा। राधा-के प्रेमनिवेदन को स्वीकार करके यादव गोपमित्रों के साथ वन की ओर चले। राधा और गोपियाँ बेचारी अपने शोभा-भार के कारण झुक-झुक कर मन्थर गति से चलती हैं और इसलिए गजगामिनी प्रतीत हो जाती है। पैरों के नुपूर मधुर शब्द करते हैं और केशों के आभूषण चमकते रहते हैं। उनकी गुथी हुई मोटी-मोटी चोटियों में मानो नाग छिपे हैं। उनके ओठों का रंग परवल के समान लाल है [२]।

---

१ K. M. Munshi, 'Guga and its Literature', पृष्ठ ८७।

२ "वणतरि आविय प्रभु विनविउ, नवि दमइ दिसारी रे।
माधव माधव भेटखे आवइ, आवित देव मुरारी रे॥
वात सुणि प्रभुमणि अति हरखिय, निरखिय गृहपरिवार रे।
निज परिवार इ जादव पुहुतु, पहुतु वनह मझारि रे॥
पय भरि नमती तरुणी कम्पी, वरणी चरण संचार रे।

हांदोल

गोपियाँ नाच रही हैं, मधुर मृदंग ताल दे रहा है और कृष्ण मुरली बजा रहे हैं। पूरी लचक के साथ शरीर को झुका कर—घुमा कर गोपियाँ तालबद्ध रूप से नृत्य कर रही हैं। उनके हाथों में कमल-नाल है, जिन्हें वे नृत्य के साथ साथ मस्तक के दोनों तरफ हिला रही हैं। उनकी इस क्रिया में भी तालबद्धता है। जिस प्रकार तारक-समूह में चन्द्र चमकता है, ठीक उसी प्रकार गोपियों के मध्य में कृष्ण सुन्दरतम प्रतीत होते हैं। मनुष्य, देवता और इन्द्र भी उन्हें प्रणाम करते हैं [१]।

फागु

गोपियों के साथ कृष्ण वन विहार करते हैं। वायु से प्रेरित हो कर सारा वन उन्हें प्रणाम करता है [२]।

*नर्षि के कृष्ण-काव्य के अतिरिक्त अज्ञात कवि कृत 'नारायण फागु' कवि सोनी-*राम कृत 'वसन्तविलास' और कवि चतुर्भुज कृत 'भ्रमरगीता फाग' इत्यादि कृष्ण-काव्य संबंधी कुछ अन्य रचनाएँ भी मिलती हैं [३]।

चालइ चम्कत झमकत नेउर, केउर कटक विशाल रे॥
वेणिय वयणि मिफतरी, भिनरि रहिउ सिरि नाग रे।
अधररग परवालिन　　　　"

—K. M. Munshi, 'Gujrat and its Literature', P. 91—92।

१　"नाचइ गोपिय वृन्द मधुर मृदंग।
मोटइ अग सुरग, सारगधर वाइन महयरिए, मुलतय, मद्धयरिए॥
कर लिइ पकज-नाल, सिरि वरि फेरइ बाल।
दुन्दिहि वाजइ ताल, सारगधर
तारा महि जिमि चद, गोपिय माह मुकुद।
पणमइ सुर नर इद, सारगधर।"

—K. M Munshi, 'Gujrat and its Literature', Page 92।

२　गोपिय गोपति बल्लि, हीडइ वनह मझारि।
मारुल प्रेरित वन भर नमइ मुरारी।'

—K M Munshi, 'Gujrat and its Literature', Page 92।

३ रमणभाइ पटेल, 'गुजराती साहित्य' - भाग १, पृष्ठ २३।

चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से गुजरात में पुराणों का प्रचार होने लगा। कृष्ण-काव्य के विकास में इस प्रचार का विशेष योग रहा होगा यह निश्चित है। 'भागवत-पुराण', वोपदेव कृत 'हरिलीलामृत' जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' आदि रचनाओं ने गुजराती के कृष्ण काव्य को प्रभावित करके, उसकी लोकगीतों की परम्परा को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया। सन् १४१७ में अंकित किये गये गिरनार पर्वत के शिलालेख का आरम्भ 'माखनचोर दामोदर' की स्तुति के साथ होता है। सन् १४६६ में वाघेला वंश के राजा मोकल सिंह ने भागवत सम्प्रदाय के अनुयायियों की रक्षा की थी, यह इतिहास-सम्मत तथ्य है।

ईसा की चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी गुजरात के लिए पौराणिक आख्यानों का युग बन गई थी। गुजरात के पौराणिक आख्यान-साहित्य की रक्षा गागरिया भट्टों ने की जो कथावाचक थे और जिन्हें गुजरात में अपने समय में अत्यंत लोकादर प्राप्त था। गुजरात के आख्यान-काव्य के जन्मदाता कवि भालण माने गये हैं।

भालण

कवि भालण गुजरात के आख्यान-काव्य के पिता के रूप में प्रसिद्ध है। उनका समय अनुमानतः सन् १४२६ से १५००ईस्वी तक का माना जा सकता है। उनकी रचनाओं को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इन्होंने महाकाव्यों और पुराणों का गहरा अध्ययन किया होगा। आख्यान-काव्य लिखने का अपना उद्देश्य भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया है। अपनी एक रचना में वे कहते हैं कि 'भावुक लोग, जो पुराणों के प्रेमी और प्रशंसक है, पुराणों को पढ़ना-सुनना चाहते है, किन्तु जिनकी इच्छा अधूरी रह जाती है, उन्हीं के लिए मैं भाषा में आख्यान लिख रहा हूँ।' कृष्ण-जीवन सम्बन्धी इनके निम्न आख्यान-काव्य प्रसिद्ध हैं—

१ कृष्ण बालचरित
२ दशम स्कंध
३ रुक्मिणी हरण
४ सत्यभामा विवाह
५ कृष्णविष्टि

एक स्थान पर यह निर्देश किया जा चुका है कि रास के साथ गाया जाने वाला काव्य 'रासक' कहलाता था। 'रासक' को ही बाद में 'गरबा' कहा जाने लगा और गरबा के साथ गाई जा सके ऐसी कविता को 'गरबी' नाम दिया गया। कवि भालण ने अपने कृष्णकाव्य में गरबियों का ही विशेष रूप से प्रयोग किया, जिसके कारण इन्हें लोकप्रियता भी अधिक प्राप्त हुई। इनकी काव्य-पद्धति की नकल बाद के कवियों ने बराबर की।

'कृष्ण बाल चरित' की एक गरबी मे माता यशोदा की ममता और विरह-व्यथा का बडा ही मधुर एव मार्मिक वर्णन किया गया है। वे मथुरा गये हुए कृष्ण से कहती हैं—"मेरे प्यारे और मीठे माधवजी, (कृष्ण) मेरे घर आओ। हे परमानन्द, मैं तुम्हे प्रेमपूर्वक परोसूँगी। तुम चावल और दूध का कलेवा करना। मथुरा मे तुमने बहुत ऋद्धि पाई है और तुम्हारा प्रताप भी बढा हुआ है। किन्तु एक बात निश्चित जानो कि मेरे जैसा प्रेम तुम्हें कोई नही दे सकेगा। स्तनपान करा के जैसे मैं तुम्हे हृदय से लगाती थी, वैसे देवकी नही लगायेगी। उस समय मेरा शरीर जिस प्रकार रोमाचित होता था, उस प्रकार उसका कभी नही होगा। लेकिन अब मैं तुम्हारी माता नही, धाय-मात्र हूँ। मैंने तुम्हे मक्खन चोर कह कर सजाएँ दी थीं इसीलिए तुम रुष्ट हो। कालिन्दी मे तुम्हारे कूदने पर कूद नही पडी इसी बात को याद करके तुम रूठे हुए हो। जैसा तुमने हमे प्रेम दे कर धोखा दिया वैसा कोई नही देता। उस एक घडी के प्रेम को याद करके हम पर कृपा करो भगवन्।"[1]

कवि मालण की गुजराती साहित्य को सबसे बडी देन यही है कि उन्होंने आख्यानो के माध्यम से एक नई साहित्यिक परम्परा को जन्म दिया। कवि मालण अनुवाद और रूपान्तर की कला मे निपुण थे। 'कृष्णबालचरित' मे यशोदा के वात्सल्य तथा बालक कृष्ण की अनेक क्रीडाओ का बडा ही हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है।

कवि मालण के पश्चात् कृष्ण-काव्य का सृजन करने वाले दो उल्लेखनीय कवि मिलते हैं। एक थे कवि केशव जिनका समय सन् १४७३ के आसपास माना जाता है।

---

१ मीठडा माधवजी रे, मारे मदिर आवो,
प्रेमे पीरसु परमानन्द, कुर ने दूध शीरावो।
मथुरा रिद्धि पाम्या घणी, वाध्यु छे अति तेज रे,
सही जाणजो मारा सरखु, को नहीं आपे हेत।
धवरावीने हैडे चापता, त्यम देवकी नहीं चापे रे,
रोमाञ्चित मारी देहडी थाती, त्यम तेना नव थापे।
माता नहि धाउ तमारी, धाव कहीने जाणो रे,
मैं बाध्यो छे माखण माटे, तेणे रोष भराणो।
कालिन्दी माहे तम उपर, हे हु नव भपावी रे,
जाणु छु ते वात संभारी, रीस मनमाहे आवी।
तें कीधो त्यम कोय दे न हैं, प्रीत कर ने छेद रे,
मालणनु रघुनाथ सभारो, एक घडीनो नेह।

—K. M. Munshi,
'Gujrat and its Literature',
Page 132.

होने 'भागवत्' के दशमस्कंध को 'कृष्णलीलामृत' के नाम से छायानुवाद किया। दूसरे वि का नाम भीम है, जिन्होंने बोपदेव की 'हरिलीलामृत' रचना के आधार पर 'हरि-ला षोडषकला' नामक कृष्ण-काव्य की एक सुन्दर रचना गुजराती साहित्य को दी। समे कवि ने अपनी मौलिकता एवं काव्य कौशल का भी परिचय दिया है। इनके निरिक्त नाकर नाम के एक और कवि मिलते हैं जिन्होंने 'महाभारत' के कुछ अंशों (छायानुवाद किया।

गुजराती भाषा का कृष्णभक्ति का सर्वोत्कृष्ट साहित्य भक्त नरसिंह मेहता से ला। इन पर अलग अध्याय में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जाएगा। इनके पश्चात् जराती कृष्ण काव्य को विकसित करने में कवयित्री मीराबाई का बहुत बड़ा योग ॥। इनकी रचनाएँ राजस्थानी और ब्रजभाषा के अतिरिक्त गुजराती में भी प्रचुर रमाण में मिलती हैं। मीराबाई ने अपने अन्तिम दिन द्वारिका में व्यतीत किये थे ह एक इतिहास तथ्य है। अतएव उन्होंने गुजरात में—द्वारिका में रह कर गुजराती अनेक पद लिखे हों इसकी पूर्ण सम्भावना है। नरसिंह मेहता के समान मीराबाई ने कृष्णभक्ति और कृष्ण काव्य को लोकप्रियता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। के पद आज भी सौराष्ट्र और गुजरात में बड़े चाव से गाये जाते हैं। एक पद उदा-रण स्वरूप उद्धृत करते हैं, जिसमें इनकी अनन्य कृष्णभक्ति और सांसारिक विरक्ति भिव्यक्त होती है। वे कहती हैं कि 'गोविन्द ही हमारे प्राण हैं। मुझे सारा संसार रा (अर्थात् निःसार) प्रतीत होता है। मुझे केवल अपने रामजी (कृष्ण) ही ते हैं। अन्य कोई मेरी दृष्टि में ही नहीं आता। मीराबाई के महल में संतों का वास है। कपट करने वाले पापियों से मेरे हरि दूर रहते हैं, किन्तु मेरे संतों निकट ही रहते हैं।' राणाजी पत्र भेजते हैं जो मीरा के हाथ में देना है। उसमें खा है—'साधु सन्तों का संग छोड़ कर हमारे साथ आ कर रहो। मीराबाई पत्र जती हैं, जो राणाजी के हाथ में देना है। उसमें लिखा है— आप अपना राज्यपाट ड़ कर साधु-सन्तों के साथ रहिये।' राणा ने विष का प्याला भेजा और कहा कि रा के हाथ में देना। उस विष को विश्वनाथ की सहाय पान वाली मीरा अमृत न कर पी गई[१]।

'हे ऊँट के चालक, तुम जल्दी से अपना ऊँट तैयार करो। मुझे यहाँ से नौ-सौ

---

१ गोविंदो प्राण अमारो रे, मने जग लाग्यो खारो रे,
मने मारो रामजी भावे रे, बीजो मारी नजरे न आवे रे।
मीराबाईना महेलमां रे, हरि संतन केरो वास,
कपटीथी हरि दूर वसे, मारा संतन केरी पास। गोविंदो०
राणोजी कागल मोकले रे, दो राणी मीराने हाथ
साधुनी संगत छोडी राणा, वसोने अमारी साथ। गोविंदो०

कोस दूर जाना है। राणाजी के देश में पानी पीना भी मेरे लिए दोष है। मेवाड़ का त्याग करके मीरा पश्चिम में (गुजरात में) गई। माया से मुक्त ऐसी मीरा ने सब कुछ त्याग कर प्रस्थान किया। अब सुषुम्णा हमारी सास हैं और प्रेम-सन्तोष ही हमारे श्वसुर हैं। जगजीवन हमारे जेठ हैं और हमारा प्रियतम निर्दोष है। चुनरी ओढ़ती हूँ तो रंग चूते हैं और वह रंगबिरंगी हो जाती है। किन्तु अब मैं काला कम्बल ओढ़ूँगी, जिसमें कोई दूसरा दाग लग ही नहीं सकता। मीरा हरि की लाड़ली है क्योंकि वह सन्तों के साथ रहती है। उसे साधु-सन्तों से विशेष स्नेह है और कपटी से वह अपना हृदय दूर रखती है।[1]

आगे चल कर सत्रहवीं शताब्दी में प्रेमानन्द नाम के एक आख्यान-कवि हुए जिन्होंने गुजराती भाषा को अन्य भाषा के समान गौरवपूर्ण और समृद्ध बनाना चाहा। उनके समय में गुजराती भाषा अन्य भाषाओं की तुलना में कुछ कम आदर से देखी जाती थी। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि 'जब तक गुजराती भाषा को मैं अन्य भाषाओं के समान गौरवपूर्ण नहीं बना पाऊँगा तब तक मैं पगड़ी नहीं पहनूँगा।' और जीवन-भर उन्होंने पगड़ी नहीं पहनी। प्रारम्भ में वे ब्रजभाषा में लिखते थे, किन्तु इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने तथा गुरु की आज्ञा होने के पश्चात् इन्होंने गुजराती में लिखना आरम्भ किया। आख्यान-काव्य के जन्मदाता भालण की आख्यान काव्यों की परंपरा को इन्होंने लोकप्रियता के सर्वोच्च आसन पर पहुँचा दिया। इनकी कविता में सरलता, सरसता और स्वाभाविकता होने के कारण अभिव्यक्त भाव बड़े प्रभावपूर्ण हो जाते हैं। कृष्ण-सम्बन्धी

मीराबाई कागल मोकले रे, दजो राणाजीने हाथ,
राजपाट तमे छोडीने राणा, वसो साधुनी सगाथ। गोविंदो०
विषनो प्यालो राणे मोकल्यो रे, देजो मीराने हाथ,
अमृत जाणी मीरा पी गया, जेने सहाय श्री विश्वनो नाथ। गोविंदो०
—बृहद् काव्य दोहन भाग १, पृष्ठ ८१६।

१ साठ वाला साद राणाजी रे, आवु सौ सो रे कोश,
राणाजीना देशमां भार, उतरे पीवानो दोष, गोविंदो०
डाबो मेल्यो मेवाड रे, मीरा गई पश्चिमाय,
सरव छोडी मीरा नीसर्या, जेनु मायामां मनडुं न काय, गोविंदो०
सासु अमारी सुषुम्णा रे, ससरो प्रेम-सन्तोष,
जेठ जगजीवन जगतमां, मारो नावलियो निर्दोष। गोविंदो०
चुंदडी ओढुं त्यारे रंग चुवे रे, रंग बेरंगी होय।
ओढुं हुं काळो कामळो, दूजो दाग न लागे न कोय। गोविंदो०
मीरा हरिनी लाडली रे, रहती संत हजूर,
साधु संगाते स्नेह घणो, पेला कपटी थी दिल दूर। गोविंदो०
—बृहद् काव्य दोहन भाग १, पृष्ठ ८१६।

रचनाओ मे 'दशमस्कध', 'सुदामाचरित्र', 'अभिमन्यु आख्यान', 'सुभद्राहरण' इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने नरसिंह मेहता के जीवन के कई एक प्रसगो पर भी अनेक रचनाएँ की है, जिनमे कृपालु कृष्ण के चरित्र की झाँकी मिलती है। इनके 'दशमस्कध' का एक अश उदाहरण स्वरूप उद्धृत करते हैं, जिसमे कृष्ण के कालिन्दी मे कूदने पर माता यशोदा के हृदय मे उमडने वाली वात्सल्यमयी व्यथा का मार्मिक वर्णन है।

'तेरे मन मे यह क्या आया मेरे रूठे हुए श्याम, कि तू इस अपराधिनी माता का त्याग करके नदी मे कूद पडा ? कालिन्दी का पानी काला और गहरा है, जिसमे कालिनाग रहता है। अब तुझसे मिलने की आशा ही कैसे करूँ ? वनमाली, तू कैसे लौट कर आएगा ? मेरे भाग्य ने सतान रूपी मेरी सपत्ति को लूट लिया। मैंने उसकी रक्षा करना नही जाना और आज अपना वह पुत्र-रत्न मैं खो बैठी। बडी आयु मे मैंने यह पुत्र पाया। कितने यत्न से मैंने इसका पालन-पोषण किया। किन्तु अब जीवन का सारा रस सूखा जा रहा है और तुम्हारा वियोग मुझे जला रहा है। नाक मे मोती, पैरो मे नूपुर और सिर पर मोर-मुकुट धारण किये हुए गोपालकृष्ण को सध्या के समय गायो के साथ लौटते हुए मैं पुन कब देखूँगी ? कानो मे कुडल और मुख पर मुरली के साथ तुम सध्या के समय गोकुल मे आओ और 'माँ, बहुत भूखा हूँ' कह कर अपना पेट दिखलाओ। पीताम्बर का कच्छा बाँध कर, इस बुढिया माता को थकी जान कर, अब मक्खन बिलोने मे मेरी सहायता कौन करेगा ? तू प्राणेश्वर और गोपेश्वर है। अब गोपियाँ जीवित कैसे रहगी ? तुम्हारे बालसखाओ का क्या हाल होगा ? गायें तो हूँक हूँक कर मर जायेगी। तुमने गहरे पानी मे प्रवेश किया है, किन्तु पानी मे तुम्हे कैसे अच्छा लगता ? अब तुम्हारे खिलौनो से कौन खेलेगा ? तुम चले गए और मैं जीवित हूँ यह इसीलिए सभव हुआ कि मैं तुम्हारी सगी माता नही हूँ। सच्चा स्नेह तो वह है कि पुत्र वियोग की बात सुनते ही हृदय फट जाय। काष्ठ से पाषाण कठोर है और पाषाण से लोहा। किन्तु मेरा हृदय तो वज्र के समान कठोर है, अब मैं लोगो को क्या मुँह दिखाऊँ ? गेद का तो बहाना है। जरूर तुम मुझसे रूठ कर ही चले गए हो। तुम्हे ऊखल का बधन याद आया होगा और इसीलिए तुम नदी मे कूद पडे हो। नन्द, यशोदा, गायें, गोप तथा व्रज की सभी स्त्रियाँ—सब के सब व्याकुल हैं। चार घडी के बाद सब इसमें कूद पडना,' किन्तु बलराम ने रोका।[1]

---

१ मारू माथकु रीसाव्यु रे, सामलीया, तारा मनमाए शुं आव्यु रे सामलीया, हु अपराधण माताने मूकी, शा माटे भराव्यु रे सामलीया।

कालिदानु कालु पाणी, माहे वसे कालो काली,
हवे आशा ते शी मलवानी, केम आवे वनमाली रे, सामलीया।
सतान रूपायु मोटु धन ते, करने लीधु लटी,
मैं नव जाण्यु जतन करीने, रतन पयु केम छूटी रे, सामलीया।

कवि प्रेमानन्द के पुत्र वल्लभ ने 'कृष्णविष्टि' नामक रचना की है, जिसमे कृष्ण के जीवन के राजनीतिक पक्ष का चित्रण किया गया है। प्रेमानन्द के शिष्यों मे से रत्नेश्वर नाम के शिष्य ने 'राधाकृष्ण ना महिना', 'भागवत', 'शिशुपालवध' इत्यादि रचनाएँ गुजराती साहित्य को दी। 'शिशुपालवध' मे भी राजनीतिक कृष्ण का चित्रण किया गया है। इनकी भाषा मे आधुनिक गुजराती भाषा का साम्य देखने को मिलता है। 'राधाकृष्ण ना महिना' नामक इनकी रचना से एक अश उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है¹—ऐ बादल, मेरी बात सुनो। अपनी वर्षा रोक कर एक क्षण के लिए भी मुझसे कृष्ण की बात करो। मधुपुर से तुम आए हो तो बताओ क्या सदेशा लाये हो ? क्या मधुर मुरली बजाने वाले मीठे (प्यारे) कृष्ण को तुमने

पुन पामी हुँ छेले आश्रने, उद्वेगों, मतिपाली,
नीपनो रस ढली गयो हु, वीजोग आगे बाली रे, सामलीया।

नाके मोती, पाये घूघरी, मोर मुगट शिर धारी,
फरी रूप हुँ क्यार्थी देखु, हरि आवै गौचारी रे, सामलीया।

काने कुन्ल मूसमा मोरली, साजे गोकुल आवो,
भूल्यो छौ कहा पेटदेखाडो, मा कही मनेबेलावो रे, सामलीया।

पीत पीछोटी काछ कछे, मुन कने नेतरूं मागे,
हुँ घरडी माने थाकी जाया, कोण वलोववा लगे रे, सामलीया।

तु मायेश्वर, तु गोपेश्वर, गेपा देह केम धरशे,
बाल सजाना कोण बने आ, गायो हींमी हींमी मरशे रे, सामलीया।

उडा जलमा जामो कीधो, पाणीमा केम गमशे,
मोर पोपट पूतली नारे, रमतडे कोण रमशे रे, सामलीया।

काइ तु गयो ने हुँ जीवु छु, ओछा मगपण म टे,
सानु वहाल तो स्या जणाये, साभलता हैडु फाटे रे, सामलीया।

काट पे पाषाण कठाण छे, ते पे कठाण छे लोढुं,
मन तुल्य छे वालजुं मारू, लोकने शुं देखाडु मोढुं रे, सामलीया।

तें मसानर दंडानुं वाधु, मनमा दु ख काइ आव्यु,
उखलनुं बधन मान साभयु, त माटे कमाव्यु र, सामलीया।

नद यशोदा गाय गोवाला, व्याकुल वृजना नारी,
चार घडी पूठे सर्वे पडजो, हलधर राखे वारी रे, सामलीया।

—K M Munshi,
'Gujrat and its Literature',
Page 199.

कहीं देखा।[1]

प्रेमानन्द के समकालीन कवि शामल भट्ट ने भी 'रणछोडना श्लोक', 'मदन मोहन' इत्यादि कृष्ण सम्बन्धी रचनाएँ की, जिनमे काव्यत्व कम है और इतिवृत्तात्मकता अधिक है।

अट्ठारहवीं शताब्दी मे स्वामी नारायण सप्रदाय मे दीक्षित भक्तो ने भी कृष्ण काव्य का सृजन पर्याप्त मात्रा मे किया। स्वामी नारायण सप्रदाय के सस्थापक सहजानन्द स्वामी के मित्र मुक्तानन्द ने, भक्त ब्रह्मानन्द ने तथा प्रेमानन्द 'सखी' ने सुन्दर कृष्ण काव्य लिखे। प्रेमानन्द 'सखी' की रचनाओ मे काव्यत्व पूर्णरूपेण प्रस्फुटित होता है। इनकी कविता मे इनके हृदय की तीव्रानुभूति की मार्मिक अभिव्यजना देखी जाती है। उच्च कल्पना-शक्ति तथा काव्य-कला कौशल इनकी विशेषता है। इन्होने भी नरसिह मेहता के समान अपने को गोपी ही अनुभव किया है, किन्तु उस कृष्ण की जो सहजानन्द स्वामी के रूप मे उनके समीप हैं। इनकी वियोग की 'गरबी' सुन कर भक्तो और श्रोताओ के नेत्रो से अश्रु बहते थे।

कृष्णभक्ति-साहित्य मे नरसिंह मेहता के साथ लिया जा सके ऐसा नाम कवि दयाराम का है। इनका समय भी अट्ठारहवीं शताब्दी का है। बचपन मे ये कृष्ण के समान ही नटखटी थे और गाँव की पनिहारियो के घडे भी फोडते थे। सगीत का अच्छा ज्ञान होने के कारण वाद्यो पर वे कृष्ण की लीलाओ के गीत गाते रहते थे। पहले ये शैव थे और इनका नाम दयाशकर था, किन्तु मथुरा, वृन्दावन, नाथद्वारा, काशी आदि स्थानो की तीर्थ यात्रा करने तथा व्रज भाषा के कृष्ण-काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् ये दयाशकर से दयाराम और शैव से वैष्णव बने।

ये स्वय बहुत ही सुदर, आकर्षक और रसिक थे। कठमाधुर्य और सगीत का ज्ञान इनम ईश्वर प्रदत्त था। ये बडे स्वाभिमानी और अनन्य कृष्णभक्त थे। बडौदा के सत्ताधीश गोपालदास ने उन्हे बडौदा मे आकर गणपति की स्तुति मे कविता करने के लिए निमत्रित किया था। इन्होने उत्तर भेजा था कि मैं गोपियो के स्वामी कृष्ण को छोडकर और किसी को भी अपना स्वामी मानने को तैयार नही हूँ। मेरा मस्तक कृष्ण के अतिरिक्त किसी के भी सम्मुख कभी भी नही झुकेगा। मैं किसी की प्रसन्नता

---

१ "सुन घन वाणी, वग्ना राख पाणी,
चण इक धिर रैनी, कृष्णनी वात कैनी,
मथुर थका आव्यो, शो समाचार लाव्यो,
मथुरा मुरली मीठो, कृष्णनो क्याय दीठो, ?

—K M Munshi, 'Gujrat and its Literature', Page 203

या क्रोध की चिन्ता नही करता।' ये बडी स्वतन्त्र प्रकृति के थे, किन्तु अहंकार उनमें लवलेश भी नही था। इनके देहावसान के समय एक अनुयायी ने स्मारक के रूप में पूजा के लिए उनकी पादुकाएँ मांगी, तब इन्होंने कहा—'मैं कौन ऐसा महान् हूँ, जो तुम मुझसे पादुकाएँ माँग रहे हो?'

कवि दयाराम ने गुजराती के अतिरिक्त ब्रजभाषा, मराठी, पजाबी, सस्कृत और उर्दू में भी स्फुट रचनाएँ की हैं। इनकी कृष्ण-सम्बन्धी प्रसिद्ध रचनाएँ निम्न प्रकार हैं :—

१. गरबी सग्रह
२ दशमलीला
३. रासपचाध्यायी

'गरबी सग्रह' इनकी श्रेष्ठ रचना है। अपनी गरबियो के कारण ही दयाराम इतने लोकप्रिय हुए। इनकी गरबियो के एक-एक शब्द से सरसता और मधुरता टपकती है। राधा और गोपियों का कृष्ण प्रेम अत्यन्त मार्मिक शैली में अभिव्यक्त हुआ है। इनकी गरबियाँ रास-गरबा नृत्य के साथ गुजरात मे बराबर गायी जा रही हैं। इनकी भाषा सरल, सरस और स्वाभाविक होने के साथ-साथ अपने पूर्ववर्ती कवियो से शुद्ध भी है। इन गरबियो मे लयमाधुर्य लबालब भरा हुआ है।

इनकी एक गरबी मे गोपियाँ कह रही हैं—'ऐ छैल-छबीले कृष्ण! तिरछी चितवन से मत देखा करो। तुम्हारी ऐसी चितवन को देख कर हमारे हृदय में न जाने क्या-क्या होता है? मेरा हृदय तुम्हारी अनियारी आँखों मे मानो पिरोया हुआ है। तुम्हारा मोहने वाला मुखडा देख कर मन मुग्ध हो जाता है। तुम नखशिख सुन्दर, रसिक और मधुर हो। तुम्हारी शोभा देख कर आँखें शीतलता का अनुभव करती हैं।'[1]

गुजराती के कृष्ण कवियो मे नरसिंह मेहता के बाद साहित्यिकता एव लोकप्रियता की दृष्टि से दयाराम का ही महत्वपूर्ण स्थान है। यदि नरसिंह मेहता गुजराती

---

१ वाकु मा जोशो वरणागिया, जोता कालजामा काई थाय छे जी रे,
अणियाली आखे वालम प्राण मारो प्रोयो छे,
मोहन मुखडु जोइ मनडु मोहाय छे जी रे, वाकु०
नखशिख लगी रूप रसिक मधुर मनोहर'
ज्यां जोइए त्या आख ठरी जाय छे जी रे, वाकु०
—K M. Munshi,' 'Gujrat and its Literature', Page 221

साहित्य के सूरदास हैं तो दयाराम निश्चित ही नन्ददास। दयाराम की तत्कालीन गुजराती समाज को सबसे बडी देन यह भी रही कि जब उस काल के अन्य कवि जीवन की नि सारता और क्षणभगुरता दिखलाते हुए मृत्यु को शाश्वत् सत्य सिद्ध कर रहे थे तब ये प्रेम और आनन्द के मधुर गीत लिख कर उनके शुष्क जीवन मे रस भरते रहे।

गुजराती साहित्य के इतिहास मे अन्य अनेक कवियो का उल्लेख मिलता है जिन्होने अल्पाधिक मात्रा मे कृष्ण काव्य का सृजन किया हो। इन कवियो से कुछ मुख्य के नाम उनकी कृष्ण सम्बन्धी रचनाओ के साथ निम्नप्रकार हैं —

कवि	रचना
देवीदास	रुक्मिणी-हरण
रत्नो	स्फुट पद्य
राधाबाई ...	"
कृष्णाबाई ...	"
कालिदास ..	प्रह्लादाख्यान के अतर्गत कृष्णलीला के पद
शान्तिदास .	स्फुट पद्य
थोभणदास	"
रामकृष्ण भक्त	कृष्णलीला के स्फुट पद्य
धीरो भगत . . .	
रघुनाथदास . .	
प्रीतमदास	
वहानदास .	
रणछोड भक्त .	

कृष्ण काव्य की परपरा गुजराती साहित्य मे रास गरबा नृत्य की लोकप्रियता के कारण उस नृत्य के साथ गाये जा सके ऐसे सुन्दर और मधुर गीतो के रूप मे आज भी विद्यमान है। गुजराती साहित्य के आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवि न्हान्हालाल ने दयाराम के द्वारा प्रचलित की हुई गरबी शैली को साहित्यिक सौष्ठव के द्वारा और भी माधुर्य प्रदान किया। ये अपने रास-साहित्य के कारण बहुत लोकप्रिय हुए। कृष्ण जीवन सम्बन्धी उनका एक गीत उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत करते हैं —

गोपिका का गोरस-पात्र भरा हुआ है। गोरस ले-लेकर पीजिए। उसके मुखमण्डल पर स्वर्णिम आभा है, नेत्रो मे प्रेम की ज्योति है और आत्मा मे अमृत की बाढ है। हमारे हृदय की एक ही आशा है और हमारे रसिया का एक ही रास है।

प्रेमी की प्यास कभी नहीं बुझती।[१]

गुजरात मे आज भी राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत लिखे और गाये जाते हैं जि सिद्ध होता है कि गुजरात ने इसके द्वारा तथा रास-गरबा-नृत्य की परपरा के नित के द्वारा राधा-कृष्ण को सदैव अपने जीवन से अभिन्न रखा है।

---

१ गोरस लइ पाजो, हो ! हे ! ग पिकानी गोरसी भरेली !
वदने छे हेमज्योत, नयने छे प्रेमज्योत,
आ मामा अमृतना हेला हो ! हे ! गापिकानी गोरसी भरेली ?
हृदयानी आश एक, रमियाना रास एक,
प्रेमीना प्याम ना छीपेली हो ! हे ! गोपिकानी गोरसी भरेली !
—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी,
'Gujrat and its Literature', P 295

अध्याय ३

सूरदास और नरसिंह मेहता की जीवनी

सूरदास

हिन्दी साहित्य के कृष्ण-काव्य की अमूल्य निधि में सूरदास सूर्य के समान चमकने वाले दैदीप्यमान रतन-सदृश हैं। अब अन्त. साक्ष्य, बहि साक्ष्य और इन दोनो के आधार पर आधुनिक विद्वानो के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले मत और निर्णय को ध्यान मे रख कर महाकवि सूरदास की जीवनी पर कुछ प्रकाश डाला जाय।

सूरदास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालनेवाली अन्त साक्ष्य सामग्री 'सूर-सारावली' का एक पद, 'साहित्य लहरी' के दो पद और 'सूरसागर' के कई एक पद आधार रूप माने जा सकते हैं। 'सूर-सारावली' मे उसके रचना-काल के सम्बन्ध मे एक अंश इस प्रकार है —

> "गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
> शिव विधान तप करयो बहुत दिन, तऊ पार नही लीन॥"[१]

इस अंश से प्राय. सभी विद्वानो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'सूर-सारावली' की रचना के समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष की रही होगी। डा० मुन्शीराम शर्मा अपने ग्रन्थ 'सूर-सौरभ' मे इस मत का विरोध करते हुए लिखते हैं कि 'सूर-सारावली' मे आये हुए इस स्थल के प्रसंग और यहाँ इन दोनो पंक्तियों को साथ मिला कर पढने से यह भाव नहीं निकलता। पद की उद्धृत द्वितीय पंक्ति मे सूर लिखते है कि मैं शैव सम्प्रदाय के विधानों के अनुसार बहुत दिन तक तप करता रहा, फिर भी पार न पा सका, प्रभु के दर्शन न कर सका। प्रथम पंक्ति का अर्थ इस प्रकार है :—गुरु की कृपा से ६७ वर्ष की प्रवीण (परिपक्व) आयु मे यह दर्शन हो रहा है। यह दर्शन का अर्थ यहाँ हरि-लीला का दर्शन है।[२] इनका यह मत है कि सूरदास ने 'सूर-सागर' ६७ वें वर्ष मे प्रारम्भ किया, जैसे तुलसी ने 'रामचरितमानस'

---

१ 'सूर-सारावली', पद सख्या १००२।
२ डा० मुन्शीराम शर्मा, 'सूर-सौरभ' पृष्ठ ३, ४, ५।

७७ वर्ष की आयु मे लिखा था। हरि-दर्शन सम्बन्धी ये उद्धृत पक्तियाँ भी इसी समय लिखी गई होगी और बाद मे जब होली के बृहत् गान के रूप मे 'सारावली' लिखी गई होगी तब उसमे ये पक्तियाँ भी जोड दी गई होगी।

'सरसठ वरस' इन शब्दो से एक और अर्थ या सकेत की सभावना सोची जा सकती है। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी से सूर को भेंट होने का तथा वल्लभ-सम्प्रदाय मे उनके दीक्षित होने का समय वि० स० १५६७ निश्चित किया गया है।[1] इसी समय गुरु की कृपा से इन्हे हरि-लीला का श्रेष्ठ दर्शन हुआ, जो शैव विधान के अनुसार तप करते रहने पर भी उन्हे अब तक न्ही हुआ था। 'सरसठ' शब्द से वि० स० '६७ ('५६७) और प्रवीन से श्रेष्ठ, ये अर्थ या सकेत निकाले जायँ तो सूर ने गुरु से लीला भेद सुन कर 'सूर सारावली' की रचना प्रथम की हो यह भी बहुत सभव है। 'सूर सागर' की रचना द्वारा लीलागान इन्होने बाद मे ही किया होगा।

'साहित्य-लहरी' मे सूर की जो दृष्टिकूट की शैली पाई जाती है उससे उसके रचनाकाल के सम्बन्ध मे यही अनुमान करना सार्थक प्रतीत होता है कि इस प्रकार की केवल बुद्धि प्रधान रचना इन्होने वल्लभ-सप्रदाय मे दीक्षित होने मे पूर्व श्रोता-समुदाय को चमत्कृत करने के उद्देश्य से की होगी तथा चमत्कार दिखलाने की यह प्रवृत्ति बाद मे भी 'सूर-सागर' और 'सूर-सारावली' मे कही कही चमक गई है। किन्तु 'साहित्य लहरी' मे उपलब्ध होने वाले एक दृष्टिकूट के आधार पर उसका रचना-काल विभिन्न विद्वानो के विचारानुसार १६०७, १६१७ और १६२७ वि० बतलाया गया है। वह पद इस प्रकार हैं —

"मुनि पुनि रसन के रस लेख
दसन गौरी नन्द को लिखि, सुबल सवत पेख।
नन्द-नन्दन मास, छै ते हीन तृतिया वार।
नन्द-नन्दन जनम ते हैं बान सुख आगार।।
तृतीय ऋक्ष, सुकर्म जोग बिचारि सूर नवीन।
नन्द नन्दन-दास हित साहित्य लहरी कीन।।[2]"

मुनि = ७, रसन = (रस नही) = ० या रसना = १ या कार्यों की दृष्टि से (रसास्वादन लेना और बोलना) = २, रस (रसना के सदर्भ में उल्लेख है इसलिए) = ६, दसन गौरीनन्द = १ 'अकाना वामतो गति' के सिद्धान्तानुसार उलट कर पढ़ने से सवत् १६०७, १६१७ और १६२७ तीन सवत् निकलते हैं। इस सवत् मे से ६७ वर्ष निकाल कर सूरदास की जन्मतिथि का अनुमान किया जाता रहा है। सवत्

१ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूरनिर्णय', पृष्ठ ८५।
२ 'साहित्य-लहरी', पद १०९।

१६०७ मानने पर इनका जन्म सं० १५४० वि० में सं० १६१७ मानने पर सं० १५५० में और सं० १६२७ मानने पर सं० १५६० वि० में इनका जन्म हुआ होगा। सं० १५४० वि० को ही सूरदास का जन्म-काल काफी दिनों तक माना जाता रहा। पुष्टि सम्प्रदाय की परंपरा से चली आनेवाली मान्यता के अनुसार सूरदास वल्लभाचार्य जी से आयु मे केवल दस दिन छोटे थे। वल्लभाचार्य जी की जन्मतिथि सं० १५३५ वि० की वैशाख कृ० १० रविवार निश्चित है। अतः सूरदास की जन्मतिथि सं० १५३५ की वैशाख शुक्ला ५ मंगलवार निश्चित की जा सकती है। 'सूर-सारावली', 'साहित्य-लहरी' के पाँच वर्ष पूर्व लिखी गई हो यह भी बहुत सभव है। डा० दीनदयालु गुप्त,[1] द्वारिकादास परीख, प्रभुदयाल मीतल[2] इत्यादि विद्वानो ने सूरदास की जन्मतिथि सं० १५३५ की वैशाख शु० ५, मंगलवार मानी है। अब हिन्दी के अधिकांश विद्वान भी इसी मत से सहमत है।

'साहित्य-लहरी' के ११० वें पद मे सूरदास जी की वंश-परंपरा का विस्तृत परिचय मिलता है।[3] इसके आधार पर सूर को चन्द का वंशज माना जाता है। इनके पिता का नाम-निर्देश इस पद मे नही हुआ है, यद्यपि इनके पितामह हरिचन्द का अवश्य ही उल्लेख हुआ है। इस पद के अनुसार सूर के छ: भाई थे, जो बड़े वीर थे और युद्ध में मारे गये। सूर का नाम सूरजचन्द मिलता है। ये अन्धे थे और एक बार कुएँ मे गिरने पर श्रीकृष्ण ने स्वयं उन्हे निकाला। जब श्रीकृष्ण ने दृष्टि प्रदान करके वरदान माँगने के लिए कहा तब इन्होंने उत्तर दिया कि अब वे कृष्ण को छोड़ कर किसी अन्य को न देखें। कृष्ण 'तथास्तु' कह कर अन्तर्धान हो गए। ब्रजवास की इच्छा होने पर वे ब्रजभूमि मे आए और गोस्वामी वल्लभाचार्य द्वारा दीक्षित होकर 'अष्टछाप' में सम्मिलित किये गये। इस पद के अन्त मे वे अपने को जगात कुल का ब्राह्मण बतलाते हैं और कहते है कि मै नन्द-नन्दन कृष्ण का मोल लिया हुआ गुलाम हूँ।

'साहित्य-लहरी' के इस पद को अप्रामाणिक माना जाता है क्योंकि एक तो पूरे ग्रन्थ मे केवल इसी पद की शैली दृष्टि-कूट की शैली नहीं है और दूसरे चन्द के वंशज होने पर भाट जाति के होते हुए, ये जो अपने आपको ब्राह्मण बतलाते हैं यह परस्पर-विरोधी बात है। इसकी अप्रमाणिकता को सिद्ध करने वाले और भी कुछ कारण एवं तर्क प्रस्तुत किये गए हैं। अतएव इस पद को अन्त साक्ष्य के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता।

सूरदास का जन्म स्थान भी विवाद का विषय रहा है। कुछ विद्वान 'रुनकता'

---

१ डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय', पृष्ठ २१२।
२ द्वारिकादास परीख और प्रभुदयाल मीतल, 'सूर-निर्णय' पृष्ठ ५३।
३ श्रीसूरदास का दृष्टिकूट सटीक (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ) पद ११०।

को इनका जन्म स्थान मानते हैं। किन्तु अब दिल्ली के निकटवर्ती 'सीहीग्राम' को ही अधिकांश विद्वान इनका जन्मस्थान मानने लगे हैं। इनका जन्म स्थान 'सीहीं' मानने के लिए दो मुख्य आधार हैं :—

(१) श्री हरिरायजी ने चौरासी वार्ता के भाव-प्रकाश में सूरदास का जन्म-स्थान दिल्ली के निकटवर्ती 'सीही' नामक ग्राम बतलाया है।

(२) गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा गोकुलनाथ जी के समकालीन कवि प्राणनाथ के निम्नलिखित पद्यांश में भी 'सीही', को ही जन्म स्थान बतलाया गया है—

"श्रीवल्लभ प्रभु लाडिले, सीही-सरजल जात।
सारमुनी-द्विज तरल सुफल, सूर भगत विख्यात।।"[१]

सूरदास के वंश-परिचय पर यथेष्ट प्रकाश डालने वाली कोई सामग्री उपलब्ध नहीं होती। 'साहित्य-लहरी' वाला पद तो अप्रामाणिक होने से उसे तो आधार बनाया ही नहीं जा सकता। श्री हरिराय जी ने चौरासी वार्ता के भाव प्रकाश में इनके पिता को एक दरिद्र ब्राह्मण बतलाया है जिनके चार पुत्रों में से सूरदास सबसे छोटे थे। सूरदास के पिता का नाम इनमें नहीं बतलाया गया है। अबुल फजल की 'आईन-ए-अकबरी' में सूरदास का उल्लेख अकबरी दरबार के संगीतज्ञ के रूप में तथा संगीतकार बाबा रामदास के पुत्र के रूप में किया गया है। किन्तु ये सूरदास कोई और होंगे क्योंकि विरक्त प्रकृति के भक्त सूरदास का अकबरी दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। एक बार अकबर से सूर की भेंट अवश्य हुई थी, किन्तु उनका अकबरी दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं था।

सूरदास को भाट माना जाय या ब्राह्मण इन पर भी हिन्दी के विद्वान् एकमत नहीं हैं। साहित्य-लहरी के वंश-परिचयात्मक पद में सूर ने अपने को जगात जाति का भी लिखा है और अन्त में ब्राह्मण भी लिखा है। इसे तो अब अप्रामाणिक होने पर आधार नहीं मानना चाहिए। डा० व्रजेश्वर वर्मा ने सूरदास के 'भाट' होने की जनश्रुति भी उपस्थित की है।[२] सूरदास के अनेक पदों में 'ढाढी' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, जिसके आधार पर कतिपय विद्वान् भ्रमवश इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूरदास 'ढाढी' अथवा जाट जैसी निम्न-जाति के थे। इस मान्यता के समर्थक यह तर्क भी प्रस्तुत करते हैं कि गोकुलनाथ जी कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में जब अधिकांश भक्तों की जाति का उल्लेख हुआ है, तब सूरदास की जाति का उल्लेख न होना, उन्हें निम्न जाति का ही सिद्ध करता है। किन्तु यह सब केवल भ्रम है। 'ढाढी' शब्द

---

१ 'अष्टसखामृत' से — श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल द्वारा 'सूर निर्णय' ग्रंथ में उद्धृत, पृष्ठ ४८।
२ डा० व्रजेश्वर वर्मा, 'सूरदास' पृष्ठ ४६।

का प्रयोग तो ऐसे कवियो ने भी किया है, जिनकी जाति का निश्चित उल्लेख मिलता है। क्या 'ढाडी' शब्द के प्रयोग मात्र से उन्हे भी 'ढाडी' या जाट जैसी निम्न जाति का मान लिया जायगा ? वास्तव मे सूरदास उच्च जाति के थे—सारस्वत ब्राह्मण थे। एक पद की अन्तिम पंक्ति मे उन्होने लिखा है कि मैने भगवद्भक्ति के लिए अपनी जाति का भी त्याग दिया है।[1] उच्च जाति का त्याग ही कुछ महत्त्व रखता है, निम्न जाति के त्याग का तो कोई मतलब ही नही। इसके अतिरिक्त सूर को उच्च जाति का सिद्ध करने वाले अनेक बहिःसाक्ष्य प्रमाण भी मिलते हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथ तथा गोकुलनाथजी के समकालीन कवि प्राणनाथ ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण बतलाया है —

"श्री वल्लभ प्रभु लाडिल, सीही-सर जलजात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात ॥"[2]

यहाँ पर 'सारसुती दुज' का अर्थ सारस्वत ब्राह्मण है। गोस्वामी विट्ठलनाथ के सेवक श्रीनाथ भट्ट ने सूरदास को प्राच्य ब्राह्मण बतलाया है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी के छठे पुत्र यदुनाथजी ने भी सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण बतलाया है। श्री हरिरायजी ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के भावप्रकाश मे सूरदास को स्पष्ट रूप से सारस्वत ब्राह्मण लिखा है।[3] सूरदास के सारस्वत ब्राह्मण होने के तथ्य को अब अधिकांश विद्वान् स्वीकार करते है।

सूरदास का अन्धत्व भी हिन्दी के विद्वानो के लिए मतभेद और वादविवाद का विषय है। सूरदास की अन्धता तो सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं, किन्तु प्रश्न यह है कि सूरदास जन्मान्ध थे या बाद मे अन्धे हुए। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है कि 'सूरदास की रचनाओ मे प्रकृति का और मनुष्य के भावो के उतार-चढाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देख कर यह कहने का साहस नही होता कि सूरदास ने बिना अपनी आँखो के देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है।'[4] डा० श्याम सुन्दरदास ने भी सूर को जन्मांध नही माना। उनका कथन है कि 'सूर वास्तव मे जन्मान्ध नही थे, क्योकि शृंगार तथा रंगरूपादि का जो वर्णन उन्होने किया है, वैसा कोई जन्मान्ध नही कर सकता।'[5] डॉ० व्रजेश्वर वर्मा लिखते हैं कि यदि सूरदास का

---

१ 'सूरदास'—'स्वामी के कारन तजी जाति अपनी', सूरसागर, पद २०७६।
२ 'भ्रमरखामृत' से श्री द्वारिकादास परीख तथा श्री प्रभुदयाल मीतल द्वारा 'सूरनिर्णय' में उद्धृत, पृष्ठ ६०।
३ श्री द्वारिकादास परीख और प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ ६०।
४ श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, 'सूरसदन', पृष्ठ ३४।
५ डा० श्यामसुन्दरदास, 'हिन्दी साहित्य', पृष्ठ १८५।

जन्मान्ध माना जाय तो इस विचार और युक्ति के युग में भी हमें चमत्कार पर विश्वास करना पड़ेगा।'[1]

इस प्रकार 'हिन्दी साहित्य के विद्वान् सूरदास के काव्य की पूर्णता से प्रभावित हो उनकी जन्मान्धता में विश्वास नहीं करते हैं, वरना उनके पास जन्मान्धता के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं है।'[2]

कतिपय विद्वानों ने सूरदास को जन्मांध न मानकर मिल्टन के समान वृद्धावस्था में उनके नेत्रविहीन हो जाने की कल्पना की है। परन्तु आगे हम देखेंगे कि इस प्रकार की कल्पना कितनी निराधार और निरर्थक है। डा० दीनदयालु गुप्त ने बाल्यावस्था में इनके नेत्र विहीन होने का अनुमान किया है,[3] किन्तु यह अनुमान भी आधारहीन है। एक किंवदन्ती इस प्रकार की भी मिलती है कि सूरदासजी ने एक सुन्दरी द्वारा, जिस पर कि वे आसक्त हो गये थे, सुई से अपनी आँखें फुड़वा ली थीं। इस किंवदन्ती को तो विशेष महत्त्व दिया ही नहीं जा सकता क्योंकि इसमें सूरदास के चरित्र को बिल्वमंगल चितामणि के वेश्या वाले तथा उससे नेत्र फुड़वाने वाले चरित्र के साथ जोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'भक्तमाल' में दोनों सूरदासों को स्पष्ट रूप से भिन्न बतलाया गया है।

उनकी जन्मान्धता को सिद्ध करने वाले अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य पर आधारित प्रमाण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। सूर ने एक से अधिक स्थानों पर अपने को स्पष्ट रूप से जन्मान्ध वर्णित किया है। उदाहरण स्वरूप निम्न पंक्तियाँ[4] प्रस्तुत हैं —

(१) 'सूर की बिरीयाँ निठुर होई बैठे जन्म-अंध करयो ॥'

(२) 'रह्यो जात एक पतित, जनमको आँधरो 'सूर' सदाको ॥'

(३) 'करमहीन जनम को अंधो, मोतें कौन नकारो ॥'

(४) 'सूरदास' सों बहुत निठुरता, नैननहू की हानि ॥'

बहिःसाक्ष्य में सूरदास के प्रायः समकालीन कवि श्रीनाथ भट्ट ने स्पष्ट रूप से सूरदास को जन्मान्ध वर्णित किया है।

"जन्मांधो सूरदासोऽभूत ? "[5]

दूसरे समकालीन कवि प्राणनाथ ने भी इनकी जन्मांधता की ओर संकेत किया है—

---

१ डा० ब्रजेश्वर वर्मा, 'सूरदास', पृष्ठ ३१।

२ श्री द्वारिकादास परीख और प्रभुदयाल मीतल, 'सूरनिर्णय', पृष्ठ ६१।

३ डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय', पृष्ठ २०७।

४ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूरनिर्णय', पृष्ठ ७६।

५ श्रीनाथ भट्ट, 'संस्कृत मणिमाला' श्लोक १ (श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल द्वारा 'सूर निर्णय' में उद्धृत)।

"बाहर नैन विहीन सो, भीतर नैन विसाल।
जिन्हें न जग कछु देखिबो, लखि हरिरूप निहाल॥
रूपमाधुरी हरि लखी, देते नहीं अन लोप।"[1]

नाभादास ने भी अपनी 'भक्तमाल' में सूरदास की जन्मांधता की ओर सकेत किया है। 'रामरसिकावली' के रचयिता रघुराजसिंह ने तथा 'भक्तविनोद' के रचयिता मियाँसिंह ने सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध वर्णित किया है।—

'जन्महि तें हैं नैन विहीना। दिव्य दृष्टि देखहिं सुख भीना॥'[2]
'जनम अंध दृग ज्योति विहीना जननि जनक कछु हरष न कीना॥'[3]

श्री हरिरायजी रचित चौरासी वैष्णवन की वार्ता के भावप्रकाश में सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मान्ध वर्णित किया गया है। मूल 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास की अन्धता का तो सकेत मिलता है, किन्तु जन्मांधता का कोई सकेत नहीं मिलता। इसका कारण बहुत स्पष्ट है और वह यह कि इस ग्रंथ में सूरदास के जन्म तथा बाल्यकाल का जब वर्णन ही नहीं किया गया है तब जन्मान्धता का उल्लेख करने की गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

अनेक विद्वानों का सूरदास को जन्मान्ध न मानने का आग्रह होते हुए भी अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य की सामग्री के आधार पर इन्हें जन्मान्ध ही मानना पड़ता है।

सूरदासजी के पिता दरिद्र ब्राह्मण थे इसलिए अन्ध बालक उनके लिए भार-स्वरूप रहा हो यह बहुत सभव है। हरिराय जी कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता के 'भावप्रकाश' से पता चलता है कि छः वर्ष की अल्पआयु में ये गृहत्याग करके 'सीही' से चार कोस दूर एक ग्राम में जा कर रहने लगे, जहाँ वे अट्ठारह वर्ष की आयु तक रहे। इसके पश्चात् वे मथुरा गये और वहाँ कुछ समय रह कर बाद में मथुरा और आगरा के मध्यवर्ती 'गऊघाट' नामक स्थान पर यमुना नदी के तट पर रहने लगे। एक बार महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी अपनी शिष्य मडली के साथ अडैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे। सूरदास को जब इसका समाचार मिला तो वे वल्लभाचार्य के दर्शन करने गये और इनकी कृष्ण भक्ति को देख कर वल्लभाचार्य ने इन्हें अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। इसके बाद सूरदास आचार्यजी के साथ गोकुल होते हुए गोवर्धन पहुँचे जहाँ सूरदास को महाप्रभुजी ने श्रीनाथजी के मन्दिर में नित्य-

---

१ 'अष्टछाप' से श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल द्वारा 'सूर निर्णय' में उद्धृत, पृष्ठ ७०।

२, ३ 'रामरसिकावली' तथा 'भक्तविनोद' से श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल

कीर्तन करने का आदेश दिया। सूरदास का वल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित होने का समय वि० स० १५६७ निश्चित किया गया है।[1]

वल्लभाचार्य के शिष्यत्व को ग्रहण करने के पश्चात् सूरदास ने गुरु के आदेशानुसार गोवर्धन मे रह कर श्रीनाथजी के मन्दिर मे कीर्तन-सेवा का कार्य करते हुए अपना शेष जीवन गोवर्धन के निकटवर्ती परासौली ग्राम मे व्यतीत किया, जहाँ वे सरोवर के पास कुटिया बना कर रहते थे। 'आईने अकबरी' मे इनका निमंत्रित होने पर अकबर के दरबार मे जाना वर्णित है, किन्तु ये सूरदास कोई अन्य सूरदास ही सकते हैं, हमारे विरक्त सूरदास नही। तानसेन से सूर का एक पद सुनने पर अकबर ने सूर से भेंट करने की इच्छा की, किन्तु सूर को दरबार मे बुलाने के अपने प्रयास मे असफल होने पर वे स्वय सूरदास से भेंट करने गोवर्धन गए और वहाँ से सूरदास के मथुरा जाने का सवाद पाकर मथुरा गए। मथुरा मे ही अकबर की सूरदास से भेंट हुई। अकबर के बार-बार पद सुनाने के लिए कहने पर सूर ने 'मन रे! तू कर माधो सो प्रीत' नामक उपदेशपूर्ण पद सुनाया। सम्राट अकबर ने जब अपने यश का गान करने के लिए सूर से कहा तब सूरदास ने निम्नलिखित पद गा कर सम्राट को स्पष्ट रूप से बतला दिया कि कृष्ण को छोडकर न किसी के लिए हृदय मे स्थान है और न किसी के यश का गान करना ही उनके लिए सभव है :—

'नाहिन रह्यो मन मे ठौर।
नदनदन अछत कैसे आनिए उर और?'

अकबर का स० १६२३ मे मथुरा जाना इतिहास सम्मत तथ्य है और सूर का स० १६२३ म गोवर्धन से मथुरा जाना साम्प्रदायिक परपरा मे प्रसिद्ध है इसलिए सूर और अकबर की भेंट का समय स० १६२३ माना जा सकता है। किन्तु डा० दीनदयालु गुप्त यह समय स० १६३६ मानते हैं।[2]

सूरदास की भेंट गोस्वामी तुलसीदास से भी हुई थी। तुलसीदास अपने भाई नददास से मिलने स० १६२६ मे व्रज मे आए थे और तभी परासौली मे सूरदास और उनकी भेंट हुई थी।

सूरदास का दीर्घायु पर्यंत जीवित रहना अत साक्ष्य एव बहि साक्ष्य दोनों से प्रमाणित होता है। सूरदास का गोलोकवास वि० स० १६४० मे गोस्वामी विट्ठलनाथ के देहावसान से दो वर्ष पूर्व हुआ। अनेक विद्वान भ्रमवश इनके देहावसान का समय सवत् १६२० मानते रहे। डा० मुशीराम शर्मा ने इनका निधनकाल स० १६२८

---

१ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ ८५।
२ डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय', पृष्ठ २१८।

निश्चित किया है[1]। किन्तु सं० १६३८ तक का उनका उपस्थितिकाल तो अंत साक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य से ही प्रमाणित हो जाता है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी का निधन काल सं० १६४२ ही निश्चित है। अतएव सं० १६३८ और सं० १६४२ के बीच में सूरदास का गोलोकवास हुआ होगा यह स्पष्ट है। इस स्थिति में सं० १६४० को इनका निधन-काल मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।[2]

सूरदासजी के गोलोकवास के समय गोस्वामी विट्ठलनाथजी तथा उनके सेवक परासोली पहुँच गए थे। गोस्वामीजी का अपना अंतिम भजन सुना कर उन्होंने अपना पार्थिव शरीर छोड़ दिया था। वह अंतिम भजन यहाँ उद्धृत करते हैं :—

खंजन नैन सुरंग रस माते।
अतिसय चारु विमल, चंचल ये, पल पिंजरा न समाते॥
बसे कहूँ सोइ बात सखी, कहि रहे इहाँ किंहि नाते?
सोइ संज्ञा देखति औरासी, विकल उदास कला ते॥
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के सकि ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजनगुन अटके, नतरु कबै उड़ि जाते॥[3]

यही पद कुछ पाठभेद के साथ अपने निम्न रूप में अधिक प्रसिद्ध है —

खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिसै चारु-चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते॥
चलिचलि जात निकट स्रवननिके, उलटि-पलटि ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते॥[4]

नरसिंह मेहता की जीवनी

नरसिंह मेहता गुजराती भाषा के प्रसिद्ध, प्रमुख, प्रतिनिधि एवं लोकप्रिय भक्त कवि हुए हैं। गुजराती साहित्य के इतिहास में उनका उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है, जितना हिन्दी साहित्य के इतिहास में सूरदास का। साहित्यिकता एवं लोकप्रियता के दृष्टिकोण से ये गुजराती के सर्वश्रेष्ठ भक्तकवि हुए हैं। गुजराती साहित्य के इतिहास पर जब तक विशेष अनुसंधान नहीं हुआ था तब तक इन्हीं का गुजराती

---

१ डा० मुंशीराम शर्मा, 'सूर सौरभ' पृष्ठ ५४।
२ श्री द्वारिकादास परीख और प्रभुदयाल मीतल, 'सूरनिर्णय', पृष्ठ १०४।
३ सूरसागर, पद ३२८६।
४ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ १०३।

के आदि कवि होने का गौरव प्राप्त होता रहा। जब आगे चल कर पर्याप्त मात्रा में शोधकार्य करने के पश्चात् इनके पूर्ववर्ती कवियों पर प्रकाश डाला गया तब भी इन्हीं का गुजराती के प्रथम प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में स्वीकार किया गया। भक्तकवि के रूप में इन्हें गुजरात और गुजरात के बाहर भी लोकादर प्राप्त हुआ है। इनके पद गुजरात के अतिरिक्त राजस्थान, महाराष्ट्र एवं उत्तर-भारत में पर्याप्त मात्रा में लोकप्रिय हुए हैं।

नरसिंह मेहता की जीवनी के सम्बन्ध में अंत साक्ष्य एवं बहि साक्ष्य के आधार पर विद्वानों ने काफी प्रकाश डाला है। अंत साक्ष्य में नरसिंह मेहता की निम्नलिखित रचनाएँ बहुत बड़ा आधार है —

१. गोविन्दगमन
२ सुरत सग्राम
३ शामळशाहनो विवाह
४ 'हारमाला' या 'हारसमेना पद'
५ कुंवर बाईनु मामेरु

'गोविन्दगमन' में नरसिंह मेहता ने अपनी वृद्धावस्था का वर्णन किया है और 'सुरत सग्राम' में अपनी दरिद्रता का। 'हारमाला', 'शामळशाहनो विवाह' तथा 'कुंवर बाईनु मामेरु' में इन्होंने अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन किया है।

बहि साक्ष्य में निम्न प्रकार के आधार हैं —

(१) पाटण के कवि विश्वनाथ जानी ने 'हारचरित्र' नामक मराठी रचना की प्रस्तावना में नरसिंह मेहता के जीवन की अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है जिन पर उन्होंने रचना भी की होगी ऐसा अनुमान किया जाता है। 'हारचरित्र' का रचनाकाल सन् १६५२ ईस्वी है। इनकी 'नरसिंह महेतानु चरित्र' नामक एक और रचना है जिसमें नरसिंह मेहता के पदों तथा प्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर उनका जीवन चरित्र लिखा गया है।

(२) गुजराती के लोकप्रिय कवि प्रेमानन्द ने नरसिंह मेहता के जीवन पर निम्न आख्यान लिखे हैं —

नरसिंह मेहतानी हुंडी	(सन् १६७४ ईस्वी)
हारमाळा ...	(" १६७८ ")
श्राद्ध .	(" १६८१ ")
मामेरु .	(" १६८३ ")
शामळशाहनो विवाह	(" १६८५ ")

कवि प्रेमानन्द ने भी नरसिंह मेहता के पदों, विश्वनाथ जानी की रचनाओं तथा

किंवदन्तियों के आधार पर ही नरसिंह मेहता के जीवन की घटनाओं पर आख्यान लिखे होंगे ऐसा अनुमान किया जाता है। अतएव ऐतिहासिक दृष्टिकोण का इसमें नितान्त अभाव होना स्वाभाविक है।

(३) प्रेमानन्द के शिष्य हरिदास ने 'शामळशाहनो विवाह' तथा 'नरसिंह मेहतानु श्राद्ध' नामक दो रचनाएँ की हैं। ये रचनाएँ भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं लिखी गई हैं।

(४) नाभादास की 'भक्तमाल' में भी नरसिंह मेहता का जीवन-चरित्र किंवदन्तियों के आधार पर ही प्रस्तुत किया गया है। नरसिंह मेहता के जीवन सम्बन्धी, किंवदन्तियों के आधार पर लिखे गये और भी अनेक ग्रंथ मिलते हैं जो निम्न प्रकार है :—

(५) आधार भट्ट रचित 'शामलशाहनो विवाह'

(६) रघुराम रचित 'हुंडी'

(७) मोतीराम रचित 'श्राद्ध'

(८) दयाराम रचित 'मोशालु'

(९) मुलजी भट्ट रचित 'श्राद्ध'

(१०) गोविन्दराम रचित 'नरसिंह मेहतानु संक्षिप्त चरित्र'

(११) रणछोड़ पूर्णानन्द रचित 'नरसिंह मेहताना बापनु श्राद्ध'

आधुनिक काल में अनेक विद्वानों ने अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य की सामग्री के आधार पर नरसिंह मेहता के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

(१) कवि नर्मदा शंकर ने सन् १८६१ ईस्वी में 'नर्म-गद्य' में नरसिंह-मेहता का जीवन चरित्र एक नवीन दृष्टिकोण के साथ लिखा।

(२) हरगोविन्ददास ने नरसिंह मेहता का जीवन चरित्र ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ लिखने का स्तुत्य प्रयास किया।

(३) कवि दलपतराम ने भी अपने सौराष्ट्र के निकटतम संपर्क के आधार पर नरसिंह मेहता के जीवन चरित्र पर विशेष प्रकाश डाला।

(४) नरसिंह मेहता के सम्पूर्ण साहित्य के विद्वान् संकलनकर्ता इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने नरसिंह मेहता के जूनागढ़ के निवास स्थान पर जा कर, वहाँ चारों ओर घूम कर तथा आसपास के विद्वानों एवं चारण कवियों के संपर्क में रह कर नरसिंह मेहता का ऐसा जीवन चरित्र लिखना चाहा, जिसमें उनके पूर्व लिखे गये जीवन चरित्रों की खामियाँ दूर हो जायें। इस कार्य को सम्पन्न करने से पूर्व ही उनका देहावसान हो जाने पर उनके पुत्रों ने उनकी टिप्पणियों के आधार पर नरसिंह मेहता का विस्तृत जीवन चरित्र लिखा।

(५) श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने 'गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर'

में तथा 'थोडाक रसदर्शनो-नरसैंनो भक्त हरिनो' नामक रचना में नरसिंह मेहता के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला है।

और भी अनेक विद्वानों ने उनके जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला है।

अंत.साक्ष्य एव बहि साक्ष्य की सामग्री के आधार पर तथा अधुनिक विद्वानों के द्वारा किये गये नरसिंह मेहता-सबधी अनुसधान के आधार पर नरसिंह मेहता की जीवनी इस प्रकार है :—

नरसिंह मेहता का जन्म जूनागढ के पास तलाजा नामक गाँव मे हुआ था। इसके लिए तो सबसे बडा प्रमाण उनकी अपनी लिखी हुई ये पंक्तियाँ हैं—

"गाम तण्डाजामा जन्म मारो थयो,
भाभीए मूरख कही मेंहेणुं दीधु[1]........

अर्थात् तलजा गाँव में मेरा जन्म हुआ है। भाभी ने मूर्ख कह कर मुझे ताना मारा है।

नरसिंह मेहता उच्च जाति के थे—नागर ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम कृष्णदामोदर, माता का नाम दयाकोर और भाई का नाम वशीधर या वशीधर था। उनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध मे गुजराती के विद्वानो मे कुछ मतभेद है। अधिकाश विद्वानों की राय मे नरसिंह मेहता की जन्मतिथि वि० स० १४७१ है। नरसिंह मेहता के एक शिष्य परमानन्ददास ने उनका सम्वत् १४७१ वि० बतलाया है। एक दूसरे शिष्य ने स० १४६६ बतलाया है। नरसिंह मेहता के वश से निकट का सम्बन्ध रखने वाले एक साहित्य प्रेमी विद्वान् हरदास अनन्त प्रसाद त्रिकमजी वैष्णव ने भी इनका जन्म सम्वत् १४७० वि० माना है। इच्छाराम—सूर्यराम देसाई, आनन्द शकर बापूभाई ध्रुव, केशवराम का० शास्त्री इत्यादि विद्वानो ने इनका जन्म सम्वत् १४७०-७१ माना है। परन्तु कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने इसको स्वीकार न मान कर इसका विरोध किया है। वे नरसिंह मेहता का समय स० १५५७ वि० से १६३७ वि० पर्यन्त मानते हैं।[2] इस प्रकार इन दोनों मतो के अनुसार नरसिंह मेहता के आविर्भाव काल मे काफी वर्षों का अन्तर पड जाता है। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी अपने मत के समर्थन मे निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं :—

(१) नरसिंह मेहता का समय मुख्य रूप मे उनकी 'हारमाला' या 'हार समता पद' नामक रचना के आधार पर निर्धारित किया गया है, किन्तु इस रचना की प्रामाणिकता ही सदिग्ध है। 'हारमाला' मे जूनागढ के राजा रा' माडलिक का वर्णन है जिनका समय वि० स० १४९० से स० १५३० तक का माना गया है।

---

[1] इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृ० २५।
[2] K. M. Munshi, 'Gujrat and its Literature', Page 149.

नरसिंह मेहता और रा' मांडलिक के समकालीन होने का इस रचना के अतिरिक्त और कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, और जब यह रचना ही प्रामाणिक नहीं है तब इसे कैसे आधार माना जा सकता है ? यह रचना नरसिंह मेहता की नहीं है, अपितु प्रेमानन्द आदि कवियों की रचना है जो नरसिंह मेहता के नाम पर कर दी गई। ऐसी स्थिति में नरसिंह मेहता का समय वि० सं० १४७१ से १५३८ तक का नहीं माना जा सकता।[१]

(२) नरसिंह मेहता के संबंध में प्रामाणिक उल्लेख सर्व प्रथम व्रजभाषा में वि० सं० १६५७ में गोस्वामी विट्ठलनाथ के पौत्र गोकुलनाथ द्वारा हुआ है और गुजराती में वि० सं० १७०६ में विश्वनाथ जानी नामक कवि द्वारा हुआ है। यदि नरसिंह मेहता जैसे सुविश्रुत एवं सर्वप्रिय कवि वि० सं० १४७१ से १५३५ पर्यन्त रहे हो तब उनका उल्लेख उनकी मृत्यु के सौ से भी अधिक वर्ष बाद हो यह कैसी विचित्र बात है।

तदुपरांत गुजरात के पन्द्रहवीं शताब्दी के कवियों ने उनका उल्लेख ही नहीं किया है। अतएव नरसिंह मेहता का समय निश्चित ही वि० सं० १४७१ से १५३५ के बाद का ही है।[२]

(३) सोलहवीं शताब्दी में व्रज में फैली हुई कृष्ण भक्ति का प्रभाव नरसिंह मेहता की रचनाओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। अतएव नरसिंह मेहता का समय वि० सं० १५५७ से १६३७ पर्यंत मानना अधिक समीचीन होगा।[३]

कन्हैयालाल मुन्शी एक विद्वान् साहित्यकार के अतिरिक्त एक विद्वान् और सफल वकील भी हैं। अतएव तर्क प्रस्तुत करने की इनकी शैली विशेष प्रभावशाली है। परन्तु उनके तर्क अकाट्य नहीं हैं। गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध एवं विद्वान् आलोचक केशवराम का० शास्त्री मुन्शी जी के मत का विरोध करते हुए नरसिंह मेहता का समय वि० सं० १४७१ से १५३५ पर्यंत मानते हैं। वे कहते हैं कि 'हारमाला' को पूर्णरूप से अप्रामाणिक मानना नरसिंह मेहता पर अन्याय करना है।[४] संभावना यही है कि 'हारमाला' की लोकप्रियता के कारण बाद के कवियों ने कुछ अपने पद भी उसमें जोड़ दिए हों। इस प्रकार यह रचना कुछ अंशों में प्रक्षिप्त अवश्य है, किन्तु अप्रमाणिक कदापि नहीं। रा' मांडलिक के समय को आधार बनाकर नरसिंह मेहता का जो समय निर्धारित किया गया है वह बिल्कुल यथार्थ है। नरसिंह मेहता

१, २, K M Munshi,
'Gujrat and its Literature'—Page 149

३ K M Munshi Gujrat and its Litrature, Page 149

४ केशवराम का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हारसमेना पद अने हरमाला', पृष्ठ २५।

का उल्लेख बहुत बाद में होने का तर्क कोई महत्त्वपूर्ण तर्क नहीं है, क्योंकि समकालीन कवियों ने उनकी लोक-प्रियता से जल कर ईर्षावश ही उनका उल्लेख न किया हो यह अधिक संभव है। ब्रज तक नरसिंह मेहता का प्रचार होने में कुछ समय लगा हो और अतएव वि० सं० १६५७ में गोकुलनाथ के द्वारा इनका उल्लेख होना स्वाभाविक है।

रा' माडलिक और नरसिंह मेहता के समकालीन न होने के समर्थन में यह तर्क भी प्रस्तुत किया जाता है कि रा' माडलिक ने स्वयं विष्णुभक्त होते हुए नरसिंह मेहता की कृष्णभक्ति की परीक्षा लेकर उन्हें क्यों तंग किया ? परन्तु एक राजा के लिए सब कुछ संभव है।[१] उसकाये और बहकाये जाने पर राजा कुछ भी कर सकता है। इस लिए यह तर्क भी कोई महत्त्वपूर्ण तर्क नहीं है।

इसके अतिरिक्त नरसिंह मेहता ने अपनी रचनाओं में नामो (नाम-देव) रामो (रामानन्द) और कबीर का निर्देश किया है। गुजरात में रामानन्द का प्रभाव फैला था इसे तो कन्हैया लाल मुन्शी भी स्वीकार करते हैं।[२]

इसी प्रकार जब कन्हैयालाल मुन्शी नरसिंह मेहता की, चमत्कार-पूर्ण घटना पर आधारित, 'शामलशाह नो विवाह' रचना को प्रमाणिक मानते हैं तो नरसिंह मेहता के जीवन की श्रेष्ठ घटना पर आधारित 'हारमाला' को अप्रामाणिक क्यों मानते हैं ?

मुन्शी जी नरसिंह मेहता का समय मालण और भीम नाम के पद्रहवीं-सोलहवीं शती के कवियों के बाद का मानते हैं।[३] इसके लिए उनका मुख्य तर्क है भाषा का अंतर। नरसिंह मेहता की भाषा बाद की प्रतीत होती है। परन्तु वास्तव में गाये जाते रहने के कारण लोकप्रिय नरसिंह मेहता के पदों की भाषा समय समय पर परिवर्तित होती चली गई है। अतएव यह तर्क कोई बड़ा तर्क नहीं है।

मुन्शी जी ने नरसिंह मेहता का समय भीम और मालण के बाद निर्धारित करने का एक कारण यह भी दिया है कि नरसिंह मेहता के पदों की काव्यशैली (ढाल) भीम और मालण की काव्य शैली से भिन्न है और बाद में प्रचलित होने वाली शैली से मिलती जुलती।[४] परन्तु इस प्रकार का निर्णय अधिक तर्कसम्मत नहीं है। वास्तव में नरसिंह मेहता की काव्य शैली अत्यंत प्राचीन है।

संस्कृत के कवि जयदेव ने भी नरसिंह मेहता द्वारा प्रयुक्त 'झूलणा' छंद का प्रयोग किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि नरसिंह मेहता के 'झूलणा' छंद से

---

१ केशवराम का० शास्त्री 'नरसिंह मेहता कृत हारसमेना पद अने हारमाला' पृष्ठ ४५।

२ K. M. Munshi, 'Gujrat and its Literature', Page 116

३ क० मा० मुन्शी, 'नरसैंयो', भक्त हरिनो पृष्ठ ८०।

४ क० मा० मुन्शी, 'नरसैंयो भक्त हरिनो', पृष्ठ ८०।

जयदेव के छन्द में तीन मात्राएँ कम हैं। नरसिंह मेहता द्वारा अपनाई हुई चौपाई, द्विपदी तथा सवैया और हरिगीत में मिलती हुई 'गोविन्दपदी' की शैली जयदेव तक पुरानी है। नरसिंह मेहता की 'चातुरी' की शैली भी जयदेव की काव्य शैली से प्रभावित है।[1] इस प्रकार नरसिंह मेहता की काव्यपद्धति का गहराई के साथ अध्ययन करने पर उनका समय भीम और मालण के बाद निर्धारित करना सुसंगत प्रतीत नहीं होता।

नरसिंह मेहता रचित 'चातुरी छत्रीसी' में दसवीं चातुरी में 'पुष्टि मारग' शब्द प्रयुक्त हुआ है जिनके आधार पर नरसिंह मेहता का वल्लभाचार्य से प्रभावित होना बतलाया जाता है। परन्तु इस 'पुष्टि-मारग' शब्द के स्थान पर 'प्रेममार्गी' ऐसा पाठभेद भी मिलता है। सदर्भ को देखते हुए 'प्रेममार्गी' शब्द का प्रयोग ही यथार्थ प्रतीत होता है। वहाँ जिस रस की अभिव्यक्ति हुई है यह नायक-नायिका के प्रेम-मार्ग की ही है, पुष्टिमार्ग-कृपामार्ग की नहीं। 'गीतगोविन्द' के ग्यारहवें-बारहवें सर्ग में दूती राधा को मना कर कृष्ण के पास लाती है। इस प्रसग को नरसिंह मेहता अत्यन्त संक्षेप में वर्णित करते हुए यह चातुरी लिखते हैं। 'गीत-गोविन्द' का बारहवाँ सर्ग ही 'सुप्रीत पीताम्बर' के सम्बन्ध में है। प्रीत शब्द को ध्यान में रखने वाला, इसी प्रसग को लिखने वाला पुष्टि अनुग्रह को कैसे आधार बना सकता है ?[2]

नरसिंह मेहता कृत 'शामळशाहनो विवाह' नामक रचना में नरसिंह मेहता ने अपने पुत्र शामळ के विवाह का वर्णन किया है। यह विवाह जूनागढ में ही सम्पन्न हुआ इसे तो काव्य में ही स्पष्ट कर दिया गया है। उसमें जिस शांति का वर्णन है वह वि० स० १५२६ के बाद अकल्प्य है क्योंकि तब यवन साम्राज्य (महमूद बेगडा) का असर जूनागढ तक अवश्य पहुँचा था।[3]

नरसिंह मेहता की भक्ति चैतन्य से प्रभावित है ऐसा कह कर उनका समय पीछे ले जाना न्याय सगत नहीं है क्योंकि नरसिंह मेहता ने भक्ति-काव्य लिखने की प्रेरणा चैतन्य की अपेक्षा सीधे 'भागवत' तथा 'गीत गोविन्द' से ही प्राप्त की हो यह अधिक सभव है।

उपर्युक्त विवेचन के अनन्तर नरसिंह मेहता का समय वि० स० १४७१ से वि० स० १५३८ पर्यंत माना जाना चाहिए।

नरसिंह मेहता की बाल्यावस्था अत्यत दु खमय रही। तीन वर्ष की अल्पायु में

---

१ केशवराम का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', —पृष्ठ ४७, ४८।

२ केशवराम का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ ५०।

३ केशवराम का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ ५१।

उनके पिता का देहान्त हुआ। कतिपय विद्वानो के मतानुसार कुछ समय तक ये अपने चाचा पर्वतराय के यहाँ मागरोल मे रहे, किन्तु कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि इनका पालन पोषण ननिहाल मे हुआ। इनके कोई सहोदर थे या नही यह भी विवाद-ग्रस्त विषय है। वणसीधर नाम के इनके जिस भाई का उल्लेख मिलता है वह सहोदर था, चचेरा भाई था या ममेरा भाई था यह स्पष्ट नही होता।

एक किंवदन्ती नरसिंह मेहता के सम्बन्ध मे यह भी प्रसिद्ध है कि बाल्यावस्था मे ये वाचाशक्ति से वंचित थे। अपने गूँगे पुत्र के साथ जब इनकी माता दयाकोर गिरनार के किसी सन्यासी का भजन सुन रही थी तब अपनी ओर टकटकी लगा कर देखते हुए बालक नरसिंह से सन्यासी ने प्रसन्न होकर कहा 'बोलो वटा श्रीराधाकृष्ण'। तुरन्त ही माता को आश्चर्य के समुद्र मे डालते हुए नरसिह मेहता ये शब्द बोल गये और तब से उन्होने वाचाशक्ति प्राप्त कर ली। इसके पश्चात् नरसिंह गाँव की पाठ-शाला मे गुजराती और सस्कृत पढते रहे। उनकी माता उन्हे कृष्ण-लीलाएँ सुनाती रहती थी, जिसके फलस्वरूप बाल्यावस्था मे ही कृष्ण भक्ति का सस्कार दृढ हो गया। माता और पुत्र ने एक बार गोकुल-मथुरा की यात्रा भी की थी ऐसा कहा जाता है।

ग्यारह वर्ष की छोटी आयु मे ही नरसिह मेहता की सगाई हुई थी। लेकिन नरसिह का साधु-सन्यासियो के साथ घूमना तथा स्त्री वेश धारण करके गाना-नाचना इत्यादि इनके श्वसुर पक्ष वालो को बुरा मालूम हुआ इसलिए वह सगाई टूट गई। इस प्रकार अपने पुत्र की सगाई टूट जाने पर माता दयाकोर ने बड़ा आघात अनुभव किया। वह बीमार रहने लगी और एक साल के भीतर ही स्वर्ग सिधारी। अब नरसिह को अपने चाचा और चचेरे भाई की दया पर ही जीना पड रहा था। कुल मर्यादा की रक्षा के लिए उनके चाचा ने उनका विवाह जूनागढ के नागर ब्राह्मण रघुनाथ पुरषोत्तम की पुत्री माणिकबाई के साथ वि० स० १४८७ मे सपन्न किया। विवाह के एक वर्ष पश्चात् वि० स० १४८८ मे उनके चाचा का भी देहान्त हुआ।

नरसिंह महता के विवाह के पश्चात् उन्हे नौकरी पर लगा कर ठीक से उनकी गृहस्थी चलाने के लिए उनके सग सम्बन्धियो ने काफी प्रयत्न किये। परन्तु सबको निराश ही होना पडा क्योकि नरसिंह मेहता तो कृष्ण भक्ति मे ही लीन रहा करते थे और साधु-सन्यासियो के साथ गाते-नाचते रहते थे। वे उन्ही के साथ भोजन भी कर लेते थे तथा कई दिनो तक घर भी नही लौटते थे। उनके भाई ने कई बार उन्हे इस प्रकार का भक्ति का पागलपन छोडने के लिए समझाने का प्रयत्न किया। परन्तु नरसिह मेहता पर कोई प्रभाव न पडा।

एक बार उनकी भाभी ने उन्हें खरी-खरी सुनाई और ताना भी मारा कि 'तुमसे तो धोबी घाट के पत्थर भी अच्छे होते हैं।' नरसिंह मेहता के हृदय मे यह

तीक्ष्ण बाण के समान जा लगा। उनकी सहिष्णुता का अन्त आ गया और उन्होंने सांसारिकता के प्रति तिरस्कार अनुभव करते हुए वन का मार्ग लिया। जूनागढ़ से कुछ दूर वन में गोपनाथ महादेव का एक मन्दिर है, वहाँ नरसिंह मेहता पहुँच गये। कवि रणछोड़ पूर्णानन्द ने नरसिंह के वनगमन का वर्णन निम्न प्रकार से किया है :—

"एक अघोर वनमा मेहताजी आव्या, विचारी मन परे,
जूनागढमा पाछु नथी आववुं, जावु नथी मारे घरे।
छाया जोईने मेहताजी बैठा, जुवे वनना वृक्ष,
दक्षिणना आचार्य मेताजी दीठा, दुखे भरी जले चक्ष।
पासे तेडी एक मंत्र आप्यो, शिव पंचाक्षर जेह,
दृढ़ स्थल जोई साधजो, तमने फलशे मंत्र ज एह।
नाम राखजो मारु, करजो पद कविता जेह,
तेह दा' डाना पद कर तेमा, 'नरसैंयाचा स्वामी' धरे तेह"।

अर्थात्, नरसिंह मेहता 'अब जूनागढ वापिस नहीं जाऊँगा—अपने घर नहीं लौटूंगा' ऐसा निश्चय करके एक भयानक वन में गये। छाया देख कर मेहता बैठ गये और वन के वृक्षों को देखने लगे। उसी समय दक्षिण के कोई आचार्य वहाँ पहुँचे जिन्होंने नरसिंह को अश्रु बहाते हुए दुःखी स्थिति में देखा। आचार्य ने पास बुला कर इन्हें शिव-स्तुति का एक मंत्र दिया और कहा कि यदि तुम कभी कविता करो तो उसमें मेरा नाम रखना। उस दिन से नरसिंह के पदों में 'नरसैंया चा स्वामी' को स्थान मिलने लगा।

नरसिंह मेहता के पदों में पाये जाने वाले छठी विभक्ति के 'चा' प्रत्यय तथा अन्य मराठी शब्दों के प्रयोग का रहस्य इस प्रसंग के वर्णन द्वारा स्पष्ट होता है।

नरसिंह मेहता ने वि० सं० १४८७ की चैत्र शुक्ला सप्तमी को बड़ी निष्ठा के साथ भगवान् शंकर का तप करना प्रारंभ किया और भगवान् को प्रसन्न किये बिना घर न लौटने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। कहा जाता है कि सात दिन तक वे बिना अन्न और जल लिये महादेवजी की तपस्या करते रहे और तब उन्हें अन्त में शिव जी का साक्षात्कार हुआ। भगवान् शंकर के साक्षात्कार से नरसिंह मेहता हृष्ट पुलकित एवं गद्गद् हो गये। वर माँगने के लिए कहने पर वे भक्ति के आवेश में सब कुछ भूल कर स्तुति ही करते रहे। पुनः वर माँगने के लिए कहे जाने पर नरसिंह गद्गद् कंठ से कहा कि आपके साक्षात्कार के पश्चात् मेरे लिए माँगने योग्य और रह ही क्या जाता है? किन्तु जब शिव जी ने वर माँगने के लिए आग्रह किया तब नरसिंह ने माँगा—'आपको भी जो प्रिय और दुर्लभ है वह कृपा करके दीजिए।'[1] शिव जी

[1] "तमने जे वल्लभ होय जे दुर्लभ, आपो रे प्रभुजी मने दयारे आणी"—'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ७५, पद १, पंक्ति ७ (सं० इच्छाराम सूर्यराम देसाई)।

नानेरी पहेरु तो म्हारे नाके नावे ना सोहाय,
मोटेरी पहेरु तो म्हारा मुख पर झोला खाय, खाय, खाय ! नागर० ।
वृन्दावन की कुजगलन मे मधुरा मोर,
राधा जी की नयनो नो शामळियोजी चोर, चोर, चोर, ! नागर० ।[१]

जब नरसिंह ने यह पद गाते हुए प्रात काल जूनागढ में प्रवेश किया तब वहाँ के लोगो ने उन्हे पागल कह कर उनका खूब मजाक उडाया । वि० स० १४८७ की वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन नरसिंह ने कृष्णभक्ति की सपत्ति के साथ जूनागढ मे पुन प्रवेश किया था । इसके कुछ वर्ष पश्चात् अपनी भाभी के तानो से तग आ कर, भाई के व्यवहार से दु खी हो कर और पत्नी माणेकबाई के आग्रह से विवश हो कर उन्होंने भाई के घर का त्याग कर के अलग घर किया । यह स्थान जूनागढ के तेजपुर की ओर जाने के नगरद्वार के पास आज भी 'नरसिंह मेहतानो चोरो' (नरसिंह मेहता का चबूतरा) के रूप मे विद्यमान है, जहाँ उनकी मूर्ति भी प्रस्थापित हुई है । उनकी एक मूर्ति द्वारिका मे भी मिलती है ।

नए घर म नरसिंह ने अपने गृहस्थ चलाने का प्रारम्भ किया । उसके कुछ समय बाद जब वे पच्चीस वर्ष की आयु के हुए तब माणेकबाई ने एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम कुवरबाई रखा गया । दो एक वर्ष बाद वि० स० १४८७ मे उनके यहाँ पुत्र का जन्म हुआ जिनका नाम शामलशाह रखा गया । दो सतानो के पिता होने पर भी नरसिह मेहता की अर्थोपार्जन की प्रवृत्ति के प्रति बिलकुल उदासीन थे । उन्हे भगवान् पर पूरा विश्वास था ।[२] भगवान् ही हमारा ध्यान रखेगे ऐसी अपूर्व श्रद्धा के साथ वे गृहस्थाश्रम का निर्वाह करते रहे । एक किवदन्ती के अनुसार जूनागढ के राजा रा'माडलिक की माता हो नरसिह की समय-समय पर गुप्त रूप मे सहायता करती रहती थी । इस किवदन्ती के लिये एक आधार यह है कि 'हार-माला' के सवाद के समय भी राजामाता ने राजसभा म पधार कर नरसिह का पक्ष लिया था ।

नरसिह मेहता का जीवन-निर्वाह किसी प्रकार होता रहा । जब पुत्री कुवरबाई विवाह योग्य हुई तब नरसिह ने माणेकबाई के बार-बार कहने पर कुवरबाई का विवाह वि० स० १५०४ म 'उना' गाँव के श्रीरगमेहता के पुत्र के साथ करा दिया । इसके कुछ समय पश्चात् उन्होंने पुत्र शामलशाह का भी विवाह किया जिस पर उनकी

पूरी रचना ही मिलती है (शामलशाह ने विवाह) ।

नरसिंह की पत्नी माणेकबाई वि० स० १५०६ मे पति का साथ छोड़कर स्वर्ग सिधार गई। इसके कुछ समय बाद उनके पुत्र शामलशाह की भी मृत्यु हो गई। इन दोनों की मृत्यु से नरसिंह बहुत दु:खी रहने लगे। अब वे लीलाओं के वर्णन की अपेक्षा भक्ति और ज्ञान के पद लिखने लगे। दो तीन साल के अनन्तर कुंवरबाई के सीमन्त के अवसर पर इन्हे कन्या तथा उसके श्वसुर पक्षवालों के लिए मायरा करने जाना पड़ा। भगवान् ने दामोदर दोशी के नाम के व्यापारी का रूप धारण कर के इनकी सहायता की। भगवत्कृपा के इस प्रसग का वर्णन उनकी अत्यन्त लोकप्रिय रचना 'कुवरबाई नु मामेरु' में मिलती है। बाद के कवियो ने भी इस प्रसंग पर काव्य लिखे। मीराबाई ने भी 'नरसी का मायरा' लिखा है।

नरसिंह मेहता को उनकी जाति के लोगो ने बेहद तग किया था। नरसिंह का साधु सतो को अपने घर मे रखना और हरिकीर्तन के समय स्त्रियो के साथ गाना और नाचना यह सब उन्हे पसन्द नही था। नरसिंह मेहता मे जात-पाँत की सकीर्णता नही थी। एक बार निमत्रित किये जाने पर उन्होने ढेढ-भगियो की झोपडी मे जा कर भजन भी गाये थे। इस विषय को लेकर जब जाति के मुखियाओ ने उन्हे तग करना शुरू किया तब उन्होने अपना ढेढ-भगियों तथा निम्न जाति के लोगों से मिलना-जुलना जानबूझ कर बढा दिया। एक किवदन्ती के अनुसार नरसिंह ने अपनी जाति के नागर ब्राह्मणो को बडा चमत्कार दिखलाया था। एक बार जाति के किसी भोज मे जब निमन्त्रित किये जाने पर भी ये अपमानित करके निकाल दिये गये, तब उनके चले जाने के बाद प्रत्येक नागर ब्राह्मण ने अपने बाजू मे ढेढ को बैठा हुआ देखा। इस चमत्कार से लज्जित और प्रभावित हो कर वे नरसिंह को वापिस बुला लाये और उन्हे सबके साथ आदरपूर्वक भोजन कराया।

वि० स० १५१२ मे जूनागढ के राजा रा'माडलिक ने लोगों की बातों मे आ कर नरसिंह की भक्ति की परीक्षा करनी चाही। उन्हो ने कहा कि 'यदि मदिर के बन्द द्वार से निकल कर भगवान कृष्ण स्वय तुम्हे अपना पुष्पहार पहना दें तब मै तुम्हारी भक्ति को सच्ची मानूंगा।' नरसिंह ने भगवान् से इसके लिए विनय की और अत मे भगवान् ने स्वय नरसिंह के गले मे पुष्पमाला पहना कर नरसिंह की लाज रखी। यही प्रसग 'हार समेना पद' नामक रचना मे वर्णित किया गया है।

नरसिंह ने अपने जीवन मे अनेक कष्ट सहन किये। जीवन के अन्त तक इनकी जाति के लोगों ने इन्हे तग किया। जीवन के अन्तिम दिनो मे इन्हो ने भक्ति और ज्ञान के पद ही अधिक लिखे। इनका देहोत्सर्ग ६४ वर्ष की उम्र मे, वि० स० १५३५ मे जूनागढ मे हुआ। नरसिंह के सम्बन्ध मे ऐसी अनेक चमत्कारपूर्ण किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं जिनमे भगवान् ने उनकी सहायता की हो। सक्षेप मे उनका उल्लेख करना

के हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में शिव जी विराजमान हैं। ऐसा रमापति और उमापति के बीच अभेद है यह रहस्य नरसिंह मेहता भली-भाँति जानते थे। इसीलिए उन्होंने 'एक पथ दो काज' जैसा वर माँगा। शिव जी प्रसन्न होकर, नरसिंह को दिव्य देह धारण कराके, मनकी गति से 'दिव्य द्वारिका' में ले गए और वहाँ दिव्य रासलीला दिखलाई।

रास का प्रारम्भ होने से पूर्व रासेश्वरी राधा ने शिवजी के साथ नरसिंह को देख कर कृष्ण से कहा—'शिवजी तो नित्य के प्रेक्षक हैं, किन्तु मृत्युलोक का यह साधारण जीव हमारी रासलीला का प्रेक्षक हो यह उचित नहीं है।' भगवान् कृष्ण मन ही मन हँसने लगे। नरसिंह मेहता मृत्युलोक का साधारण जीव नहीं है, अपितु परम भक्त है यह सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक युक्ति सोची। भगवान् कृष्ण ने नरसिंह को एक मशाल देकर उसके प्रकाश में रासलीला देखने के लिए कहा। नरसिंह मशाल धारण करके रासलीला देखने में लवलीन हो गये। राधा के नरसिंह संबंधी भ्रम को तथा मिथ्याभिमान को दूर करने के लिए कृष्ण ने राधा की नथनी अदृश्य कर दी। राधा का ध्यान नथनी के खोजने की ओर जाते ही वे व्याकुल होकर कृष्ण से पूछने लगी कि 'मेरी नथनी कहाँ गई?' कृष्ण ने उत्तर दिया कि यहीं कहीं होगी, ठीक से देखो और ढूंढो।'

ठीक उसी समय रासलीला देखने की तन्मयता में नरसिंह मेहता ने, मशाल पूरी जल जाने पर अपने हाथ को ही मशाल समझ कर तैल-धारा से उसे प्रज्ज्वलित रखा। जब कृष्ण ने राधा को यह दिखाया तब राधा अपने नरसिंह संबंधी भ्रम तथा मिथ्याभिमान के लिए लज्जा और पश्चाताप का भाव अनुभव करने लगीं। इसके बाद जब कृष्ण ने राधा की नथनी ढूंढ दी तब राधा ने क्षमा माँग कर नरसिंह को अपने पास रखने की प्रार्थना की। कृष्ण ने राधा की विज्ञप्ति मान्य रख कर नरसिंह को उनकी सेवा में रख दिया।

कहा जाता है कि नरसिंह वहाँ तीस दिन रहे और अनेकानेक लीलाओं का दर्शन करके, महादेवजी के कहन पर अनिच्छा पूर्वक, सब से आज्ञा माँग कर, कृष्ण लीला का वर्णन करने पृथ्वी पर लौटे। कृष्ण ने उन्हें विपत्ति में अपना स्मरण करने के लिए कहा तथा उनकी गृहस्थी ठीक से चलाने का वचन दिया। उन्होंने नरसिंह से यह भी कहा कि 'ये लीलाएँ जैसी तुमने देखी हैं वैसी ही बिना झिझक के, निःसकोच होकर निर्भय रूप से गाना।'[1]

---

[1] "जे रस शुक सनकादिक नव लहे, मकर गाजे तु हुने वचन दीधु,
निर्भे राखी निरभय थई गाजे दासने कृति हनुमान दीधु"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह' पृष्ठ ७८, पद ४, पंक्ति ९–१०।

शंकर भगवान् ने नरसिंह मेहता को गोपनाथ मन्दिर के पास लाकर रख दिया। शंकर जी से आज्ञा माँग कर नरसिंह मेहता जूनागढ़ के अपने घर की ओर लौटे। ऐसा कहा जाता है कि नरसिंह मेहता ने निम्न पद गाते हुए, जिसे उनका सर्वप्रथम पद माना जाता है, बड़े सवेरे जूनागढ़ में प्रवेश किया।

नागर नन्द जीना लाल रासरमता मारी नथनी खोवाणी।
एक एक मोती माँहि सोना केरो तार,
सोळशत गोपी माहे माहना राखो मारो भार, भार, भार ! नागर०।
नथनी ने काजे हुँ तो ढूँढी वृन्दावन,
नथनी आपो ने मारा प्राण जीवन, वन, वन, ! नागर०।
नानेरी पहेरुँ तो मारे नाके ना सोहाय,
मोटेरी घडावो मारा मुख पर झोलता खाय, खाय, खाय ! नागर०।
वृन्दावनना कुंजगलनमां टौका करे छे मोर,
राधाजीनी नथनी नो शामळियो छे चोर, चोर, चोर ! नागर०।
नथनी आपो प्रभुजी लागु तमारे पाय,
नरसैंयाचा स्वामी पर वारी जाऊ बलिहार, हार, हार ! नागर०।[1]

अर्थात्, हे नागर नन्दजी के लाल, रास खेलते-खेलते मेरी नथनी खो गई है। उसके एक एक मोती में सोने का तार है। हे कृष्ण, सोलह सौ गोपियों में मेरे मान की रक्षा करो। उसे मैंने सारे वृन्दावन में ढूंढा, पर वह नहीं मिली। मुझे नथनी दीजिए, मेरे प्राणाधार! नथनी छोटी मत बनवाना क्योंकि वैसी मेरी नाक पर नहीं सुहाती। मेरे लिए तो बड़ी बनवाना जो मेरे मुख पर झूलती रहे। उसी समय राधा ने मयूर के केका की ध्वनि सुनी। उन्हें पता चल गया कि नथनी का चोर और कोई नहीं है, कृष्ण स्वयं हैं। वे कृष्ण से कहती हैं कि 'कृपा करके मेरी नथनी दे दीजिए, मैं आपके पैर पड़ती हूँ। मैं 'नरसैंया के स्वामी' पर बलि जाती हूँ।'

यही पद उत्तर भारत में भी कुछ शब्दों को यत्र-तत्र बदल कर गाया जाना जाता है जिसका स्वरूप इस प्रकार है —

नागर नंदजी के लाल मोरी नथनी खोवाई,
बंसीवारे हो कहान मोरी नथनी खोवाई।
मोरलीवाले हो श्याम मोरी नथनी खोवाई,
एक एक मोती ने सोना केरो हार।
सरखी सहियरो ऊभी, राखो म्हारो भार, भार, भार, ! नागर०।

---

१ इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ३३-३४।

समीचीन होगा।

१. एक बार जब मूसलाधार वर्षा में नरसिंह के घर की दीवार टूटने लगी, तब गिरिधारी कृष्ण ने दीवार को सहारा दे कर अपनी भक्तवत्सलता का परिचय दिया।

२ शामलशाह के विवाह में भगवान् ने पूरी सहायता की और वे लक्ष्मी जी के साथ पधारे भी।

३. एक बार नरसिंह ने मल्हार राग गा कर वर्षा कराई थी।

४. नरसिंह के पिता का श्राद्ध-कार्य भगवान् ने ही सम्पन्न करा दिया।

५. कुंवरबाई का मामरा भगवान् ने ही किया।

६. 'हारमाला' के, नरसिंह मेहता की परीक्षा के समय, भगवान् ने गिरो रखा हुआ केदारा राग छुड़ा कर इसकी सूचना भी उनको दी।

७. भगवान् ने स्वयं इन्हें पुष्पमाला पहनाई।

८. कृष्ण ने इनकी लिखी हुई सात सौ रुपये की हुँडी छुड़ाई। हुँडी-सम्बन्धी लिखा हुआ इनका पद अत्यन्त प्रसिद्ध है।

९. एक बार नरसिंह को स्त्री के वेश में नृत्य तथा कीर्तन करते देख कर जब इनकी जाति के लोग हँसने लगे तब नरसिंह के चमत्कार के फल-स्वरूप वे सब एक दूसरे को स्त्री के वेश में ही देखने लगे और लज्जित होकर घर भाग गए।

१० एक बार इनके यहाँ ४००-६०० सन्यासी आए। उनके भोजन का प्रबन्ध करना दरिद्र नरसिंह के लिए समस्या हो गई। तब भगवान् ने स्वयं आ कर स्वर्ण मुद्राओं से भरी हुई थैली उनके घर में रख दी।

इस प्रकार की लगभग चौवालीस चमत्कारपूर्ण किंवदन्तियाँ हैं जिनमें से कुछ ऊपर उद्धृत की हैं। नरसिंह मेहता के भक्तिपूर्ण जीवन ने बाद के कवियों को उनके जीवन पर ही काव्य लिखने के लिए प्रेरणा दी। अनेक कवियों ने इस प्रकार के काव्य लिखे हैं। ऐसे बहुत कम कवि पाये जाते हैं, जिनका जीवन भी नरसिंह के जीवन के समान काव्य का विषय बन गया हो। महता नरसिंह की लोकप्रियता का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है।

सूरदास और नरसिंह मेहता के साहित्य की सामान्य आलोचना

सूर-साहित्य

अब हिन्दी और गुजराती में सर्वोत्कृष्ट कृष्ण-काव्य का सृजन करने वाले इन दोनों महाकवियों के समग्र साहित्य का विहगावलोकन करके उसमें पाई जाने वाली प्रमुख विशेषताओं पर विचार किया जाय।

प्रथम जिस साहित्य रूपी प्रकाश के लिए सूर को 'सूर सूर तुलसी ससि' वाली लोकोक्ति में साहित्याकाश का सूर्य कहा गया है उस साहित्य की विशेषताओं का विवेचन किया जाय। सूरदास की प्रसिद्ध और प्रामाणिक रचनाएँ केवल तीन मानी गई हैं[१], जो निम्न प्रकार हैं :—

१. सूर सारावली
२. सूर सागर
३. साहित्यलहरी

इनके अतिरिक्त और भी चार रचनाएँ प्रामाणिक बतलाई जाती हैं[२] जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

४. सूर पच्चीसी
५. सूर साठी
६. सेवा फल
७. सूरदास के पद।

'राम जन्म', 'एकादशी माहात्म्य', 'नल दमयन्ती', 'ब्याहलो' आदि कुछ अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है जिन्हें प्रामाणिक और सूरकृत नहीं माना जा सकता। सूरदास के नाम से और भी अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं :

(१) भागवत
(२) गोवर्धन लीला
(३) प्राणप्यारी
(४) भँवरगीत
(५) सूर रामायण
(६) दशमस्कंध भाषा
(७) मानलीला
(८) नागलीला

१, २. श्री द्वारिकादास परीख और प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय'।

(६) ब्याहलो (११) राधारसकेलिकौतुहल
(१०) सूरशतक (१२) सूरसागर सार

उपरोक्त रचनाओं को स्वतंत्र रचनाएँ नही मानना चाहिए क्योंकि ये सूरसागर के ही अंश हैं। सूरदास ने सवा लाख पद की रचना की थी ऐसा प्रसिद्ध है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' मे सूर के 'सहस्रावधि' पद करने का उल्लेख किया गया है। 'सूर-सारावली' मे एक लाख पद करने का उल्लेख है। श्री राधाकृष्णदास लिखते हैं—"सूरदासजी के सवा लक्ष पद बनाने की किम्वदन्ती जो प्रसिद्ध है वह ठीक विदित होती है क्यो कि एक लाख पद तो श्री वल्लभाचार्य के शिष्य होने के उपरात और 'सारावली' के समाप्त होने तक बनाये। इसके आगे-पीछे के अलग ही रहे[१]। अपने दीर्घ जीवन की अवधि मे सूरदास ने सवा लाख पद किये हो यह असभव तो प्रतीत नही होता, किन्तु अभी तक प्राप्त हुए पदो की सख्या सात हजार से ऊपर नहीं पहुँचती[२]।

अब सूरदास जी की एक रचना पर सक्षेप मे विचार किया जाय।

'सूर-सारावली'

वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई तथा नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित सूरसागर के सस्करणो मे 'सूरसारावली' प्रारम्भ मे दी गई है।

'सूरसारावली' मे दो-दो पक्तियो के ११०७ छन्द मिलते है। कुछ विद्वानो ने भ्रमवश इस ग्रथ को सूर-सागर का सार और सवा लाख पदो का सूचीपत्र माना है। सूरदास ने इस ग्रन्थ मे इसकी रचना करने से पूर्व वर्णित की हुई लीलाओ से सिद्धात-तत्त्व को प्रस्तुत एव प्रतिपादित करने का सफल प्रयास किया है। इस ग्रथ का रचना-काल वि० स० १६०२ मानना अधिक प्रशस्त एव प्रामाणिक है[३]।

'सूरसारावली' मे समग्र सृष्टि की रचना होरी की लीला के रूपक द्वारा वर्णित की गई है। सम्पूर्ण ससार और ससार के समस्त व्यापार सृष्टिकर्ता के होली के खेल रूप हैं। यह रचना दार्शनिकता और तत्त्वज्ञान से पूर्ण है। इसे सूरदास की सैद्धान्तिक रचना कहा जा सकता है। भागवत की गूढ लीलाएँ इसमे सुस्पष्ट हुई हैं। इसका आधार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' है, जिसे वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत् का 'सार-समुच्चय रूप' कहा है और जो उन्होंने सूर को सुनाया था। 'समस्त तत्त्व, ब्रह्माड, देव, माया, काल, प्रकृति, पुरुष, श्रीपति और नारायण उसी एक गोपाल भगवान् के अश रूप हैं, जिसकी कथा भगवान् की शाश्वत लीला है और जिसके समक्ष ज्ञान, कर्म, उपासना

---

१. श्री राधाकृष्णदास, श्री सूरदासजी का जीवन चरित, पृष्ठ २।
२. डा० मुन्शीराम शर्मा, 'सूर सौरभ', पृष्ठ १०१।
३. श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ १०६।

१३८ पद हैं, जिनमे कृष्ण के राजनीतिक रूप का चित्रण किया गया है। कृष्ण के इस रूप का वर्णन करने मे सूर का मन उतना नही रमा है, जितना कृष्ण के बाल-रूप का वर्णन करने मे। इसीलिए पूर्वार्ध और उत्तरार्ध मे विस्तार की दृष्टि से इतनी असमानता देखी जाती है। उत्तरार्ध मे द्वारिका-गमन से मृत्यु तक कृष्ण की जीवनी वर्णित है।

एकादश और द्वादश स्कध मे क्रमानुसार ६ और ५ पद हैं जिनमे नारायणावतार, हसावतार, बुद्धावतार, कल्कि अवतार तथा राजा परीक्षित और जनमेजय की कथाओं का वर्णन है।

'सूरसागर' हिन्दी का विशिष्ट और वरिष्ठ कृष्ण-काव्य है। यह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। इसके अद्वितीय काव्य सौंदर्य के सम्बन्ध मे दो मत हो ही नहीं सकते।

साहित्य लहरी

सूर-कृत 'साहित्य लहरी' का महत्व कलापक्ष की दृष्टि से विशेष है। इसमे ११८ दृष्टकूट के पदो का सग्रह है। इस ग्रन्थ के विषयो मे साम्य या सम्बन्ध बिल्कुल नहीं पाया जाता। इसका रचनाकाल 'मुनि पुनि रसन के रस लेखि' वाले पद स० १०९ के आधार पर वि० स० १६०७, १६१७ या १६२७ माना जा सकता है। इसके सम्बन्ध मे अपने तीसरे अध्याय मे हमने यथार्थ प्रकाश डाला है।' सूर निर्णय' मे इस रचना का मूल हेतु नन्ददास को माना है जिसके लिए 'नन्द-नन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन' इस पक्ति को वे आधार बनाते हैं।[१] कुछ लोग नन्दनन्दन का अर्थ केवल भक्त करते हैं।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा 'साहित्य लहरी' को सूर-कृत और प्रामाणिक नहीं मानते[२] 'सूर निर्णय' के लेखकों ने केवल ११८ वें पद को अप्रामाणिक माना है तथा 'साहित्य-लहरी' की प्रमाणिकता पूर्ण रूप से सिद्ध की है।[३] प्राय सभी विद्वानो ने 'साहित्य लहरी' को सूरकृत माना है।

'साहित्य लहरी' के पद दृष्टकूट कहलाते हैं। सूरदास की दृष्टकूट की शैली 'सूर' तथा अन्य रचनाओं में भी यत्र-तत्र मिलती है। यह शैली बुद्धि प्रधान और इस शैली की रचना मे सामान्य अन्वय करने पर अर्थ बिल्कुल स्पष्ट ना, वह छिपा ही रहता है। बुद्धि लडाने पर ही अर्थ स्पष्ट होता है। इस सूर के काव्यत्व या कलापक्ष अपने अत्यत निखरे हुए रूप मे मिलता है।

---

१ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ १५८।
२ डा० ब्रजेश्वर वर्मा, 'सूरदास', पृष्ठ ८७, ९३।
३ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ ७, १४३।

सार 'सूरसागर' में कुल पदों की संख्या ४०३२ होती है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' में समस्त पदों की संख्या ४६३६ है। इसके अनुसार प्रथम स्कंध में ३४३ पद हैं जिनमें विनय एवं भक्ति के पदों का प्राधान्य है। इन पदों की रचना सूरदास ने आचार्य वल्लभाचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने से पूर्व ही की थी। इन पदों में सगुण भक्ति की श्रेष्ठता, सूर की विनय भावना तथा संसार की असारता देखने को मिलती है। इन पदों में दास्यभक्ति तथा दैन्यभाव निरूपित हैं, जिनकी अभिव्यक्ति अत्यंत मार्मिक ढङ्ग से हुई।

द्वितीय स्कंध में भी भक्ति सम्बन्धी पदों का प्राचुर्य है। इसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति, सृष्टि की उत्पत्ति, शुकदेव के जन्म की कथा, विष्णु के चौबीस अवतार, मायामय संसार, सत्संग की महिमा इत्यादि का वर्णन है। पदों की संख्या ३८ है।

तृतीय स्कंध में भगवान् के अवतारों तथा भक्ति-महिमा का १८ पदों में वर्णन है। चतुर्थ स्कंध में १२ पदों में पार्वती विवाह, ध्रुवकथा इत्यादि आख्यानों का वर्णन पाया जाता है। पंचम स्कंध में केवल ४ पद हैं जिनमें ऋषभदेव की तथा जड़भरत की कथा का वर्णन है। छठे स्कंध में भी केवल ४ पद हैं जिनमें अजामिल के उद्धार की कथा, बृहस्पति का इन्द्र द्वारा अनादृत होना, वृत्रासुर का वध, इन्द्र का सिंहासन से च्युत होना, गुरु की महिमा तथा गुरु की कृपा से इन्द्र का सिंहासन को पुनः प्राप्त करना इत्यादि वर्णित है। सातवें स्कंध में ८ पदों में नृसिंह अवतार का, देव दानव युद्ध का तथा नारदउत्पत्ति कथा का वर्णन पाया जाता है। आठवें स्कंध में १४ पदों में गजेन्द्रमोक्ष, समुद्र मंथन, कूर्मावतार, वामनावतार तथा मत्स्यावतार का वर्णन है। इसमें विष्णु का मोहिनीरूप धारण करना भी वर्णित है। नवम स्कंध में १७४ पदों में प्रसिद्ध आख्यानों तथा रामावतार का वर्णन है। श्रीमद्भागवत की अपेक्षा 'सूरसागर' के इस स्कंध में रामकथा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

'सूरसागर' का दशम स्कंध उसका हृदय है। सूरदास की प्रसिद्धि और लोकप्रियता का आधार यही स्कंध है। इस स्कंध में हमें सूर के काव्य-कौशल का सच्चा परिचय मिलता है। पूर्वार्ध में कृष्ण की बाल लीलाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वात्सल्य और शृङ्गार रस अपने सुन्दरतम रूप में यहाँ निरूपित हैं। इस स्कंध में सौंदर्य, प्रेम और माधुर्य की व्यंजना बड़े स्वाभाविक ढंग से की गई है। इसी स्कंध में सुप्रसिद्ध भ्रमरगीत का वर्णन है, जिसमें भ्रमर की वाग्विदग्धता का, गोपियों के विरहोन्माद का तथा निर्गुणभक्ति के स्थान पर सगुण भक्ति की सार्थकता को सिद्ध करने के सूर के काव्य-कौशल का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। इसमें सूर ने अपनी मौलिकता का भी पूर्ण परिचय दिया है। यही स्कंध सूर को लोकोक्ति के अनुसार साहित्यकाश के सूर्य का स्थान प्रदान करता है। इस स्कंध के उत्तरार्ध में केवल

१३८ पद हैं, जिनमे कृष्ण के राजनीतिक रूप का चित्रण किया गया है। कृष्ण के इस रूप का वर्णन करने मे सूर का मन उतना नही रमा है, जितना कृष्ण के बाल-रूप का वर्णन करने मे। इसीलिए पूर्वार्ध और उत्तरार्ध मे विस्तार की दृष्टि से इतनी असमानता देखी जाती है। उत्तरार्ध मे द्वारिका-गमन से मृत्यु तक कृष्ण की जीवनी वर्णित है।

एकादश और द्वादश स्कंध मे क्रमानुसार ६ और ५ पद हैं जिनमे नारायणा-वतार, हंसावतार, बुद्धावतार, कल्कि अवतार तथा राजा परीक्षित और जनमेजय की कथाओ का वर्णन है।

'सूरसागर' हिन्दी का विशिष्ट और वरिष्ठ कृष्ण-काव्य है। यह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। इसके अद्वितीय काव्य सौंदर्य के सम्बन्ध मे दो मत हो ही नही सकते।

साहित्य लहरी

सूर-कृत 'साहित्य लहरी' का महत्त्व कलापक्ष की दृष्टि से विशेष है। इसमे ११८ दृष्टकूट के पदों का संग्रह है। इस ग्रन्थ के विषयों मे साम्य या सम्बन्ध बिल्कुल नही पाया जाता। इसका रचनाकाल 'मुनि पुनि रसन के रस लेखि' वाले पद सं० १०९ के आधार पर वि० सं० १६०७, १६१७ या १६२७ माना जा सकता है। इसके सम्बन्ध मे अपने तीसरे अध्याय मे हमने यथार्थ प्रकाश डाला है।' सूर निर्णय' मे इस रचना का मूल हेतु नन्ददास को माना है जिसके लिए 'नन्द-नन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन' इस पंक्ति को वे आधार बनाते हैं।[१] कुछ लोग नन्दनन्दन का अर्थ केवल भक्त करते हैं।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा 'साहित्य लहरी' को सूर-कृत और प्रामाणिक नही मानते[२] 'सूर निर्णय' के लेखकों ने केवल ११८ वें पद को अप्रामाणिक माना है तथा 'साहित्य-लहरी' की प्रामाणिकता पूर्ण रूप से सिद्ध की है।[३] प्राय सभी विद्वानो ने 'साहित्य लहरी' को सूरकृत माना है।

'साहित्य लहरी' के पद दृष्टकूट कहलाते हैं। सूरदास की दृष्टकूट की शैली 'सूरसागर' तथा अन्य रचनाओं मे भी यत्र-तत्र मिलती है। यह शैली बुद्धि प्रधान होती है और इस शैली की रचना में सामान्य अन्वय करने पर अर्थ बिल्कुल स्पष्ट नही होता, वह छिपा ही रहता है। बुद्धि लडाने पर ही अर्थ स्पष्ट होता है। इस रचना में सूर के काव्यत्व का कलापक्ष अपने अत्यंत निखरे हुए रूप मे मिलता है।

---

१ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ १५८।
२. डा० ब्रजेश्वर वर्मा, 'सूरदास', पृष्ठ ८७, ९१।
३ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ ७, १४३।

सूर की मौलिक प्रतिभा का, उच्च कल्पनाशक्ति का तथा अद्भुत एव चमत्कारपूर्ण श्लेषादि अलकार-प्रयोग के कौशल का परिचय 'साहित्य लहरी' मे पूर्णरूपेण मिलता है। नायिका भेद, विरह वर्णन, मान वर्णन इत्यादि शृङ्गारिक विषय ही इसमे मुख्य रूप से निरूपित हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे आगे चल कर विकसित होने वाली रीति कालीन परपरा का प्रारभिक स्वरूप इस रचना मे बराबर मिलता है। काव्य-कला की दृष्टि से सूर-कृत 'साहित्य लहरी' ग्रथ का महत्त्व असाधारण है।

'सूर-सारावली', 'सूरसागर' और 'साहित्य लहरी' के अतिरिक्त 'सूर पच्चीसी,' 'सेवाफल', 'सूरसाठी' तथा 'सूरदास के पद' नामक रचनाएँ भी स्वतत्र रचनाएँ मानी गई हैं। 'सूर पच्चीसी' उपदेशात्मक पदो का सग्रह है; 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' के अनुसार इसकी रचना सूर और अकबर की भेंट के समय हुई थी। 'सेवाफल' महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के सस्कृत ग्रथ 'सेवाफल विवरण' की टीका के रूप मे है और इसमे सेवा विषयक उत्सव के पद प्राप्त होते है। 'सूर साठी' की रचना चौरासी वैष्णवो की वार्ता के अनुसार सूर ने एक बनिये के लिए की थी, अतएव इसे स्वतन्त्र रचना मानना चाहिए। 'सूरदास के पद' में सूरदास के स्फुट पदो का सग्रह है। सूर ने मन्दिर मे प्रार्थना आदि के रूप मे तथा कुछ भक्तो को वैराग्य आदि का उपदेश देते हुए रचना की होगी उन्ही का इसमे सग्रह है।

आश्रय और आलबन की एकता के द्वारा अद्वैत का सकेत करने वाले सूर ने प्रेम तत्त्व की पुष्टि के लिए भगवद्विषयक रति, वात्सल्य रति, दापत्य रति—रतिभाव के इन तीनो प्रबल रूपो का वर्णन किया है।

सूरदास की समस्त रचनाओ का अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट होती है कि सूर ने कुछ रचनाएँ मौलिक रूप से की हैं और कुछ श्रीमद्भागवत के छाया नुवाद के रूप मे जिसमे कथा क्रम का कुछ निर्वाहादि अवश्य हुआ है। 'साहित्य लहरी' मे तो सूर ने अपने अपूर्व काव्य कौशल का परिचय दिया ही है तथा अन्य प्रकार की रचनाओ मे भी इनकी मौलिक प्रतिभा सर्वत्र प्रस्फुटित हुई है। 'भ्रमर गीत' को सूर की मौलिकतम रचना कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं। स्वतत्र और उद्दीपन के रूप मे किया गया इनका प्रकृतिवर्णन अत्यत मनोहर है। सूर की रचनाओ से इनकी बहुज्ञता का भी परिचय मिलता है। सूरदास न शृगार, वात्सल्य और शात रस के अतिरिक्त कही-कही वीर रस, रौद्र रस, भयानक रस, अद्भुत रस, हास्य रस, करुण रस इत्यादि का भी गौण रूप से निरूपण किया है। सगीत के समन्वय ने इनके मधुर पदो मे और भी माधुर्य छलका दिया है। लोक जीवन का इनका चित्रण इतना स्वा भाविक और तद्रूप है कि हम मुग्ध हो कर रह जाते हैं। वाग्दिग्धता, व्यजना, चित्रा त्मकता, भावात्मकता, उक्तिचमत्कार इत्यादि विशेषताएँ सूर मे स्वाभाविक रूप मे पाई जाती हैं, जो प्रभाव की दृष्टि से असाधारण हैं। सूर-साहित्य का दार्शनिक पक्ष

भी महत्वपूर्ण है। ब्रजभाषा के सर्वोत्कृष्ट गीति काव्यकार होने का गौरव इन्ही को प्राप्त है। इनकी भाषा अत्यत सजीव, प्रवाहमयी और सरसता से युक्त है, जिसमे श्रुतिमधुर शब्दो का प्रयोग अपने सुन्दरतम रूप मे मिलता है। सूर की सबसे बडी विशेषता है नवीन प्रसगो की उद्भावना। प्रसगोद्भावना करने वाली ऐसी मौलिक प्रतिभा बहुत कम कवियो मे पाई जाती है। इनके पदो मे इनकी तीव्रानुभूति का पूरा परिचय मिलता है। सूरदास की ब्रजभाषा को सबसे बडी देन यही है कि उन्होने बोलचाल की चलती हुई ब्रजभाषा का साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया। इनके पदो ने उस समय के नैराश्यपूर्ण जन जीवन मे सरसता का सचार किया। सूरदास को 'ब्रजभाषा का वाल्मीकि' सिद्ध करते हुए 'सूर निर्णय' के लेखको ने यह यथार्थ ही लिखा है कि 'सस्कृत साहित्य मे जो स्थान आदि कवि वाल्मीकि का है, ब्रजभाषा साहित्य मे वही स्थान सूरदास को भी दिया जा सकता है। ब्रजभाषा साहित्य के आरभिक काल मे ही सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा जैसा सर्वा गपूर्ण काव्य उपस्थित किया, वैसा कई शताब्दियो के साहित्यिक विकास के उपरान्त भी कोई कवि नही कर सका। यह एक बात सूर-काव्य की विशेपता को चरमसीमा पर पहुँचा देने वाली है[१]।' ब्रजभाषा मे कृष्ण-काव्य की परपरा के जन्मदाता होने का श्रेय इन्ही को है। इन सब तथ्यो के आधार पर सूरदास को हिन्दी के साहित्याकाश का सूर्य कहना, हिन्दी के साहित्य-सागर का सबसे बडा और दैदीप्यमान रत्न कहना या हिन्दी साहित्य के भव्य प्रसाद का मुख्य आधार स्तभ कहना कोई अतिशयोक्ति नही होगी। तुलसीदास के साथ उनकी तुलना करके उन्हे उनसे बडा या छोटा सिद्ध करने की निरर्थक चेष्टा की जाती है। वास्तव मे ये दोनो कवि हिन्दी साहित्य रूपी भव्य प्रसाद के दो मुख्य आधार-स्तभ हैं और इन दोनो महाकवियो का अपना विशिष्ट महत्व है।

नरसिंह-साहित्य

नरसिंह मेहता की कीर्ति, महत्ता एव लोकप्रियता का आधार है उनका साहित्य जिसका इस अध्याय मे आलोचनात्मक परिचय कराना समीचीन होगा।

नरसिंह मेहता की रचनाओ का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है —

(१) आत्मकथात्मक काव्य
(२) आख्यानात्मक काव्य
(३) शृगार काव्य

---

१ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर निर्णय', पृष्ठ ३१३।

(४) वात्सल्य के पद
(५) भक्ति और ज्ञान के पद

आत्मकथात्मक काव्य के अतर्गत इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध होती है :—

(१) हारमाळा अने हारसमेना पद
(२) शामलशाहनो विवाह
(३) कुवरबाईनु मामेरु

आख्यानात्मक काव्य के अतर्गत केवल एक ही रचना प्राप्त होती है :—

(१) सुदामा चरित

शृगार काव्य के अतर्गत इनकी निम्न रचनाएँ पाई जाती हैं :—

(१) गोविन्द गमन
(२) सुरत सग्राम
(३) चातुरी छत्रीसी
(४) चातुरी षोडषी
(५) दान लीला
(६) राससहस्रपदी
(७) वसत ना पद
(८) हिंडोळाना पद

वात्सल्य के पदो के अतर्गत

(१) 'कृष्ण जन्म समाना पद', (२) 'कृष्ण जन्म वधाईना पद' तथा 'बाल-लीला नापद' हैं।

भक्ति और ज्ञान के पद स्फुट पदो के रूप मे हैं। सूर के समान नरसिंह के भी कुछ पद सवा लाख बतलाये जाते हैं।

आत्मकथात्मक काव्यो मे 'शामळशाहनो विवाह' मे नरसिंह के पुत्र शामळ के विवाह का वर्णन है, 'कुवरबाईनु मामेरु' मे नरसिंह की कन्या कुवरबाई का माहयरा वर्णित है तथा 'हारमाळा अने हारसमेना पद' में जूनागढ के राजा रा'माडलिक के द्वारा नरसिंह की भक्ति की परीक्षा लिये जाने पर इनकी विनय का तथा भगवान् के स्वय आकर नरसिंह को पुष्पमाला पहनाने का वर्णन है। नरसिंह की ये तीनो रचनाएँ अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं क्योकि इनमे भगवान् की भक्त वत्सलता का ही नरसिंह ने अपने अनुभवो के आधार पर प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। 'कुवर बाईनु मामेरु' तो समस्त स्त्रियों को कठस्थ भी रहता है। उत्तर भारत और राजस्थान मे भी इन के पद 'नरसिंह का मान' या 'नरसिंह का माहयरा' नाम से प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुए हैं। बाद के कवियो ने भी नरसिंह के इस आत्मकथात्मक काव्य के आधार पर नरसिंह का आख्यान लिखा। उन कवियो में कवि प्रेमानन्द कृत 'कुवर बाईनु मामेरु' विशेष

प्रसिद्ध है। नरसिंह की इस रचना मे उनकी कन्या कुंवर बाई के सीमन्त के अवसर पर निमन्त्रित किये जाने पर उनका समधी के घर जाना, वहाँ पर उनका खाली हाथ जाने के कारण मज़ाक होना, स्नान के लिए गरम पानी दे कर 'तुम तो भजन गा कर पानी भी बरसा सकते हो, तुम्हें ठंडे पानी की क्या आवश्यकता ?'—ऐसा समधिन का कहना, नरसिंह का मल्हार गा कर वर्षा कराना, विनय करने पर भगवान् का स्वयं वहाँ दामोदर दोशी नाम धारण करके आना और अवसर के अनुरूप कुंवर बाई के श्वसुर-पक्षवालो की मागी हुई सभी चीजें देना—यहाँ तक कि 'तुम क्या दोगे ? दो पत्थर ही रख देना', ऐसा नरसिंह से कहा गया था अतएव भगवान् का दो स्वर्ण-पाषाणों को भी रख देना इत्यादि वर्णित है। सच्ची भक्ति और श्रद्धा होने पर ईश्वर कृपा से सब कुछ प्राप्त होता है और सारे कार्य सम्पन्न होते हैं यही काव्य का मुख्य कथितव्य है। यह काव्य 'केदारा' राग मे लिखा गया है जिस राग को नरसिंह ने स्वयं बनाया था और जिस राग में सूरदास ने भी अपने काफी पद लिखे हैं। इनकी 'केदारा' राग की देन भारतीय संगीत के लिए भी एक असाधारण देन है इसमें कोई संदेह नही।

'हारमाळा अने हारसमेनापद' भी इनकी अत्यंत लोकप्रिय रचना है। इसी लोकप्रियता ने इस रचना को अप्रामाणिक मानना पड जाय, इतना प्रक्षिप्त कर दिया है। बाद के अनेक कवियो ने, कवि प्रेमानन्द ने भी हारमाळा के प्रसंग का वर्णन किया और अपनी कविता को अमरता प्रदान करने के लिए नरसिंह के 'हारमाळा' के पदो के साथ मिला दिया। इस रचना के सम्बन्ध मे गुजराती के विद्वानो मे काफी मतभेद पाया जाता है। श्री कन्हैयालाल मुन्शी तो इसे प्रमाणिक और नरसिंह कृत मानने को बिल्कुल तैयार नही।[1] हीरालाल पारेख, कवि नर्मदाशंकर, हरगोविंद दास कांटावाला, आदि अन्य अनेक विद्वानो ने भी इसे नरसिंह कृत नही माना है। परन्तु केशवराम का० शास्त्री नाम के विद्वान ने इसे प्रमाणिक और नरसिंह कृत सिद्ध किया है[2] वे भी कुछ पदो को अवश्य प्रक्षिप्त मानते हैं। इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने भी इसे नरसिंह कृत माना है[3]। इस रचना मे नरसिंह की विनय भावना देखने को मिलती है। इस विनय भावना मे विह्वल हो कर भगवान् को भली-बुरी सुनाना भी सम्मिश्रित है।

'हारसमेना पद' नामक रचना केवल विनय के लोकप्रिय पदो के संकलन के रूप में अस्तित्व मे आई होगी जब कि 'हारमाला' मे पूरे प्रसंग का वर्णन है। प्रसंग इस प्रकार है :—

---

१. K. M. Munshi, 'Gujrat and its Literature', Page 149.

२. केशवराम का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हारसमेनापद अने हारमाला' पृष्ठ ८७।

३. इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह'—पृष्ठ ५१।

जूनागढ का राजा रा'माडलिक नरसिंह के चमत्कारो तथा नरसिंह का स्त्रियो के साथ भक्ति के भावावेश मे गाना-नाचना इत्यादि के सबध मे विद्वेषियो से बार-बार सुनने पर नरसिंह की भक्ति की परीक्षा लेना चाहता है। वह नरसिंह से कहता है कि तुम्हे कृष्ण से इतना प्रेम है तो हम यह देखना चाहते हैं कि प्रात काल तक मन्दिर के बन्द द्वारो से निकलकर भगवान् कृष्ण तुम्हें अपने हाथो से अपना हार पहना दें।

नरसिंह की भक्ति का मजाक करने वाले बडे बडे विद्वान् सत-सन्यासी राज-सभा मे बैठे हुए हैं जिनसे नरसिंह का वाद-विवाद भी होता है। नरसिंह भक्ति को ज्ञान और वैराग्य से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए भगवान् से हार पहनाने के लिए विनय करते हैं। नरसिंह ने अपना बनाया हुआ राग 'केदारा' किसी दरिद्र ब्राह्मण की सहायता करने के लिए तलाजा गाँव मे धरणीधर नाम के व्यापारी के यहाँ गिरो रखा था। भगवान् केदारा राग से ही प्रसन्न होते हैं ऐसा इन्हे सुझाया जाता है, किन्तु अपनी अग्नि-परीक्षा की ऐसी जीवन और मृत्यु की समस्या की स्थिति मे भी वे गिरो रखे हुए केदारा राग का उपयोग नही करते। तब भगवान् स्वय नरसिंह का रूप धारण करके धरणीधर के यहाँ से केदारा छुडा लाते हैं और इसकी सूचना गुप्त-रूप से उन्हे देकर केदारा राग मे पद गाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। जब केदारा राग मे नरसिंह कुछ पद गाते हैं तब भगवान् कृष्ण स्वय आकर उनके गले मे पुष्प-माला अर्पित करते है। राजा लज्जित होकर नरसिंह से क्षमा माँगते हैं। इसी हार-माला के अतर्गत 'वैष्णवजन तो तेने रे कहिए जे पीड पराई जाणे रे'—यह गाधीजी का प्रिय और प्रसिद्ध भजन भी पाया जाता है। इस रचना के पद नरसिंह की विनय-भावना के परिचायक हैं। नरसिंह की विनय भावना की विशेष आलोचना सातवें अध्याय मे विस्तारपूर्वक की जायगी, यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इनकी विनय-भावना सूर और तुलसी की विनय भावना से कुछ भिन्न और विशिष्ट प्रकार की है।

आख्यानात्मक काव्य 'सुदामा चरित्र' मे कृष्ण के मित्र सुदामा का पत्नी के बार-बार कहने पर द्वारिका मे कृष्ण के यहाँ जाना, वहाँ प्रेमादर पाना, लौटते समय मार्ग मे कृष्ण के कुछ भी न देने पर वहाँ जाने के लिए पश्चाताप अनुभव करना और अन्त मे लौटने पर अपनी झोपडी को प्रासाद मे तथा निर्धनता को समृद्धि मे परिवर्तित देख कर कृष्ण-कृपा के लिए गद्‌गद् और चकित हो जाना वर्णित है।

इनकी शृङ्गार प्रधान रचनाओ मे 'सुरत सग्राम' प्रमुख है जो पूर्णरूपेण मौलिक होने के कारण नरसिंह की कल्पना शक्ति का तथा उनके काव्य-सौष्ठव का सुन्दर परिचय कराती है। उनकी यह रचना काव्य-विषय की दृष्टि से गुजराती, हिन्दी या सस्कृत—किसी भी भाषा के किसी पूर्ववर्ती कवि से प्रभावित नही है। इस रचना

का साहित्यिक मूल्य असाधारण है। इसमे राधा और कृष्ण के प्रेमयुद्ध का वर्णन है। एक दिन राधा बडे सवेरे अपनी दस सखियो के साथ दही-माखन इत्यादि बेचने जाती है। मार्ग मे कृष्ण और उनके दस साथी मिलते हैं, जो दान लिये बिना उन्हे आगे नही बढने देते। कृष्ण कुछ कह कर राधा को चिढा भी देते हैं। क्रोध मे आकर राधा कृष्ण से हाथापाई करने लगती हैं। कृष्ण भी राधा पर आक्रमण करते है। युद्ध का प्रारभ तो हो जाता है, किन्तु कृष्ण के पिता नन्द के एकाएक वहाँ आ जाने पर युद्ध स्थगित करके वे मित्रो का-सा व्यवहार करने लगते हैं। अब यह निर्णय किया जाता है कि अगली पूर्णिमा की रात्रि के दिन युद्ध खेला जाय। 'पराजित को विजेता की दासता स्वीकार करनी पडेगी' यह राधा की शर्त थी, जिसे कृष्ण ने स्वीकार किया। पूर्णिमा की रात्रि के दिन राधा अपनी सखियो के साथ घर से निकली। युद्ध से पूर्व एक अवसर देने के उद्देश्य से राधा ने कृष्ण के पास सदेशा भिजवाया कि अपना हित चाहते हो तो युद्ध का इरादा छोड कर हमारी शरण स्वीकार कर लो। सदेशवाहक होने का सौभाग्य नरसिंह को प्राप्त होता है। कृष्ण के मित्र नरसिंह को चोर समझ कर उनकी पिटाई शुरू करते है, लेकिन कृष्ण आकर बचाते हैं। नरसिंह राधा का लिखित सदेशा कृष्ण को देते हैं और सलाह भी देते हैं कि शरणागति स्वीकार कर लीजिए क्योकि स्त्रियो को पराजित करना सरल नही। किन्तु उनकी बात कोई नही मानता। कृष्ण भी कवि जयदेव के साथ राधा को सदेशा भेजते हैं कि युद्ध से तुम्हे कोई लाभ नही, अतएव हमारी शरण स्वीकार कर लो। राधा उसको अस्वीकार कर के उत्तर भिजवाती हैं कि 'हम क्यो शरणागति स्वीकार करें ? हम तो आद्याशक्ति स्वरूपा हैं, ससार की माताएँ हैं, देवताओ की भी जन्मदात्री हैं'।

इसके पश्चात् दोनो ओर के सैन्य आगे बढते हैं। नेत्रों की तिरछी चितवन के बाणो, चुम्बनो, आलिगनो, परिरभण इत्यादि का दोनो ओर प्रयोग होता है। नरसिंह भी गोपी स्वरूपा होकर युद्ध मे भाग लेते हैं। पहली बार कृष्ण तथा उनके मित्र पराजित हो जाते हैं। कृष्ण तो राधा द्वारा प्रयुक्त युद्ध-कौशल से बेसुध ही हो जाते हैं। उन्हें उठा कर उनके मित्र युद्धभूमि से भागने लगते हैं। राधा तथा उनकी सखियाँ पीछा करती हुई उन्हे दूर तक भगा देती हैं। अन्त मे विजय का गर्व अनुभव करती हुई सब वापस लौटती हैं।

७२ पदो मे लिखा गया यह काव्य शृङ्गार की सरसता का निर्वाह करते हुए युद्ध का-सा वातावरण चित्रित करता है यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है। प्रवाहमयी शैली काव्य के प्रभाव को बढा देती है। प्रेम के आयुधो का वर्णन कवि ने नि सकोच रूप से किया है। शृङ्गार का ऐसा वर्णन बहुत कम कवि कर पाये हैं। इस रचना को उनकी मौलिक और श्रेष्ठ शृङ्गारिक रचना माना जाता है। इस काव्य मे नरसिंह की शृङ्गार भावना का पूर्ण परिचय मिलता है।

उनकी अन्य शृङ्गारिक रचनाओं में 'गोविन्दगमन' में कृष्ण के मथुरा जाने का तथा गोपियो के विरह व्याकुल होने का मर्मभेदिनी वर्णन है। इसमे भी कवि ने मौलिक प्रसगो की सुन्दर कल्पना की है। 'वसतना पद' तथा 'हिंडोलाना पद' मे इन दो रचनाओ मे प्रथम रचना मे वसतोत्सव की उमंग तथा राधा-कृष्ण के प्रेम का ११६ पदो मे बड़ा ही सरस वर्णन मिलता है तथा दूसरी रचना मे सावन के झूलो का तथा राधा-कृष्ण के प्रेमपूर्वक झूलने का ४५ पदो मे बडा ही शृङ्गारिक वर्णन मिलता है। 'चातुरी षोडषी' मे १६ पदो मे तथा 'चातुरी छत्रीसी' में ३६ पदो मे राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं का घोर शृङ्गारिक वर्णन है। 'दानलीला' मे अत्यत सक्षिप्त रूप से श्रीमद्भागवत मे वर्णित दानलीला का वर्णन है। 'शृङ्गार माला' में पाँच सौ से अधिक पदो मे प्रेम और शृङ्गार का विस्तृत एव विशद वर्णन पाया जाता है। 'रासमहस्रपदी' मे कवि ने सहस्र पद लिखे होंगे, किन्तु इस समय केवल १८६ पद ही प्राप्त होते है, जिनमे उस रासलीला का वर्णन किया है जो नरसिह ने स्वय दिव्य द्वारिका मे देखी थी। उस रासलीला को देखते-देखते नरसिह अपना पुरुषत्व खोकर स्त्रीरूप हो जाते है। काव्यत्व की दृष्टि से यह रचना उनकी श्रेष्ठ रचनाओ मे से एक है। इन सभी रचनाओं मे पाई जाने वाली नरसिंह की शृङ्गार भावना की विशेष आलोचना छठे अध्याय मे की जायगी। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गुजराती साहित्य मे इनकी ये शृङ्गारिक रचनाएँ अप्रतिम हैं।

वात्सल्य रस की उनकी कविता सूर की तुलना मे अत्यत साधारण है और केवल कवि कर्त्तव्य निभाने के लिए ही 'कृष्ण जन्म समेना पद', 'कृष्णजन्म वधाईना पद' तथा 'बाललीलाना पद' इन छोटी छोटी रचनाओ मे सक्षेप मे वात्सल्य रस के वर्णन कर दिये गये हैं। भक्ति और ज्ञान के पद नरसिह के सबसे प्रसिद्ध हैं और नरसिह की प्रसिद्धि और लोकप्रियता का आधार ये ही पद हैं। इनके प्रभाती (प्रभातियाँ) सौराष्ट्र—गुजरात के अतिरिक्त राजस्थान मे तथा उत्तर भारत मे भी प्रसिद्ध, प्रचलित और लोकप्रिय हैं। इन पदो मे हमें भक्त नरसिह की भक्ति भावना का परिचय मिलता है। इन पदो मे दार्शनिकता भी प्राय सर्वत्र प्रस्फुटित होती दिखाई देती है। नरसिह ने वीर रस, अद्भुत रस, हास्य रस और करुणा रस का भी निरूपण किया है, किन्तु रौद्र रस तथा भयानक रस का वर्णन नहीं मिलता है, जो सूर मे मिलता है।

नरसिह की समस्त रचनाओ का विहगावलोकन करने पर हमारा ध्यान एक विशेष तथ्य की ओर जाता है और वह यह कि नरसिह ने मौलिक रूप से कविता करने मे अधिक उत्साह प्रदर्शित किया है। श्रीमद्भागवत् मे वर्णित अनेक विषयो का तो वे उल्लेख तक नही करते और भगवान् के लोकरक्षक रूप का वर्णन तो वे इने-गिने पदो मे ही समाप्त कर देते हैं। संगीत के समन्वय ने इनके पदो की मधुरता को अनेक गुणा बढा दिया है। भावो का चित्रण ये बडे कौशल के साथ करते हैं तथा इनकी

शैली अत्यंत सरस और प्रवाहमयी है। साहित्यिक दृष्टिकोण से नरसिह् मेहता ही गुजराती के प्रथम प्रसिद्ध कवि हैं अतएव उन्हे गुजराती का आदि कवि भी माना जाता रहा है। गुजराती के प्राचीन कवियों मे नरसिह का स्थान साहित्यिकता एव लोकप्रियता की दृष्टि से सबसे ऊँचा और महत्वपूर्ण है। गुजराती साहित्य को इनकी जो देन है वह असाधारण है।

सूरदास और नरसिह् मेहता की रचनाओ की सामान्य तुलना करने पर हम एक विशेष बात यह देखते हैं कि सूर ने वात्सल्य के पदों की रचना विस्तार से और उत्साह से नरसिह मेहता ने नही की। इसका मुख्य कारण यही है कि नरसिह् ने दिव्य द्वारिका राधा-कृष्ण की जो लीलाएँ देखी थी उन्ही मे उनका मन अधिक रमता था और उन्ही का नि सकोच वर्णन करने का स्वय भगवान् का उन्हे आदेश था इसी विश्वास को लेकर इन्हो अपनी साहित्य सृष्टि की। सूरदास ने श्रीमद्भागवत को आधार बना कर भी अपनी अपूर्व मौलिकता का परिचय सर्वत्र दिया है। नरसिह ने श्रीमद्भागवत से प्रेरणा प्राप्त की हो यह सभव है, किन्तु उसे उन्होने अपने काव्य के लिए आधार बिल्कुल नही बनाया। अतएव इनकी रचनाओ मे मौलिक प्रतिभा पूर्णरूपेण प्रस्फुटित होती है—'सुरत सग्राम' जैसी रचना मे तो विशेष रूप से। सूरदास ने 'केदारा' राग का उपयोग किया है इसलिए नरसिह के 'केदारा' राग का प्रसार उनके समय तक ब्रज मे अवश्य हो गया होगा। सूरदास मे हमे जो उच्च कल्पना शक्ति, मौलिक प्रसगोद्भावना, वाग्विदग्धता तथा भावो की तीव्रता देखने को मिलती है तथा भावपक्ष और कलापक्ष का जो सुन्दर सतुलित समन्वय देखने को मिलता है वह नरसिह् मेहता मे दुर्लभ है। परन्तु भक्ति और ज्ञान के पदो मे नरसिह मेहता जिस दार्शनिकता का परिचय देते हैं वह सूर मे उस मात्रा मे और उस प्रभावोत्पादक रूप मे दुर्लभ तथा सर्वत्र पाई जाने वाली मौलिकता भी नरसिह की खास विशेषता है। लोकप्रियता भी नरसिह को सूर की अपेक्षा तुलसी के समान अधिक मिली है। सूरदास और नरसिह् मेहता के सुदर और अद्भुत कृष्ण-काव्य ने हिन्दी और गुजराती ने कृष्ण-काव्य की नीव डाली कहना कोई अतिशयोक्ति नही क्योकि ये दोनो हिन्दी, गुजराती के प्रथम प्रसिद्ध और लोकप्रिय कवि हैं। इन दोनो ने अपने साहित्य से परवर्ती कवियो को और परवर्ती कृष्ण-काव्य को पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित किया है इसमे कोई सदेह नही। तत्कालीन नैराश्यपूर्ण जन जीवन का उन्होंने प्रेम लक्षण भक्ति के अनत और अमोघ आनद से विभोर कर दिया, यह भी एक ध्यान देने योग्य वास्तविकता है। नरसिह् मेहता का प्रत्यक्ष नही तो परोक्ष ही सही कुछ प्रभाव सूर पर अवश्य पडा है। 'केदारा' राग का सूर के द्वारा अनेक पदो मे प्रयोग होना इसका सबसे बडा प्रमाण है। एक किवदन्ती के अनुसार, सूर तो क्या वल्लभाचार्य भी नरसिह से प्रभावित हैं, जिसमे यह बताया गया है कि नरसिह वल्लभाचार्य

और उनके पुष्टिमार्ग के प्रादुर्भाव के संबंध मे भविष्य वाणी की थी। नरसिंह का एक पद भी इस प्रकार का मिलता है जिसकी प्रामाणिकता कुछ संदिग्ध ही है। इस पद मे नरसिंह ने लिखा है कि श्री वल्लभ और श्री विट्ठल पृथ्वी पर जन्म लेकर, पुष्टिमार्ग की स्थापना करके शरण में आने वालो का बिना किसी साधन के ही उद्धार करेंगे [1]। वल्लभ सम्प्रदाय के गुजरात के लोग इसे प्रमाणिक मानते हैं, क्योंकि यह पद वल्लभ-सम्प्रदाय के एक गुजराती ग्रंथ मे मिलता है। आज के वैज्ञानिक युग में यदि हम भक्तो के जीवन मे होने वाले अनेक चमत्कारो मे विश्वास कर सकते हैं, तो एक भक्त की ऐसी भविष्यवाणी पर भी विश्वास कर सकते हैं। यदि उसे प्रक्षिप्त माना जाय तो इसका रहस्य यह है कि वल्लभसम्प्रदाय के प्रचार के लिए इस प्रकार की नरसिंह मेहता की वल्लभसम्प्रदाय को स्वीकृति और मान्यता प्रदान करने वाली भविष्यवाणी की कल्पना की गई हो। दोनो स्थितियो मे नरसिंह, वल्लभाचार्य और सूर से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं, जिनका सूर पर इनके 'केदारा' राग की हद तक अवश्य प्रभाव पड़ा।

सूर और नरसिंह का साहित्य सच्चे भक्त के हृदय की वाणी होने से तथा भक्ति की तीव्र अनुभूति के फलस्वरूप उत्पन्न होने के कारण अधिक हृदयस्पर्शी और प्रभावोत्पादक प्रतीत होता है। इसीलिए साहित्य इतना लोकप्रिय हुआ है और रहेगा। ऐसा साहित्य भी उसमे वर्णित भक्ति-भावना के समान शाश्वत होता है, चिरस्थाय होना है। उनके पदो मे अनेक राग-रागिनिओ के जो नाम मिलते हैं उनमे एक अमर और दिव्य मधुर रागिनी भी अप्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र गूंजती है, जो शाश्वत प्रेम की रागिनी है और जिसमे अनंत प्रेम रूप कृष्ण की वंशीवादन का माधुर्य है, राधा और गोपियों के नूपुर ध्वनि का माधुर्य है, यमुना के कलकल रव का माधुर्य है और हृदय के प्रेम-स्पंदनो का माधुर्य है। मानव-जीवन की तीनो अवस्थाओ से, बाल्यावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्था से संबंधित वात्सल्यरति, दांपत्यरति और भगवद्विषयक रति-रति भाव के ये तीना प्रबल और प्रधान रूप सूर और नरसिंह ने लिए हैं, जिसके कारण इनका साहित्य किसी काल विशेष मात्र का न हो कर सर्वकालीन हो गया है।

●

---

[1] श्री वल्लभ श्री विट्ठल भूतले प्रगटीने पुष्टिमार्ग ते विस्तार करशे,
देवी निज जीव जे शरण ते आवशे विना साधन उद्धार करशे"
— द० मू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ५१४, पद २२१।

अध्याय ५

सूरदास और नरसिंह मेहता का वात्सल्य वर्णन

सूर और नरसिंह मेहता दोनो ने कृष्ण कवि होने के कारण कृष्ण की बाल-लीलाओ का वर्णन अपनी कविता मे बराबर किया है। इस प्रकार के वर्णनों मे वात्सल्य रस का निरूपण भी यथार्थ रूप मे हुआ है। किन्तु 'जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्यजीवन का चित्रण'[1] सूर ने किया उतने विस्तृत और विशद रूप में नरसिंह मेहता ने नही किया है। वात्सल्य-वर्णन करने मे नरसिंह मेहता सूरदास का सा उत्साह भी नही दिखला सके हैं। जहाँ सूरदास 'वात्सल्य के क्षेत्र का कोना-कोना झाँक'[2] आते हैं वहाँ नरसिंह मेहता वात्सल्य के क्षेत्र का मानो विहगावलोकन प्रस्तुत करके ही संतुष्ट रह जाते हैं। सूरदास के वात्सल्य रस के सब से बड़े कवि हैं और इस क्षेत्र मे नरसिंह मेहता उनकी समता नही पा सकते। सूर के वात्सल्य के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि कोई उसकी छाया भी नही छू पाता। इसका कारण यह है कि सूर ने केवल बाल-कृष्ण के सौन्दर्य का या नन्द-यशोदा आदि के प्रेम का वर्णन मात्र करके सतोष नही माना है, अपितु बाल्यभाव का मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म ढग से चित्रण किया है। नरसिंह मेहता इस प्रकार की मनो-वैज्ञानिकता या सूक्ष्मता नही दिखला सके हैं। यद्यपि दोनो कवियो की वात्सल्य भावना अनत को अर्पित हुई है तथापि सूर के समान स्वाभाविक मर्मस्पर्शी वात्सल्य वर्णन नरसिंह मेहता नही कर सके हैं यह निश्चित है। 'सूरदास ने वात्सल्य वर्णन का ऐसा सागोपाग एव पूर्ण कथन किया है कि वह शृङ्गार के अतर्गत 'भाव' की कोटि से निकल कर विभाव, अनुभाव, सचारी आदि से परिपुष्ट स्वय एक 'रस' बन गया है।'[3] नरसिंह मेहता का वात्सल्य वर्णन सूरदास के वात्सल्य वर्णन की तुलना मे अत्यन्त साधारण है।

पहले दोनो कवियो के वात्सल्य वर्णन के सयोग पक्ष पर विचार किया जाय। सूर और नरसिंह मेहता दोनो का कृष्ण जन्म सम्बन्धी वर्णन भागवत के आधार पर ही किया है। इन दोनो कृष्ण कवियो को कृष्ण जन्म उपरात की देवकी की मनः

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'त्रिवेणी', पृष्ठ ८३।
२ " " " " ७३।
३ श्री द्वारिकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, 'सूर-निर्णय', पृष्ठ २८३।

स्थिति का चित्रण संक्षिप्त होते हुए भी मर्माहत करने वाला है। सूर की देवकी कभी पुत्र की मृत्यु के दुःख की अपेक्षा पुत्र वियोग के दुःख को सह्य अनुभव करके पति से उसे बचाने के लिए उपाय सोचने की प्रार्थना करती हैं[1] तो कभी पुत्र वियोग के दुःख की कल्पना से व्याकुल होकर वसुदेव से कहती हैं कि विवाह के पश्चात् आकाशवाणी सुनने पर जब कंस हमें मारने तत्पर हुए तब आपने उन्हें रोक कर मुझे क्या बचाया? उसी दिन मरती तो आज का यह पुत्र वियोग का दुःख तो अनुभव न करती। ऐसे पुत्र के बिछुड़न पर कोई माता जीवित ही कैसे रह सकती है[2]? नरसिंह मेहता ने भी देवकी को पुत्र वियोग होने पर अत्यन्त व्यथित एवं विक्षिप्त-सी वर्णित किया है। देवकी बालकृष्ण से वियुक्त होने के पूर्व, प्रार्थना करती है कि 'हमारे कुंवर, तुम हम दुःखियों को *याद रखना, हमारा ध्यान रखना।* तुम्हारे वियोग के दुःख से मैं तुम्हारी माता अभी से विरहाग्नि में जलने लगी हूँ। यही स्थिति तुम्हारे पिता की है। पापी कंस के भय से तुम्हें पराये के घर भेज रही हूँ जिससे मेरा जी बहुत ही जल रहा है। कोई अपने पुत्र को पराये के घर नहीं भेजता, सिवाय कि *माता की मृत्यु* हुई हो। पुत्ररत्न पा कर *यशोदा माता कहलाएगी,* उसके घर उत्सव मनाया जाएगा, वन्दनवार लगेंगे। मैं तो तुम्हारी मिथ्या माता हूँ और तुम मेरे मिथ्या पुत्र हो।' अश्रुपूर्ण नेत्रों से पुत्र के अन्तिम दर्शन करती हुई वे नोन उतार कर कहती हैं कि 'तुम्हारी आयु कोटि वर्ष की हो[3]।'

---

१ 'अहो पतिसो उपाइ कछु कीजै।
जिहि उपाइ अपनौ यह बालक, राखि कंस सौं लीजै।' 'सूरसागर', पृष्ठ २६० पद संख्या ६२७।

२ 'तब बत कंस रोकि राख्यौ पिय, कत वाही दिन काहैं न मारी।
कहि जाको ऐसौ सुत बिछुरै, सो कैसैं जीवै महतारी।'
—'सूरसागर', पृष्ठ २६१, पद संख्या ६२६।

३ "कहे देवकी सुणो कुंवर हमारा, हमा दुखयानी लेजो संभाल रे,
रखे पुत्र हमोने विसारता, नहितो आवशे हमारो काल रे। कहे०
दो पुत्र दुःखे दाझी माता तमारी, दुःखे दझीया छे तात तमारो रे,
पापीनो भे भाग्यो पुत्रवन्त छुं, घणु दाझे जीव हमारो रे। कहे०
परघेर पुत्रने कोई न वलावे, जेनी माता होय मुइ रे,
पुत्रधन कमाइ जशोदा मेरा, माता ते कहेवाशे रे,
मिथ्या माता हु पुत तु मारो, परघरे तारण त्र धारो रे। कहे०
पुत्रने आपी माता आंसुडा ढाले, पुत्र देली करज हमारी रे,
कोटिवरस आयुष्य हजो पुत्रने, माता लूण नाखे उतारी रे। कहे०"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई द्वारा सम्पादित 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४३१-४३२।

यह वर्णन अपने मे अद्वितीय है। सूर ने या अन्य किसी भी हिन्दी के कृष्ण-कवि ने देवकी के मातृहृदय का ऐसा मार्मिक चित्र प्रस्तुत नही किया है। 'कृष्णजन्म समाना पद' के केवल ११ पदो मे कृष्ण के जन्म से लेकर उनके द्वारिका-गमन तक का वर्णन सक्षेप मे कर दिया गया है। इतने कम पदों मे भी, स्थानाभाव के रहते हुए भी नरसिंह ने देवकी के मातृ हृदय का मार्मिक चित्रण एक पूरे पद मे किया है यह एक बहुत बडी और विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है। कवि ने देवकी का चित्रण केवल एक ही बार किया है, किन्तु उस एक बार के चित्रण मे भी कवि की देवकी के प्रति की सहानुभूति की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति हुई है तथा देवकी की उस समय की मनःस्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक एव हृदयस्पर्शी चित्र तादृश्य कर दिया गया है। देवकी के वात्सल्य का नरसिंह का यह वर्णन अपने मे विशिष्ट है इसमें कोई सदेह नही।

नरसिंह मेहता ने 'श्रीकृष्णजन्म वधाईना पद' मे केवल ८ पदों मे कृष्णजन्म के अवसर पर नन्द-यशोदा को अनुभव होने वाले आनदोल्लास का तथा व्रज के सभी लोगों के उत्साह एव उमग का सक्षिप्त वर्णन किया है। सूरदास ने इस प्रसग का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। नरसिंह मेहता नन्दयशोदा के आनद का वर्णन केवल 'माता का हर्ष समाता नही है'[1] तथा 'नन्दजी आनन्दित हुए[2]' इतना कह कर समाप्त कर देते हैं। सूरदास ने नन्द-यशोदा के आनंदोल्लास का वर्णन विशेष उत्साह के साथ किया है। वे कहते हैं कि माता यशोदा जब जागी तब अग और उर मे पुलक समाता नही था। उनका कठ गद्-गद् हो गया, बोला नही जा रहा था, हर्षित हो कर नद को बुलाया कि आइये स्वामी, देव प्रसन्न हुए हैं, पुत्र हुआ है, दौड़कर आइये और उसका मुँह देखिये। नन्द दौड़कर पास गए और पुत्र का मुख देखा। उस समय के उनके उस सुख का वर्णन नही किया जा सकता।[3] पुत्ररत्न की प्राप्ति होने पर माता-पिता कितने हर्षित होते हैं इसका बडा ही स्वाभाविक एव यथार्थ चित्रण सूरदास

---

१ 'मातानो हर्ख न मावरे', इच्छाराम सूर्यराम देसाई द्वारा संपादित 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४३७।

२ 'नंदजी आनन्द पामा'—इच्छाराम सूर्यराम देसाई द्वारा संपादित, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४३५।

३ "......................

जागी महरि, पुत-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उरमै न समाइ।
गद् गद् कंठ, बोलि नहि आवै, हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।
आवहु कंत, देव परसन भए, पुत भयौ, मुख देखौ धाइ।
दौरि नंद गए, सुतमुख देख्यौ, सो सुख मोपै बरनि न जाइ।
...."—'सूरसागर', पृष्ठ २६१—२६२, पद ६३१।

कर पाये हैं। नरसिंह इस हर्ष का उल्लेख मात्र करके आगे बढ जाते हैं। एक दूसरे पद मे सूरदास कहते हैं कि यशोदा ने नन्द को यह संदेशा भिजवा कर बुलवाया कि पूर्व जन्मो के तप का फल प्राप्त हुआ है, आकर पुत्र-मुख देखिये। तब नन्द हँसते हुए आए और उस अवसर पर उनका आनन्द उर मे समाता नही था।[१]

नन्द-यशोदा के यहाँ कृष्ण का जन्म होने पर व्रज के गोप-गोपी कितने प्रसन्न हैं इसका वर्णन सूर और नरसिंह दोनो ने किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि नरसिंह ने इसका वर्णन अत्यत सक्षेप मे किया है और सूर ने कुछ विस्तार से। नरसिंह कहते हैं कि घर-घर मे उत्सव मनाया जा रहा है।[२] प्रसन्न और पुलकित हो कर ऐसी मानवती स्त्रियाँ भी दौड पडीं जो अपने ऐश्वर्य के कारण घर की सीमा भी लाँघना अपना अपमान समझती थी। उनका आनन्द हृदय मे समाता नहीं है।[३] आपस मे वे कहती हैं कि चलो सखी, हम नन्दकुवर को देखने चलें। स्वर्णथाल मे मुक्ताफल लेकर मगलगान गाने चले।[४] घर-घर से गोपियाँ निकली और समवयस्काओ की टोली टोलियाँ बनीं। नन्द के प्रागण मे सब ने दही की मटकियाँ उडेल कर दही का कीच उत्पन्न कर दिया।[५]

सूरदास ने व्रजवासियो की प्रसन्नता का वर्णन बार-बार और विस्तृत रूप से किया है। वे कहते हैं कि आज व्रज म गोचारण के लिए कोई नहीं जा रहा है। सारे गाँव मे प्रसन्नता का कोलाहल मच गया है, किसी का आनद उर म नहीं समाता।[६] नन्द के गृहद्वार पर गोप गोपिकाओ की भीड है। उस समय की महिमा का वर्णन नही किया जा सकता। गोकुल म सभी अत्यत आनंदित हैं। वृद्ध, युवक

१　"
तब हँसि कहत जसोदा ऐसैं, महरहि लेहु बुलाइ।
प्रगट भयौ पूरब तप कौ फल, सुत-मुख देखौ आइ।
आए नद हसत तिहिं औसर, आनद उर न समाइ।
."—'सूरसागर', पृष्ठ २६२, पद ६३०।

२　'　　　घेर घेर ओच्छव थाय रे'।

३　'महालां महाल करे मानुनी, आनद उर माय रे'।

४　'चालो सखी आपण जइए, नदकुवरने जोवा रे।'
कचन थाल भरी मुक्ताफलनी, मगलगान करवा रे।'

५　'घर घर थी निसरी रे गोपी, सरखा सरखी टोली रे।'
दधी कीच मच्यो नद आगणे, शीरथी ढोली गोळी रे।'
—इ० यु० दे० द्वारा सपादित, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४१६ ४१७।

६　'सब दिन घोषमैं भयौ कुलाहल, आनद उर न समाइ।' —'सूरसागर', पृष्ठ २६१,
पद ६३८।

और बालक—सभी उसी आनन्द में नाचते हैं और गोरस का कीच उत्पन्न कर देते हैं।[१] सखियाँ आपस में कहती हैं कि 'चलो सखी, हम भी मिल कर जायें। तनिक भी देर मत लगाओ।' किसी ने आभूषण धारण किया, कोई आभूषण धारण करने लगी और कोई वैसे ही उठ कर दौड़ी। जब स्वर्ण-थाल में दूध दही इत्यादि शकुन की वस्तुऐं ले कर, बधाई के सुंदर गीत गाती हुई विविध प्रकार से सजधज कर युवतियाँ चली तब उस दृश्य के वर्णन के लिए उपमा ही नहीं मिली।[२]

सिर पर दही और मक्खन की मटकियाँ लेकर, नए-नए मंगल गीत गाती हुई सब गोपियाँ नन्द के घर चली। डफ, झाँझ और मृदंग बजाते हुए सब नन्द के घर गये। आनन्दोल्लास में नाचते हुए सबने इतना अधिक दही और हल्दी छिड़क दिया कि मानो भादों की वर्षा हुई और घी एवं दूध की नदी बही।[३]...सब ग्वाले आनन्द में मग्न हैं[४] घर-घर में आनन्द छाया हुआ है, जगह-जगह नृत्य हो रहे हैं। नन्द के द्वार पर भेंट ले-ले कर सारा गोकुल गाँव उमड पड़ा है[४]। जब घर से गोपियाँ निकलीं तब गोकुल की रंग गली में भीड़ हो गई। उनके सुन्दर हाथों में स्वर्ण-थाल ऐसे लगते थे मानो कमल के ऊपर चन्द्र शोभायमान हो रहा हो। उमंग के कारण गोपियाँ प्रेम की सरिताओं के सदृश प्रतीत हो रही थी जो नन्द के सदन रूपी सागर की ओर उमडी हुई जा रही थी। रत्नजडित स्वर्ण कलश अपनी चमक से संसार के

---

१ 'द्वारैं भीर गोप-गोपिनिकी, महिमा बरनि न जाइ।
अति आनंद होत गोकुलमैं
नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस-कीच मचाइ।'
—'सूरसागर', पृष्ठ २६३ पद ६३६।

२ 'चलौ सखी हम हूँ मिलि जैऐ, नैंकु करौ अतुराइ।
कोउ भूषन पहिर्‌यौ, कोउ पहिरति, कोउ वैसेंहि उठि धाइ।
कंचन-थार दूब-दधि रोचन, गावति चारु बधाइ।
भाँति-भाँति बनि चलीं जुवति जन, उपमा बरनि न जाइ।'
'सूरसागर', पृष्ठ २६४, पद ६४०।

३ "सिर दधि माखन के माट, गावत गीत नए।
डफ झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नंद भवन गए।
मिलि नाचत करत कलोल, छिरकत हरद-दही।
मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत-दूध बही।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २६६, पद ६४२।

४ "आनंद अतिसै भयौ घर-घर, नृत्य ठाव हि ठाव।
नंद द्वारैं भेंट लै लै उमह्यौ गोकुल गाव।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २६७, पद ६४४।

समस्त अमंगल को भगा रहे थे।[१]

सूरदास ने उपरोक्त उदाहरणों में अपनी कल्पना शक्ति और अपने काव्य कौशल का कितना सुन्दर परिचय दिया है। सूरदास ने केवल ब्रज के स्त्री पुरुषों के आनंदोत्साह का ही वर्णन नहीं किया है, अपितु ब्रज की गायों और प्रकृति में भी इस आनन्द को दिखलाया है। आनन्द-मग्न गायों के थनों में स्राव होने लगा और वे दूध के फेन से युक्त दिखलाई देने लगीं। यमुना का जल भी लहरों में उछल कर अपना आनन्द प्रकट करने लगा। सूखे हुए वृक्षों पर नए पत्र निकलने लगे। वन की लताएँ प्रफुल्लित हो कर पुष्पित होने लगीं[२]। यमुना का जल उमड़ने लगा, कुंज-पुंज प्रफुल्लित होकर पल्लवित एवं पुष्पित होने लगे। आकाश में काले बादलों का समूह भी हर्ष का गर्जन करने लगा[३]। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर विश्व-मंगल विधायक भगवान् कृष्ण के जन्मोत्सव का आनंद विश्वव्यापी आनंद के रूप में वर्णित करते हैं। देवताओं के आनंद का और उनकी पुष्पवृष्टि का वर्णन भी बार-बार हुआ है। आनन्द का यह उदात्त एवं उज्ज्वल भाव अनंत मूल्यवान है।

सूरदास का ब्रज के स्त्री पुरुषों के आनन्द का वर्णन जितना विस्तृत और विशद है, उतना ही स्वाभाविक भी। नरसिंह मेहता का वर्णन अत्यंत संक्षिप्त होने के कारण उतना प्रभावोत्पादक प्रतीत नहीं होता। सूरदास अपने वर्णनों से हमारे सम्मुख ब्रज और ब्रज के गोप-गोपियों का तद्रूप चित्र प्रस्तुत करते हैं। नरसिंह में यह क्षमता ढूँढने पर भी नहीं दिखाई देती।

सूरदास और नरसिंह मेहता दोनों ने बालक कृष्ण के पालने की सुंदरता का वर्णन किया है। नरसिंह मेहता ने अत्यंत संक्षेप में अपना वर्णन समाप्त कर दिया है, जब कि सूरदास ने अपेक्षाकृत कुछ विस्तार से इसका वर्णन किया है। नरसिंह कहते हैं कि कृष्ण का पालना बिल्कुल सोने का है, हीरे, माणिक्य और मोतियों से

---

१ 'गृह-गृह तैं गोपी गवनीं जब। रंग-गलिनि बिच भीर भई तब।
सुबरन-थार रहे हाथनि लसि। कमलिनि चढ़ि आए मानो ससि।
उमगी प्रेम-नदी छवि पावैं। नंद सदन-सागर कौं धावैं।
कंचन-कलस जगमगैं नग के। भागे सकल अमंगल जग के।
—'सूरसागर', पृष्ठ २६१, पद ६५०।

२ 'आनद-मगन धेनु स्रवैं थनु पय-फेनु, उमग्यौ जमुन-जल उछलि लहरकै।
अंकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन बेली प्रफुलित कलिनी कहरकै।'
—'सूरसागर', पृष्ठ २७१, पद ६५२।

३ "उमगे जमुन-जल, प्रफुलित कुंज-पुंज,
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २७१, पद ६५२।

जटित है, चौदह रत्नों की कान्ति इसमें पाई जाती है[1]। सूरदास के बालकृष्ण का पालना बिल्कुल दिव्य है। विश्वकर्मा बढ़ई और काम सुनार कर पर चन्दन की लकड़ी का पालना बनाते हैं, जिसमें हीरे-मोती जड़े हुए हैं और पचरंगी रेशम लगा हुआ है[2]। रत्न और माणिक्य से जटित पालना काम-रूपी सुनारने गढ़ा है, जिसमें चारों तरफ गजमुक्ताओं को खिलौनों के समान लगा दिया गया है।[3] इस प्रकार सूरदास द्वारा वर्णित पालना अत्यत सुन्दर, असाधारण और दिव्य है। समुद्रमथन में निकाले गए चौदह रत्नों की दिव्य कान्ति युक्त नरसिंह द्वारा वर्णित पालना भी दिव्य ही है।

ऐसे मनोहर पालने में बालकृष्ण को झुलाते-सुलाते समय माता यशोदा कितनी प्रसन्न और पुलकित रहती है इसका वर्णन इन दोनों कवियों ने बड़े उत्साह के साथ किया है। सूरदास का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। अन्य सूरदास का सूक्ष्म पर्यवेक्षण आश्चर्य में डाल देता है। नरसिंह मेहता का वर्णन अत्यत साधारण प्रतीत होता है और उसमें सूरदास की सी विशेषता का लवलेश भी नहीं पाया जाता। इसका कारण संभवत यही है कि नरसिंह का मन बाल-लीला के वर्णन में अधिक नहीं रमा है। 'बाल-लीला में केवल ३० पदों में इन्होंने कृष्ण की बाललीला का वर्णन समाप्त कर दिया है। सूरदास का मन बाललीला-वर्णन में भी उतना ही रमा है जितना शृंगार-वर्णन में। पालने में बालकृष्ण को झुलाते समय की यशोदा की प्रसन्नता का वर्णन करते हुए नरसिंह मेहता कहते हैं कि माता फूली नहीं समाती। पालने पुत्र को सुला कर मंगलगान गा रही हैं[4]। पालने में पुरुषोत्तमजी

---

१ "साव सोनानुंरे पारणुं, माणक मोतीए जडीयुं रे,
चौद रतननी कांति विराजे, झाझा हीरले मढीयुं रे।"
—र स. दे द्वारा सपादित, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४३७।

२ 'बिस कर्मा सुतहार, रच्योकाम ह्वै सुनार।
मनिगन लागे अपार. काज महर छैया।
सीतल चन्दन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ, विविध चौकी बनाउ, रंग रेसम लगाउ, हीरा मोतिनि मढ़ाउ।'
—'सूरसागर', पृष्ठ २७५, पद ६५६।

३ 'कनक-रतन-मनि पालनौ, गढ़्यो काम सुतहार।
सपमपध सरकौना भांतिके, (बहु) गज मुक्ता चहुधार।'
—'सूरसागर', पृष्ठ २७६, पद ६६०।

४ "माता फूली अगे न माय रे,
पारणा मांहे पुत्र पोढाडी, हरखी मंगल गाय रे।"
—र. छ. देसाई द्वारा सपादित
'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह' पृष्ठ ५६२।

सोये हुए हैं। माता का हर्ष समाता नहीं है[१]। यशोदा कृष्ण को पास बुलाते हुए कह रही हैं "मेरे पास आओ, प्यारे कृष्ण! मैं तुम पर निछावर होकर तुम्हें पालने पर सुला कर खूब झुलाउगी। मैं गीत गाऊँगी और तुम्हें नींद आएगी[२]।" माता यशोदा कृष्ण को पालने में सुलाती हुई आनन्दपूर्वक खड़ी-खड़ी उसका मुख देख रही हैं। उसे देख कर माता का हृदय शीतलता का अनुभव करता है। जिनके लिए बड़े-बड़े मुनि अपनी देह को कष्ट देकर तप करते हैं वे कृष्णजी सो पालने में खेल रहे हैं।[३] माता मगल-गान गा रही हैं। पालने मे पुत्र सोया हुआ है, जिसे देख कर तृप्ति ही नहीं होती[४]। मगलगान गाती हैं और माता मन ही मन अत्यंत प्रसन्न होती हैं। पालने में जब कृष्ण सोते हैं तब उनका मुख निहारती ही रहती हैं[५]।

सूरदास इसी प्रसन्नता का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता के साथ करते हैं। यशोदा हरि को पालने मे झुला रही हैं। प्यार के साथ कृष्ण को सुलाती हुई वे जो मन मे आता है वही गाती रहती हैं। 'मेरे लाल को जल्दी से नींद आ जाय। आओ नींद, तुम आ कर सुलाती क्यो नहीं? तुझे कान्हा बुला रहा है, तू जल्दी क्यो नहीं आती? कभी पलकें मूँद कर हरि ओठ फरकाते हैं तब उन्हें सोया हुआ समझ कर यशोदा मौन हो कर इशारो से कहती हैं देखो मेरे कृष्ण सो गए। इसी बीच सोने का बहाना किये

---

१ 'पारणे पोढ्या पुत्र्ये शमनी, मातानो हर्ख न मायरे।
—इ. स. देसाई द्वारा सपादित
'नरसिंह मेहता कृत काव्य समह' पृष्ठ ४३७।

२ "हारे आधो आवनो कुवर कृष्ण वोटामणा रे,
मामणाडां लईनें पोढाडु पालणे रे, धुमडी मालु रे, 'कृष्ण शोहामणा रे,
हु गाउ गीत आवे निद्रडी रे"
—इ. स. देसाई द्वारा सपादित 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह'
पृष्ठ ४६४-४६५।

३ "मातारे जसोदा हरिने धुमण घाले, आनन्दे उलटे उभ वदन निहाले।
जोड-जोड जनुनीनु मनडु ठरे।
जेहने काजे महामनि देह वे दमे, तो कृष्णजी पारणमां रगे रे रमें।"
—इ. स. देसाई द्वारा सपादित 'नरसिंह मेहतानो काव्य समग्र', पृष्ठ ४६५।

४ "मगल गाये रे माता मगल गाये,
पारणा मांहे पोढ्यो रे पुत्र, जोती तृप्त न थाये,"
—इ. स. देसाई द्वारा संपादित
'नरसिंह मेहतानो काव्य समग्र', पृष्ठ ४६५।

५ "मगल गाये न माता मलतां महाने,
पारणामां कुंवर पेढे त्यां वदन निहाले।"
—इ. स. देसाई द्वारा सपादित
'नरसिंह मेहतानो काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६६।

हुए कृष्ण आकुल हो कर उठ जाते है और तब यशोदा पुन मधुर गीत गाने लगती हैं। देवताओ और मुनियो को भी जो सुख दुर्लभ है वह यशोदा को प्राप्त हो रहा है[१]।

इस पद मे बालक कृष्ण के पलको को मूंदने का तथा ओठो के फरकाने का वर्णन कितना सूक्ष्म और बालमनोविज्ञान का परिचायक है। बालक कृष्ण को सुलाने के लिए माता यशोदा का जो मन मे आ जाय वही गा देना तथा कृष्ण को सोया हुआ जान कर माता का मौन होकर सकेत से कहना कि ये सो गए हैं—ये वर्णन कितने स्वाभाविक और तद्रूप है।

एक दूसरे पद मे, यशोदा पालने मे श्याम को सुलाती हुई बड़े प्रेम से कुछ गाती हैं और मन ही मन प्रफुल्लित और पुलकित होती हैं। बडी उमग से वे कृष्ण की भुजाओ को सहलाती हैं और कभी हर्ष मे आकर उन्हे हृदय से लगा लेती हैं। यशोदा अत्यत प्रमुदित रहती हैं और सोचती हैं कि पूर्वजन्म की करनी से ही यह सुख प्राप्त हुआ है[२]। जिसे ब्रह्मा भी नही जान सके और शिव-सनकादि भी नही पा सके उसे नद यशोदा हर्षित होकर सुलाते हैं[३]। सूर और नरसिंह दोनो ने देव-मुनियो के सुख को सीमित तथा नद-यशोदा के वात्सल्य सुख का असीम वर्णन किया है।

हाथ से पैर को पकड कर पैर का अंगूठा मुख मे लेने का वर्णन भागवतकार ने भी किया है और सूरदास ने भी। किन्तु नरसिंह मेहता ने ऐसा वर्णन बिल्कुल नही किया है। सूरदास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है कि हाथ से पैर को पकड कर पैर के अंगूठे को मुख मे डाल कर पालने मे सोये हुए कृष्ण अकेले ही अपने

---

१ "जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहे नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँक पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावैं।
इहिं अतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ सो नन्द भामिनी पावै।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २७६, पद ६६१।

२ "पलना स्याम झुलावति जननी।
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित मगन होति नद-घरनी।
उमगि-उमगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अकमै भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २७६, पद ६६२।

३ "जाकौ अत न ब्रह्मा जाने, शिव-सनकादि न पावैं।
सो अब देखौ नद जसोदा, हरषि हरषि हलरावैं।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २७६, पद ६६३।

खेल बड़े हर्ष के साथ खेलते रहते हैं[1]। कृष्ण चरण पकड़ कर अँगूठा मुख मे डालते हैं। यशोदा गाती हैं, झुलाती हैं और पालने मे कृष्ण खेल रहे हैं[2]।

सूरदास के ये सभी वर्णन अत्यंत मनोहर हैं और नरसिंह मेहता के वर्णनो से अत्युत्तम हैं इसमे कोई सदेह नही।

बालक कृष्ण को यशोदा के द्वारा भोजन कराने का वर्णन सूर और नरसिंह दोनो ने किया है। सूरदास ने अन्नप्राशन का भी वर्णन किया है, जो नरसिंह मेहता ने नही किया। सूर ने कलेवा और व्यालू भी वर्णन किया है। एक पद मे यशोदा कहती हैं कि 'उठिये श्याम, कलेवा कीजिए। तुम्हारे मनमोहन मुख को देखकर हम जीते हैं। खारिक, द्राक्ष, खोपरा, खीर, केले, आम, गन्ने का रस, सीरा (हलुआ) श्रीफल, चिरौंजी, घेवर, फेनो, खोवा, लड्डू, दही इत्यादि सब चीजे तैयार हैं। अन्त मे खाने के लिए पान भी तैयार हैं[3]।' एक दूसरे पद मे भी यशोदा इन्ही खाद्य पदार्थों का नाम लेकर कहती हैं कि "हे कमल नयन कृष्ण कलेवा कर लो। कलेवे मे मक्खन-रोटी, ताजा जमा हुआ दही तथा भाँति-भाँति का मेवा है[4]।"

इस प्रकार के वर्णनो मे माता का वात्सल्य ही प्रकट किया गया है, जो बालक को खिलाने के लिए कई एक पदार्थों के नाम गिनवा देता है। व्यालू के वर्णन मे भी अनेक पकवानो के नाम मिलते हैं—जैसे लपसी, ताजी जलेबी, घेवर, मालपुआ, मोती लड्डू, दूध, दही-भाटी, औटा हुआ दूध इत्यादि। इन सबके नाम गिनाती हुई माता

---

१ "कर पग गहि अगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालनै अकेले, हरषि हर पे अपनै रग खेलत।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २८२, पद ६८१।

२ "चरन गहे अगुठा मुख मेलन।
नन्द-घरनि गावत, हलरावति, पलना पर हरि खेलन।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २८३, पद ६८२।

३ "उठिये स्याम, कलेऊ कीजै मनमोहन-मुख निरखत जीजै।
खारिक, दाख, खपरा, खीर। केरा, आम, ऊखरस, सीरा।
श्रीफल मधुर, चिरौंजी आनी। सफरी चिउरा, अम्न सुखानी।
घेवर-फेनी और सुहारी। खोवा सहित खाहु बलिहारी।
रचि पिराक लाडू दधि आनौ। तुमको भावत पुरी सधानौ।
तब तमोल रचि तुमहिं खवावौं। सूरदास पनवारी पावौं।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३१२, पद ८२१।

४ "कमल नयन हरि करौ कलेवा।
माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा।"
'सूरसागर', पृष्ठ ३१२, पद ८३०।

यशोदा कृष्ण से कहती हैं कि 'हे कमल नयन, व्यालू करो[1] । एक दूसरे पद में व्यालू करते समय कृष्ण की आँखो का नींद के कारण भारी होने का वर्णन[2] बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक है। शाम का भोजन करते समय बच्चो की आँखें प्रायः भारी हो ही जाती हैं।

यशोदा का कृष्ण को भोजन कराने का वर्णन सूर और नरसिंह ने प्रायः एक-सा किया है। कई खाद्य पदार्थों के नाम दोनो ने गिनाये हैं। नरसिंह के कृष्ण-भोजन सम्बन्धी केवल इने-गिने पद मिलते हैं। एक पद में यशोदा कृष्ण और बलराम से कहती हैं कि तुम दोनो भाई आनदपूर्वक भोजन करो। खीर, शक्कर और घी का अपना प्यारा भोजन करो[3]।

एक दूसरे पद में यशोदा कहती हैं कि "मेरे जीवन, आओ मैं तुम्हे भोजन कराती हूँ। मेरे प्यारे, जलेबी, मेवा इत्यादि धीरे-धीरे खाइये। सीरा (हलुआ), पूरी और लपसी, जिस पर घी की धार हुई है, खाइये। अन्त मे तुम्हे लौंग और सुपारी से युक्त पान का बीड़ा भी दूँगी, प्यारे[4]।" इस प्रकार के तीसरे पद में यशोदा कहती

---

१ 'कमल नैन हरि करौ बियारी।
सुचुई लपसी, 'सुध' जलेबी, सोइ जैंवहु जो लगै पियारी।
घेवर, मालपुवा, मोती लाड़ु, सधर सजूरी सरस सँवारी।
दूध बरा, उत्तम दधि बाटी, मसूरी की रुचि न्यारी।
आछौ दूध औटि धौरी को, लै आई रोहिनी महतारी।
सूरदास बलराम स्याम दोउ जैंवहु जननि जाहु बलिहारी।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३३८, पद ८४५।

२ "आलस सौं कर कौर उठावत, नैननि नींद झमकि रही भारी।"
—'सूरसागर,' पृष्ठ ३३८, पद ८४६।

३ "आनन्दे आरोगो वेउ सुदर भ्राता,
जे जोइए ते आपी मेहलु बोलना एम माता।
खीर खांड माहे घृत भावतु जमो।"
—इ स, देसाई द्वारा सपादित' 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ४६६, पद २७।

४ "जमो तो जमाडु रे, जीवन मारा।
बालाजी मारा, खाजा जलेबी ने मेव,
काई धीरे धीरे लेवा रे, जीवन मारा।
बालाजी मारा, शीरोपुरीने कसार,
काई ऊपर धीनी धार रे जीवन मारा।
. . .
बालाजी मारा पाननो बीडीओ आपु,
माहि लवँग सोपारीनापु रे, जीवन मारा।"
—इ स, देसाई द्वारा सपादित 'नरसिंह मेहतानो काव्य सग्रह,'
पृष्ठ ४६६-४६७ पद २८।

हैं कि "हे जगदाधार, मैं तुम्हे वडे प्यार से भोजन कराती हूँ, भोजन कीजिए[1]।" इस पद मे भी बाद मे अनेक खाद्य पदार्थों के नाम गिना दिये गये हैं।

सूरदास ने इस प्रकार का वर्णन कई एक बडे-बडे पदो मे किया है जिसमें पकवानो के साथ, सब्जियो के तथा मसालो के नाम भी गिनाये गये हैं। नन्द के भवन मे जब कृष्ण भोजन करने बैठते हैं तब यशोदा षटरस भोग उनके लिए ले आती हैं। सोने की थाली मे हाथ धुला कर सत्रह सौ भोजन परोसे जाते हैं[2]। सूरदास को आरोग्य-शास्त्र के इस नियम का अवश्य ही ज्ञान था कि पानी भोजन के मध्य मे पीना चाहिए क्योंकि 'भोजनान्ते विषवारि' माना गया है। वे कहते हैं कि भोजन करते-करते कृष्ण ने ठडा पानी माँगा और भोजन के मध्य मे उसे पी गए।[3] सूर का बाल जीवन सबधी पर्यवेक्षण अद्भुत है। एक पद मे, कृष्ण मुख मे बडा कौर रखने जाते हैं तो उसमे मिर्च आ जाने पर उनका मुँह जलने लगता है और रोते हुए वे बाहर दौडने लगते हैं। तब रोहिणी उन्हें गले लगा कर उनके बदन पर फूंक मारने लगती है और बाद मे मीठा कौर दे कर उनकी जलन को मिटाती है[4] इस प्रकार का पद हमारे सम्मुख स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत कर देता है। यही सूर का काव्य कौशल है जो पाठकों को मुग्ध कर देता है। नरसिंह ने भी एक पद मे हमारे सम्मुख भोजन करते हुए बालकृष्ण का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है। एक पद मे कृष्ण यशोदा की गोद मे बैठकर भोजन करते हैं। जब भोजन करके वे खेलने के लिए भागने लगे तब माता ने प्रेम पूर्वक उन्हे गले लगाया। कृष्ण के हाथ जूठे ही थे इसलिए सब वस्त्रो और आभूषणो को जूठन लग गया तथा शरीर पर भात के दाने

---

१ "जमो जमो रे जुगदाधार, मेमे जमाडु" —इ सु. देसाई द्वारा सपादित 'नरसिंह मेहतानो काव्य सग्रह,' पृठ ४६७, पद—२६।

२ "नन्द-भवन मैं कान्ह अरोगैं। जसुदा ल्यावै षटरस भोगैं।

कनक थार मैं हाथ धुवावै। सत्रह सौ भोजन तह आए।
—'सूरसागर', पृठ ३५४, पद १०१४।

३ "कान्ह मांगि सीतल जल लीयौ। भोजन बीच नीर लै पीयौ।"
'सूरसागर', पृष्ठ ३५५, पद १०१४।

४ "बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरचि दसन टकटौरे।
तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे।
फूकति बदन रोहिनी ठाढी, लिए लगाइ अकोरे।
सूर स्याम कौं मधुर कौर दै कीन्हे तात निहोरे।" —'सूरसागर', पृष्ठ ११७, पद ८४२।

लग गए।[1]

चन्द्र के लिए बालक कृष्ण के रोने मचलने और हठ करने का वर्णन सूरदास और नरसिंह मेहता दोनों ने किया है। भागवतकार ने भी इसका वर्णन किया है। इन दोनों कवियों ने इस प्रसंग के वर्णन में अपनी मौलिक प्रतिभा का तथा बाल-मनोविज्ञान के ज्ञान का सुंदर परिचय दिया है। नरसिंह मेहता ने केवल इने गिने पदों में बालक कृष्ण के चन्द्र प्रस्ताव का वर्णन किया है। सूर ने इसी प्रसंग का अनेक पदों में वर्णित किया है। सूरदास के सम्मुख काव्य सृजन की कोई निश्चित योजना नहीं थी अपितु अपनी कृष्ण-भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए कृष्णलीला गान करते रहना यही उनका उद्देश्य था। इसीलिए सूरदास के पदों में एक ही प्रसंग का वर्णन बार-बार मिलता है और पुनरावृत्ति-सा प्रतीत होता है। नरसिंह मेहता में इस प्रकार की पुनरावृत्ति बहुत कम है।

नरसिंह मेहता बालक कृष्ण के चन्द्र प्रस्ताव-वर्णन के एक पद में इस प्रकार का वर्णन करते हैं —

बालक कृष्ण चन्द्र के लिए हठ करते हैं तब यशोदा समझाती हैं कि यह क्या हठ लगा रखी है तुमने ? आकाश से मैं चन्द्र कैसे ला दूँ ? और कुछ कहो तो मैं ला दूँ, किन्तु यह कैसे प्राप्त हो सकता है ? यह कोई गुड़, कोपरा और लाई थोड़े ही है ? परन्तु कृष्ण हैं कि बस आँसू बहाते चले जाते हैं और चन्द्र को देख कर तड़पते हैं। इधर माता बेचारी परेशान हैं। कृष्ण को पटाते हुए वे कहती हैं कि 'रोते क्यों हो ? रोना बन्द करो और देखो कितने खिलौने हैं तुम्हारे आगे ? चन्द्र अस्त हो गया लेकिन कृष्ण शांत नहीं हुए। अब वे यह हठ करने लगे कि फिर से चन्द्र दिखलाओ और मुझे ला दो। अन्त में यशोदा ने मक्खन दे कर कृष्ण को पटा लिया।[2]

---

१ "जसोदाजी ने खोले बेठा, सुन्दर मजनो नाथ रे,

भोजन करी रमवा सचर्या, जनुनाए भीनी नाथ रे,
आ अण सधला एठा कीधा अगे वलग्यो भात रे।"

—इ. स. देसाइ द्वारा संपादित, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६२, १४।

२ "आवडी राढ विठ्ठला तुजने, गागनथी इंदु कम आपु आणा,
कुवर काइ नव लहे, वात अभिनवी कहें, नोहे कोय टोपरू गोल धाणी आवडी।
आरने आसुदले इंदु देखी चले, टलवले माता ने मान मागे,
रेहे रेहे रेनो, शु रे जोतो घणु, रमवा रमकडा छे बोह आगे। आवडी०।
इंदु थयो अस्तने रदे नहीं राखता, दधाकुल मकट करी आणे आपे,
नरसैयाचो स्वामी माखणे भोलव्यो, मकल वैभव तणो बंध कापे। आवडी०।"

—इ. स. देसाई द्वारा संपादित, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४५८।

इस पद में 'टळवळे' शब्द का प्रयोग करके कवि ने रोते हुए बालक को शान्त रखती हुई परेशान माता का चित्र हमारी आँखों के आगे खडा कर दिया है। 'टळवळे' में तलफन था, 'मैं क्या करूँ कि बच्चा शान्त हो ?' यह परेशानी का भाव सन्निहित है। बालका को खिलौने आदि दे कर उनके हठ को भुलाने का प्रयत्न सभी माताएँ करती हैं और अन्त में याद आने पर उन्हें अपनी सबसे प्रिय वस्तु दे कर मना लेती हैं इस स्वाभाविक सत्य और मनोवैज्ञानिक तथ्य का इस पद म बडे ही हृदय स्पर्शी ढग से चित्रण हुआ है।

एक दूसरे पद मे कृष्ण कहते हैं कि, 'माँ, वह चन्द्र मुझे खेलने के लिए ला दो। उस नचन को ला कर मेरे जेब म रखो। हठ करते हुए वे रोने लगे जिसके कारण उनका मुख लाल हो गया। वे चन्द्र की ओर ही देखने रहे। माता यशोदा कृष्ण के आँसू पोछने लगी कि तुम पागल क्यो होते हो ? चन्द्र तो आकाश मे है। वह मैं कैसे ला दूँ, प्रिय ? अन्त मे एक कटोरे मे पानी भर कर उसम चन्द्र का प्रतिबिम्ब दिखा कर कृष्ण को शान्त किया गया[१]।

परन्तु सूरदास के कृष्ण तो पानी के भीतर के चन्द्र से बिलकुल सतुष्ट नही होते। वे कहते हैं कि 'मैं चन्द्र को लेकर ही रहूँगा। इस पानी के भीतर के चन्द्र को मैं क्या करूँ ? मैं तो उसे पानी के बाहर लेकर रहूँगा। यह तो स्थिर भी नहीं है क्योकि पानी के हवा से हिलने पर यह झलमलाने लगता है। इसे मैं कैसे ले सकता हूँ ? तुम मुझे रोकोगी तब भी अब तो मैं नहीं रुकूँगा। वह आकाश का चन्द्र बिलकुल पास ही तो दीखता है। मैं जा कर अपने हाथ से उसे लाऊँगा। चन्द्र से जलने का मुझे कोई डर नही है। अब मैं तुम्हारी बातो म नहीं आने वाला क्योकि तुम्हारे दिखावे के प्रेम को मैं जान गया हूँ।[२]

बालमनोविज्ञान का यह एक बहुत बडा तथ्य है कि जब बालक समझ जाता

---

१ 'ओ पेलो चान्दलियो, आइ मुने रमवाने आलो,
नचन लावीने माता, मारा गज वामां घलो।
रूवे ने रातरडो थये, चांदा सामुं जूवे,
माता दे जशोदाजी, हरीना आंसुडा लूवे।
लोकना भनरो बालक घेला तूं का थारा।
चादा आकाशे वहालो, ते केम लेवाए।
बाटकामा पाणी घाली, चांदलियो दाख्यो,
नरसैया ना स्वामी शामलीओ, रडतो तव राख्यो—इ द. देसाइ द्वारा सपादित 'नरसिंह महतानो काव्य सग्रह', पृष्ठ ४६२।

२ 'मैया री मैं चन्द लहौंगो।
कहा करौं जलपुट भीतर को, बाहर व्योकि गहौंगो।
यह तो झलमलात झकझोरत, कैसै कै जु लहौंगो।

है कि उसे भुलाया जा रहा है तब वह और भी अधिक हठ करने लगता है। इस पद में हम कृष्ण का ऐसा ही रूप देखते हैं।

सूर की यशोदा बालक कृष्ण को फुसलाने-पटाने की कला में निपुण हैं। वे सोचती हैं कि चन्द्र के लिए हठ करते हुए इस बालक को अब कैसे समझाया जाय ? वे पछताने भी लगती हैं कि 'मेरी ही भूल है जो मैंने इन्हें चन्द्र दिखलाया।' अब वे कहते हैं कि 'इसे मैं खाऊँगा।' वे कृष्ण से कहती है कि 'कही देखी सुनी न हो ऐसी अनहोनी बात भी क्या कभी हो सकती है ? यह तो सभी का खिलौना है और तुम इसी को खाने के लिए कहते हो ? यही मुझे प्रतिदिन साँझ-सवेरे मक्खन देता है। अब तुम्ही बताओ कि बार-बार तुम मक्खन माँगते रहते हो तो इसके न रहने पर मैं कहाँ से ला कर दूँगी ? तुम चन्द्र-खिलौने को देखते रहो और यों हठ मत किया करो।'[१]

इसमे सूर ने नरसिंह के समान केवल मक्खन दे कर कृष्ण को यशोदा से नही मनवाया, अपितु चन्द्र से ही मक्खन मिलता है कह कर उन्हे यशोदा से फुसलाया-पटाया।

एक पद मे सूर ने इस प्रसग का बडा ही मनोरम्य चित्रण किया है। छोटे बालक जब हठ करने लगते है और किसी भी प्रकार मानते नही है तब उन्हे नई दुलहन से ब्याह कराने का प्रलोभन दिया जाता है, यह बात आज भी घर-घर मे, विशेषत. गाँवो मे, देखी जाती है। सूर ने ग्रामो के लोकजीवन का यह बडा ही मनोहर चित्र प्रस्तुत कर दिया है। एक पद मे कृष्ण कहते है कि 'मैं तो चन्द्र खिलौना लूँगा। अब मैं तुम्हारी गोद मे नही आऊँगा, बल्कि धरती पर लोटने लगूँगा। न तो मैं गाय का दूध पीऊँगा और न ही मैं चोटी गुँथवाऊँगा। तुम्हारा बेटा भी अपने को नही कहलवाऊँगा। अब तो मैं नन्द बाबा का पुत्र हो जाऊँगा।' तब माता यशोदा हँसते

वह तो निपट निकट हीं देखत, बरज्यौ हौं न रहौंगो।
तुम्हारो प्रेम प्रगट मैं जान्यौ, बौराएँ न बहौंगो।
[illegible]।'
—सूरसागर', पृष्ठ ३२७, पद ६६४।

"किहि विधि करि कान्हहि समुझैहौं ?
मैं ही भूलि चन्द दिखरायौ, ताहि कहत मैं खैहौं।
अनहोनी कहु भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात।
यह तौ आहि खिलौना सबकौ, खान कहत तिहि यात।
यहै देत लवनी नित मोकौं, छिन छिन साँझ-सबेरे।
बार-बार तुम माखन माँगत, देउ कहा तैं प्यारे ?
देखत रहौ खिलि खिलौना चंदा, आरि न करौ कन्हाइ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३२५-३२६, पद ८०७।

हुए समझाती हैं कि 'देखो बलदेव से न कहना । जरा पास आओ और मेरी बात सुनो । हम तुम्हें नई दुलहन दिलायेंगे ।' तब कृष्ण चन्द्र का हठ भूल कर कहने लगे—'तब तो माँ तुम्हारी सौगन्ध से कहता हूँ, चलो अभी व्याहने चलें ।' सूरदास कहते हैं कि वे भी बराती बन कर मंगल गान गाएँगे ।[1]

'अब मैं नन्द बाबा का पुत्र हो जाऊँगा । अपने को तुम्हारा पुत्र नही कहलाऊँगा ।' सूर के बालक कृष्ण के इस कथन मे भी बालमनोविज्ञान की झलक देखने को मिलती है ।

माखनचोरी के प्रसग का वर्णन तथा गोपियो के यशोदा के घर जा कर उलाहना देने का वर्णन सूरदास और नरसिंह मेहता दोनो ने किया है । सूरदास ने यह वर्णन बीसो पदो में किया है । नरसिंह मेहता ने कुछ ही पदो मे यह वर्णन किया है । नरसिंह के एक पद मे गोपियाँ यशोदा के घर कृष्ण की माखन चोरी के लिए उलाहना देने जाती हैं । वहाँ जाने पर वे माता यशोदा से कुछ कहती ही हैं कि कृष्ण के नेत्रो से इनके नेत्र मिलते हैं । तब उनका अग आनद से पुलकित हो जाता है । करोडो कामदेव के समान सुन्दर कृष्ण इशारा करते हैं कि कुछ मत कहना । माता यशोदा यही समझ रही है कि मेरा मोहन मेरे पास खेल रहा है । सब गोपियाँ कृष्ण के उस समय के सुन्दर मुख को देखती ही रह जाती हैं और उलाहना देने के बजाय गोविंद के गुण गान लगती हैं ।[2]

---

१ "मैया मैं तो चन्द्र खिलौना लैहौं ।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं ।
सुरभी कौ पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं ।
ह्वैहौं पूत नद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं ।
आगै आउ, बात सुनि मेरी, बलदेव हि न जनैहौं ।
हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नइ दुलहिया दैहौं ।
तेरी सौ, मेरी सुनि मैया, अबहि बियाहन जैहौं ।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमगल गैहौं ।"

—'सूरसागर,' पृष्ठ ३२७, पद ८११ ।

२ "माने मानुनी राव करवा, नयने नयना मेलावी रे,
अगो अगे आनदे आव्यो, आंखिनी आगे आवी रे । माने०
कदर्प कोटि सरीखो सुदर, मनमुख सान करतो रे,
माता जाणे मारी आगल, मारो मोहन रमतो रे । माने०
शामा रूपनी शामनीमानु, वदन नीहाली रहेती रे,
भण नरसैयो हरखित गोपी, गोविंदना गुण गाती रे ।" माने०

—के म. देसाई द्वारा संपादित, 'नरसिंह मेहता-कृत काव्य सग्रह,' पृष्ठ ४४१ ।

उलाहना देने गई हुई गोपियाँ कृष्ण के 'मत कहना'—इस प्रकार के इशारे से शिकायत करने के बजाय गुण गाने लग जायँ यह वर्णन बड़ा ही सुन्दर और अद्भुत है। नरसिंह ने तो केवल 'सान'—इशारा शब्द प्रयुक्त किया है। कृष्ण ने इशारे से यह भी समझाया हो कि 'तुम सब कहोगी तो मुझे मार पड़ेगी।' उलाहना देने के बहाने कृष्ण को देखने गई हुई गोपियाँ अपने प्रिय के अहित की संभावना देखने लगीं तो एकदम कृष्ण के गुण ही गाने लग गईं। नरसिंह का यह वर्णन बड़ा ही मनोवैज्ञानिक और मनोहर है।

गोपियाँ उलाहना देने के बहाने कृष्ण को देखने जाती हैं यह बात एक दूसरे पद मे वे स्पष्ट रूप से कह देते हैं। गोपियाँ दूध-दही और माखन-मिश्री छिपा कर या ऊँची जगह पर नहीं रखती हैं—सामने ही दृष्टि पड़े वैसे रखती हैं। घर के द्वार भी वे खुले ही छोड़ जाती हैं ताकि कृष्ण आवें तो माखन इत्यादि अवश्य खा लें। ऐसा होने पर उलाहना देने के बहाने वे कृष्ण का मुख देखने जा सकती हैं।[१]

नरसिंह के एक और प्रसिद्ध एव लोकप्रिय पद मे गोपियाँ उलाहना दे ही देती हैं। वे कहती हैं—'यशोदा तुम अपने कान्ह को ऐसा करने से वर्जित करो। उसने व्रज मे इतनी धाँधली मचा रखी है और कोई उसे पूछने वाला नहीं! बन्द द्वार खोल कर उसने छीका तोड़ा, गोरस ढुला दिया और मक्खन खा लिया।' गोपियाँ और भी कुछ कहती रहती हैं। तब अन्त मे यशोदा कहती हैं—'मेरा कृष्ण तो घर मे था। तुमने उसे बाहर कब और कैसे देखा? मेरे घर मे दूध-दही के पात्र भरे हुए हैं। और किसी के यहाँ तो वह चखता भी नहीं। तुम सब दस बारह मिल कर, टोली बना कर क्यों आई हो?'[२]

---

१ "राव मरो ते शमली आनु, मुखडु जोवा जाए रे।
दूध-दही आगल करी राखे, माखण साकर माहे रे।
घरना दवार उघाडां मूके, जो आवे तो खाए रे।"
—इ. द. देसाई द्वारा सपादित 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६६।

२ "जशोदा तारा कानुडाने साद करीने वार रे,
अवठी धूम मचावी व्रजमा, नहीं कोई पूछणहार रे। जशोदा०
शीकु तोड्यु, गोरस ढोल्यु, उघाडीने बार रे,
मांखण खाधु, ढोली नाख्यु, जान कीधु आ वार रे। जशोदा०
... .
मारो कानजी घरमा हुतो, क्यारे दीठो बहार रे,
दही-दूधना माट भर्या छे, बीजे चाखे न लगार रे। जशोदा०
शाने काजे मलीने आवी, टोली वली दशबार रे,
नरसैयानो स्वामी साचो, जूठी व्रजनी नार रे। जशोदा०
—इ. द. देसाई द्वारा सपादित 'नरसिंह मेहतानो काव्य संग्रह'
पृष्ठ ४६०, ४६१।

इस पद मे मातृ हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्रण पाया जाता है। अपने बच्चे कितने ही शरारती क्यों न हो, माताएँ निश्चित ही उनका बचाव करेंगी। यशोदा भी सच्चे झूठे तर्क देकर कृष्ण का बचाव करती हैं।

सूर की यशोदा भी कृष्ण का इसी प्रकार बचाव करती है और कहती हैं कि 'पांच वर्ष और कुछ दिनो का यह बालक चोरी करने योग्य कैसे माना जाय? इस बहाने तुम देखने आती हो और तुम सब की ग्वालिनें मुँह फटी और गँवार हो। कैसे इतन से बालक की बाँहे छीके तक पहुँची और इतनी देर मे यह यहाँ कैसे आ गया[१]' मेरा जरा सा गोपाल चोरी करना कैसे जाने? जो कृष्ण अँगुली भर भी घर मे चलता नही है उसने कब तुम्हारे घर के छीके तक चढ कर मक्खन खाया और दही की मटकी फोडी[२]? अभी तो वह तुतली भाषा ही बोलता है और उसे ठीक से चलना भी नही आता। वह कैसे तुम्हारे घर जाकर चोरी करेगा और चुरा कर दही खाएगा[३]?

माता यशोदा अपने पुत्र के नटखटीपन को जानते हुए भी उसका सब प्रकार से बचाव करती हैं। वात्सल्य का यह स्वरूप विचित्र होते हुए भी मनोवैज्ञानिक एव मनोमुग्धकारी है। वे बाद म, सबके चले जाने पर कृष्ण स भी कहती हैं कि 'तुम पराये घर का दही मक्खन चरा चुरा कर क्यो खाते हो[४] तुम मुझसे डरते नही हो। घर का षट्रस भोजन छोड कर क्यो पराये घर जा जा कर चोरी करके खाते हो। कह-कह कर मैं थक गई लेकिन तुम्हे लाज नही आई। व्रज के राजा के समान तुम्हारे जो पिता है तुम उनकी भी नन्हाई (निंदा) कराते हो। अब मैंन जाना कि मेरे घर

---

१ "पांच बरस अरु कछुक दिननि कौ कब भयौ चोरी जाग।
इहि मिस देखन आवति ग्वालिनि, मुह फाट जु गवारि।

कैसैं करि याकौ भुज पहुची, कौन बेग ह्या आयौ॥
—'सूरसागर', पृष्ठ ३५९, पद ६१०।

२ "मेरो गोपाल तनक सौ, कहा करि जानै दधि की चोरी।

कब सीकैं चढ़ि माखन खायौ, कब दधि मटुकी फोरी!
अजुरा करि कबहु नहिं चाखत ''
—'सूरसागर', पृष्ठ ३५९, पद ६११।

३ "बोलन है बतिया तुतरौहीं, चलि चरननि न सकान।
कैसैं करै माखन की चोरी कत चोरी दधि खान।"
—'सूरसागर, पृष्ठ ३५९, पद ६१२।

४ "काहे कौं लाल पराये घर कौं, चोरि चोरि दधि माखन खात!"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३७१, पद ६५०।

मे सपूत पुत्र ने जन्म लिया है[1]। तुम मेरे लाडले हो, कही भी मत जाना। मैंने तेरे ही लिए तो लाडिले लाल, गोपाल, पात्र भर-भर कर दही-मक्खन रखा है। दूध-दही-घी-मक्खन यह सब तुम्हे घर पर ही मिलता है। तुम्हे पराये के घर क्यों जाना चाहिए[2]।' यह सारा वर्णन अत्यत स्वाभाविक है। माता अपने शरारती बालक को इसी प्रकार समझाएगी कि तुम डरते नही हो, तुम्हे लाज नही आती, तुम अपने पिता की नन्हाई (निंदा) करते हो तथा कुल को कलकित करते हो इत्यादि।

नरसिंह मेहता की गोपियो से सूर की गोपियो का उलाहना भी बडा मार्मिक है। नरसिंह मेहता की गोपियो का उलाहना हम देख चुके। अब सक्षेप मे सूर की गोपियो का उलाहना देखें। वे यशोदा से प्रतिदिन कहती हैं कि 'तुम अपने कृष्ण को रोको। वे घर-घर जा कर दही-मक्खन की चोरियाँ करते हैं।' किन्तु यशोदा जब यह मानने को ही तैयार नही तब एक गोपी कृष्ण को चोरी करते हुए पकड़ कर यशोदा के पास ले आती है। उलाहना देते हुए वह कहती है कि 'तुम्हारे कृष्ण ने मेरे घर का ऐसा हाल किया कि दही-मक्खन की मटकियाँ फोड कर बहुत कुछ तो खा गए और बचा हुआ फेंक दिया। मैं इन्हे पकड कर तुम्हारे पास लाई हूँ। तुम इन्हें वैसे ही नियत्रण मे रखो जैसे मस्त हाथी को जकड कर रखा जाता है[3]। कभी गोपियाँ यशोदा को ही भला बुरा कहने लगती हैं कि बडे बाप की बेटी होकर तुम पुत्र को बडी अच्छी शिक्षा दे रही हो,[4] तो कभी कहती है कि कृष्ण दही-मक्खन खाने के लिए घर-घर भटकते है इसका कारण यह है कि तुम बडी कृपण हो। कृष्ण

---

१ "कन्हैया तू नहि डरात।
पटरस धरे छाँडि कत पर घर, चोरी करि-करि खात।
बकत-बकत तो सौं पचिहारी, नैकहु लाज न आई।
ब्रज-परगन-महाराज महर, तू, ताकी करत नन्हाई।
पूत सपूत भयो कुल मेरे, अब मैं जानी बात।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३७०, पद ९४७।

२ "मेरे लाडिले हो तुम जाउ न कहूँ।
तेरे ही काजैं गोपाल, सुनहु लाडिले, लाल, राखे है भाजन भरि सुरस छहूँ।
काहे कौं पराए जाइ, करत इते उपाइ, दुध-दही घृत अरु माखन तहूँ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३५९, पद ९१३।

३ "ऐसो हाल मेरै घर कीन्हौ ल्याइ तुम पास पकरिकै।
फोरि भाड दधि माखन खायौ, उबर्यो सो डार्यो रिस करिकै।
....
सूरदास प्रभु को यौ राखो, ज्यों राखिये गज मत्त जकरि कै।"
—सूरसागर', पृष्ठ ३६६, पद ९३६।

४ "बड़े बापकी बेटी, पूतहि भली पढ़ावति बानी।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३६७ पद ९३९।

को जब जो चाहिए वह तुम देती क्यों नहीं[१] ।

गोपियाँ यशोदा से यहाँ तक कहती हैं कि तुम बड़ी कृपण हो क्योंकि भाग्य का दिया हुआ-दही इत्यादि इतना अधिक होते हुए भी पुत्र से छिपा कर रखती हो। तेरे अधिक बालक भी नहीं है, केवल ये ही एक कुँवर-कन्हाई है। और ये तो बेचारे घर-घर भटक कर चोरी करके माखन खाते हैं। बड़ी आयु में, पूर्वजन्म के पूरे पुण्यों के कारण तुमने यह पुत्र पाया है और इसी के खाने-पीने में इतनी चतुराई और कृपणता दिखाती हो[२] ।

इस प्रकार के उलाहने में उलाहने के अतिरिक्त एक ध्यान देने योग्य बात है। 'माखन-चोरी' के प्रसंग का वर्णन प्रारंभ करते समय एक पद में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जब गोपियाँ 'मुझे मक्खन बहुत भाता है' ऐसा कृष्ण-कथन यशोदा के घर में सुन लेती हैं तब वे सब अभिलाषा करने लगती हैं कि 'कब हम कृष्ण को मक्खन खाते हुए अपने घर में देखेंगी[३] ? कृष्ण को अपनी प्रिय वस्तु घर में भी जितनी वे चाहें उतनी मिलती रहे यही इस उलाहने का प्रच्छन्न उद्देश्य है। अपने घरों में कृष्ण के द्वारा होने वाली मक्खन चोरी से तो वास्तव में प्रसन्न हैं और उलाहना देने भी जाती हैं तो वह कृष्ण को देखने के लिए जाने का एक बहाना मात्र है।

नरसिंह मेहता ने कृष्ण की माखन चोरी का उल्लेख मात्र कर दिया है, किन्तु कृष्ण को मक्खन चुराते हुए वर्णित नहीं किया है। सूरदास ने इस प्रसंग का वर्णन किया है और बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। एक पद में वे कहते हैं कि कृष्ण एक ग्वालिनी के घर गए और वहाँ द्वार के पास किसी को न देख कर, इधर-उधर देख धीरे से भीतर घुस गए। मक्खन से भरी मटकी देख कर उसमें से ले लेकर खाने

---

१ "घर-घर कान्ह खान कौं डोलत, बड़ी कृपन तू है री।
सूर स्याम कौं जब जोइ भावै, सोइ तबहिं तू दैरी।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३६८, पद ६४२।

२ "महरि तैं बड़ी कृपन है माइ।
दूध-दही बहु बिधि कौ दीनौ, सुत सौं धरनि छपाइ।
बालक बहुत नहीं री तेरैं, एकै कुँवर कन्हाई।
सोऊ तो घर ही घर डोलतु, माखन खात चुराई।
वृद्ध बयस, पूरे पुन्यनि तैं बहुतै निधि पाई।
ताहू के खैबे-प्यैबे कौं, कहा करति चतुराई।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३६६, पद ८४१।

३ 'मैया री, मोहि माखन भावै।
. ...
मन-मन कहति कबहुँ अपनैं घर, देखौं माखन खात।"
—'सूरसागर,' पृष्ठ ३४१, पद ८८२।

लगे। मणियो से जटित स्तभ मे अपना प्रतिबिंब देख कर उससे इशारे करने लगे और कहने लगे कि वाह, आज प्रथम बार मैं मक्खन की चोरी करने आया हूँ तो यह अच्छा सग बना। वे स्वय खाने लगे और प्रतिबिंब को भी खिलाने लगे, जो गिरने लगा। इस दृश्य की रगत ही निराली थी[1]। प्रथम बार की माखन चोरी के पश्चात् तो सखाओ के साथ माखनचोरी के लिए जाने लगे। एक पद मे वे गवाक्ष से देखते हैं कि एक भाली गोपिका दही मथ रही है और मथानी मटकी मे से निकाल कर मक्खन निकाल रही है। इसके पश्चात् जब वह गोपी भीतर कमोरी माँगने गई तब कृष्ण ने अवसर पाया। वे सखाओ के साथ सूने घर म घुसे और सब दही तथा मक्खन खा गए[2]।

कृष्ण की प्रथम बार की माखनचोरी का वर्णन अद्भुत है। बाल-मनोविज्ञान का इनका ज्ञान इस मे स्पष्ट दिखलाई देता है। गोपी के घर म घुसने से पूर्व कृष्ण का 'द्वार पर कोई है तो नही ?' इस का निश्चय करना, इधर-उधर देखना कि 'कोई देखता तो नही है ?' और तत्पश्चात् भीतर घुमना—यह वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एव मनोवैज्ञानिक है। बालक इस प्रकार का कार्य करते समय इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं। ऐसे कार्य मे अकेलापन थोडा अखरता है इसलिए प्रतिबिम्ब को देखकर भी इन्हे प्रसन्नता होती है कि 'प्रथम बार की चोरी मे तुम्हारा सग अच्छा बना।' अन्त मे भोलेपन के कारण उस प्रतिबिम्ब को खिलाने भी लगते हैं। इस का एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी है कि ऐसे प्रयास से मिली हुई वस्तु के भोग का आनन्द सहयोगियो के साथ अधिक अनुभव होता है। और इसीलिए बाद मे तो सखाओ के साथ ही माखन चोरी होती रहती है। इनका एक एक वर्णन हमारे सम्मुख स्वाभाविक

---

१ "गए स्याम तिहि ग्वालिनि कैं घर।
देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत-उत चितै, चले तब भीतर।
....
माखनभरी कमोरी देखत लै लै लागे खान।
चितै रहे मनि-खभ छाह तन, ता सौं करत सयान।
प्रथम आजु मैं चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है सग।
आपु खात प्रतिबिंब खवावत, गिरत, कहत का ढग ?"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३५०, पद ८८३।

२ "सखा सहित गए माखन चोरी।
देख्यौ स्याम गवाच्छ-पथ है, मथति एक दधि भोरी।
हेरि मथानी धरी माट तैं, माखन हो उतरात।
आपुन गई कमोरी मागन, हरि पाई ह्याँ घात।
पैठे सखनि सहित घर सूनैं, दधि माखन सब खाए।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३५१, पद ८८८।

चित्र प्रस्तुत कर देता है। गवाक्ष से गोपी को मक्खन बिलोते देखना और उसके भीतर जाते ही अवसर पा कर कृष्ण का साथियों के साथ भीतर घुस कर दही-मक्खन खा जाना भी कृष्ण की चतुराई दिखलाता है। जवाब देने और बहाने बनाने में भी सूर के कृष्ण बड़े चतुर हैं। सभी बालक इसी प्रकार की चतुराई ऐसे अवसरों पर अल्पाधिक मात्रा में दिखलाते ही हैं। पकड़े जाने पर उनका गोपी से कहना कि 'गोरस में चींटी देख कर उसे निकालने के लिए मैंने दही के पात्र में हाथ डाला'—उनकी बाल-चतुराई श्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है[1]। किसी गोपी के द्वारा शिकायत हो जाने पर वे माता यशोदा से भी यही कहते हैं कि 'इसने मुझे बुला कर दही में पड़ी हुई चींटियाँ सेत में निकलवाईं'[2]। घर में भी एक बार पकड़े जाने पर ये माता से अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिये बहाने बताते हुए तथा तर्क देते हुए कहते हैं कि 'माँ, मैंने मक्खन नहीं खाया। मेरे मित्रों ने मेरे मुख पर लपेट दिया है। तुम्हीं देखो, मक्खन का पात्र तो सींके पर ऊँची जगह पर लटका हुआ है। मैं अपने छोटे हाथों से उसे कैसे प्राप्त किया होगा? तुम्हीं सोचो। मुख पर के दही पोछ कर इन्होंने एक युक्ति की। हाथ में रखे हुए मक्खन के दोने को पीठ के पीछे छिपा लिया[3]।

इस वर्णन में भी बाल स्वभाव की मनोवैज्ञानिकता देखने को मिलती है। पहले बालक कृष्ण कह देते हैं कि मैंने मक्खन नहीं खाया। इस बात का ख्याल आते ही कि मुख पर तो लपटा हुआ है, वे तुरन्त कह देते हैं कि यह तो मेरे मित्रों ने बरबस मुख पर लपेट दिया है। अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए और कुछ तर्क देने चाहिए ऐसा लगने पर वे कहने लगते हैं कि मक्खन का पात्र तो ऊँची जगह पर सींके में है जिसे मैं छोटे-छोटे हाथों वाला पा ही कैसे सकता हूँ? अब तक भोले कृष्ण का ध्यान हाथ में रखे हुए दोने की ओर नहीं गया था। एकाएक उसका ध्यान आते ही उसे पीठ के पीछे छिपा लिया। यह सब बाल-स्वभाव का स्वाभाविक

---

१ "देखत हौं गोरसमैं चींटी काढ़न कौं कर नायौ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३५४, पद ८९७।

२ "सुनु मैया, याके गुन मोसौं इन मोहि लयौ बुलाई।
दधि मैं परी सेंत की मोपै चींटी सबै कढ़ाई।"
— सूरसागर', पृष्ठ ३६८, पद ९४०।

३ "मैया मैं नहीं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊँचे धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसैं करि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठ दुरायौ।"
—'सूरसागर' पृष्ठ ३७२, पद ९५२।

चित्रण है। छोटे बच्चे हाथ में रखी हुई चीज पीठ के पीछे छुपा कर के प्राय ऐसा कहते हैं कि 'कहाँ है ? खो गई।' कृष्ण भी इसी भोलेपन के साथ दोना छुपा कर कहते हैं कि मैंने नहीं खाया। सूर का यह पद उनके सुप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय पदों में से एक है। ख्यातनामा गायकों ने इसे चाव के साथ गाया है और संगीतबद्ध किया हैं। नरसिंह मेहता कृष्ण की बाल चतुराई का वर्णन ही नहीं करते हैं क्योंकि उनका बाललीला वर्णन ही अत्यन्त सक्षिप्त है।

सूर ने वात्सल्य वर्णन में अपनी अद्वितीयता सिद्ध करके दिखाई है, यह एक निर्विवाद तथ्य है। सूर मातृहृदय के सच्चे और सूक्ष्म पारखी थे। कृष्ण की बाल-छवि का इनका वर्णन कितना मनोरम्य है। जब हाथमें मक्खन लिए हुए बालक कृष्ण घुटनों के बल चलते हैं, उनकी देह धूल धूसरित रहती है तथा मुख पर दही का लेप रहता है तब वे अत्यन्त शोभित होते हैं। उनके गाल सुन्दर हैं, नत्र चचल और ललाट पर किया हुआ गोरोचन का तिलक भी सुन्दर है। उनके श्यामसुन्दर मुख के चारो तरफ बिखरी हुई अलकलटें ऐसी लगती हैं जैसे मानो नीलोत्पल के मधु का पान करने के लिए मत्त मधुपगण मडरा रहे हों[1]। यह वर्णन भावुक पाठक के सम्मुख बिखरी हुई केशलटो वाले, धूल मे भरे हुए, मुंह पर दही लपेटे हुए तथा मक्खन हाथ मे लिए हुए घुटनों के बल चलने वाले बालक कृष्ण का चित्र नत्रों के समुख उपस्थित हो जाता हैं। सूरदास के प्रत्येक पद में एक सफल कवि की लेखिनी की शक्ति के साथ-साथ सफल चित्रकार की तूलिका की शक्ति भी देखने को मिलती है। नरसिंह में यह सामर्थ्य हम अत्यत सीमित मात्रा मे ही और अपेक्षाकृत अत्यन्त अल्प परिमाण मे ही पाते हैं।

कृष्ण के पैरों चलने का वर्णन, उस समय के नन्द और यशोदा के आनन्द का वर्णन, यशोदा की, स्तनपान करात समय की उमग का वर्णन उनका सदैव यह अभिलाषा करते रहने का वर्णन कि 'यह कब बडा होगा, जल्दी क्यो नही बडा होता, कब घुटनो चलने लगेगा, कब दूध के दाँत निकलेंगे, कब तुतली वाणी बोलने लगेगा और मुझे माँ तथा नन्द को बाबा कहकर पुकारेगा,' वर्ष-गाँठ के अवसर पर के उनके आनंदोल्लास का वर्णन, कृष्ण के अपने ही प्रतिबिंब को मक्खन खिलाने का वर्णन, कृष्ण को आँगन में खेलते देख कर होने वाली उनकी प्रसन्नता का वर्णन, कृष्ण के कर्ण छेदन के समय यशोदा के नेत्र गीले होने के वर्णन, दूध पिलाते समय 'इससे

---

१ "सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मडित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २६५, पद ७१७।

तुम्हारी वेनी बढ़ेगी' ऐसा उनके प्रलोभन देने का वर्णन, स्पर्धा के भाव से प्रेरित हो कर कृष्ण के 'दूध पीने से यह कहाँ बढ रही है—बलराम की चोटी की तरह ? तुम मुझे कच्चा दूध देती हो, मक्खन-रोटी नही देती' ऐसा कहने का वर्णन, कृष्ण का 'मुझे बलराम खिझाते हैं कि तुम नन्द-यशोदा के पुत्र नही हो, पराये के खरीद हुए पुत्र हो इसीलिए गोरे नन्द-यशोदा के पुत्र होते हुए भी काले हो'—ऐसा खीझने का वर्णन, माता यशोदा के 'बलराम तो ऐसा ही है तुम तो, मैं गोधन की सौगन्ध के साथ कहती हूँ मेरे ही पुत्र हो' ऐसा उत्तर देने का वर्णन—ये और ऐसे सैंकडो, बल्कि सहस्रो वात्सल्य रस के सयोगपक्ष के चित्रात्मक वर्णन ऐसे सुन्दर, मार्मिक और अनोखे है कि सूर को वात्सल्यरस के श्रेष्ठ कवि माने बिना नही रहा जाता। सगा पुत्र न होने पर भी गाय जैसे पवित्र पशु की, जिसे धन माना जाता था, सौगन्ध के साथ यशोदा का यह कहना कि 'मोह गोधन की सौं हौं माता तू पूत'—उनके मातृहृदय की ममता का, उनके भीतर कृष्ण के लिए उमडते रहते वात्सल्य का अत्यन्त मर्म-स्पर्शी चित्रण है। सूर का ऐसा अद्भुत चित्रण और अनोखा वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य मे अमर रहेगा।

सूरदास का, वात्सल्य रस के सयोग-पक्ष का चित्रण जितना सुन्दर है, उतना ही उसके वियोग पक्ष का वर्णन भी मार्मिक है। नरसिंह मेहता न तो अपनी 'गोविन्द गमन' नामक रचना म गोपियो के विरहदुःख का विस्तृत वर्णन करके नन्द-यशोदा और रोहिणी के सम्बन्ध मे केवल सक्षिप्त निर्देश मात्र कर दिया है। नन्द ने कहा, 'जल्दी आना[१]।' यशोदा ने कहा—'मेरे लाडले, जल्दी लौट आना। वहाँ उच्छृङ्खल मत होना। वहाँ हमारा राज्य नहीं है अतएव किसी को भला-बुरा मत कहना। तुम्हारे मुख-चन्द्र को देखे बिना मैं तो पागल हो जाऊँगी। मेरे प्राणों के आधार, मेरे प्राण-जीवन शीघ्र ही लौट आना। मेरे श्याम, तुम स्वमुख से कहो कि कब लौट आओगे। अवधि समाप्त हो जाने पर मैं तुम्हे पुकार-पुकार कर निश्चित ही मर जाऊँगी[२]। रोहिणी ने बलराम से कहा कि 'वसुदेव से कहना, मेरी माता वहाँ सुख से—आराम से

---

१ 'नरसइं ना स्वामी ने नन्दजी कहे वेहेला आवो।' —इ. सु. देसाई द्वारा सपादित 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह,' पृष्ठ ६६।

२ 'लाडकडा वेहेला पधारजो रे, उच्छृङ्खल मत थाशो रे दयाल,
नहि राज तहीं आपणु रे, वहाला मत भणिजे को' ने गाल।
मुख-मयक निरख्या विना रे, हु तो थाशी घेला मोरारे,
हरि वहेला आवजो रे, मारा प्राणजीवन आधार।
श्यामला तु मुखे कहे रे, क्यारे आवोश मारा प्राण,
समय गये निश्चे मरु रे, तुजने करकी-करकी जाण।'' —इ. सु. देसाई द्वारा सपादित, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ६६-६७।

है। तुम हाँ रहो तो मैं भी यहीं रहूँ[1]।

मथुरा में कृष्ण का ध्यान रखने के लिए अपने पुत्र बलराम से भी यहीं रहने के लिए रोहिणी का कहना, रोहिणी के कृष्ण-प्रेम तथा पारिवारिक मर्यादा का परिचायक है। कृष्ण की रक्षा के लिए उसे बलराम का वियोग सह्य है। वैसे भी अपने-पराये का उसमें भेद नहीं है। नटखटी कृष्ण के नई जगह पर जाने पर माता यशोदा का चिंतित होना और उसे उपदेश देना कि 'वहाँ उच्छृंखल मत होना' स्वाभाविक है। 'अवधि बीत जाने पर मैं तुम्हे पुकार-पुकार कर मर जाऊँगी'—यशोदा के इस कथन में, वात्सल्य के वियोगपक्ष की, मातृ हृदय की मार्मिक मनोव्यथा का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है।

वात्सल्य-रस के वियोग-पक्ष का नरसिंह का वर्णन इसके साथ समाप्त हो जाता है। शृंगाररस के वियोगपक्ष का वर्णन भी उनके संयोगपक्ष के वर्णन की तुलना में संक्षिप्त ही है। नरसिंह का गोपी-हृदय कृष्ण के संयोग की ही अधिक कामना करता है। वात्सल्य वर्णन में भी इन्होंने विशेष उत्साह प्रदर्शित नहीं किया है इसका एक कारण यही है कि उन्हें विश्वास हो गया था कि दिव्य द्वारिका में उन्होंने यौवन के एक दिव्य मधुर भाव से आप्लावित करने वाले रास में निमग्न देखा था। यह दिव्य मधुर भाव वासना की सीमा में सीमित नहीं था अपितु पूरे विश्व की रक्षा करने वाला अमृत मधुर तत्त्व राधा-कृष्ण के उन आवेगों में निहित था। अतएव उनके उसी रूप का वर्णन करने में उन्होंने विशेष रुचि दिखलाई। एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी हो सकता है कि बचपन में इन्हें वात्सल्य अधिक प्राप्त नहीं हुआ। सूरदास वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित बालकृष्ण-महिमा से प्रभावित रहे तथा श्रीमद्भागवत की योजना के अनुसार पद करते रहे इसलिए वात्सल्य वर्णन में अनोखा उत्साह दिखला सके। कृष्ण का बाल रूप इन्हें प्रिय भी बहुत था अतएव वात्सल्य वर्णन में इनका मन अधिक रमा।

सूर का वात्सल्य-रस के वियोगपक्ष का वर्णन अत्यंत मर्माहित कर देने वाला है। कृष्ण को अक्रूर के साथ जाते देख कर यशोदा विक्षिप्त-सी हो कर बार-बार कहने लगती है (एक किंवदन्ती में, रहीम ने जो काव्यपूर्ण अर्थ लगाया है उसके

---

१ " रोहिनी बोल्या राम शु हरखी रे,
वसुदेवने मलनो वीरा रे, धीरा रहो आम के जो हीरा रे।
मारी माता छे त्या सुखी रे, अहीं रहु होय तमारी रुचि रे।"
—ह सु देसाई द्वारा संपादित, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह'
पृष्ठ ६७

अनुसार तो यशोदा का 'रोम-रोम यह कहने लगा'[1]) कि इस ब्रज में हमारा कोई हितैषी है, जो अक्रूर के साथ चले जाते हुए कृष्ण को रोक ले ? मेरे छगन-मगन को —लाडले को राजा ने किस लिए मथुरा बुलाया है ? सुफलक-सुत अक्रूर मेरे प्राण हरने के लिए काल रूप होकर आए हैं। हे कंस, चाहो तो मुझे बन्दिनी बनाकर रखो और चाहो तो मेरे सारे गोधन को हर लो। किन्तु मेरे कमल नयन कृष्ण को मेरी आँखों के सामने खेलते देखने का सुख बना रहने दो[2]।

अपने बालक के अहित की आशंका से व्याकुल और व्यथित होने वाली माता के हृदय को सूरदास ने खोल कर रख दिया। वे स्वयं बन्दिनी बनने को तैयार है, गोधन दे देने को तैयार है, किन्तु कृष्ण को मथुरा जाते देख कर तो उनका हृदय फट जाता है। अक्रूर को वे अपना काल ही अनुभव करती हैं। रोती बिलखती हुई माता का मर्माहत कर देने वाला चित्र ही नेत्रों के सम्मुख तादरूय हो जाता है।

यशोदा यहाँ तक कह देती हैं कि मुझ निर्धन का धन कृष्ण है जिन्हें मैं पल भर के लिए भी दूर नहीं करती और जिन्हें मैं बार-बार देख कर सुख अनुभव करती रहती हूँ। ऐसे कृष्ण को मैं मथुरा नहीं भेजती। चाहे ऐसा करने पर तो कंस हमें बन्दिनी ही क्यों न बना ले, हमें इसकी परवाह नहीं[3]। यशोदा का वात्सल्य ही उस

---

१ किंवदन्ती यह है कि अकबर के कहने पर जब तानसेन ने 'बार बार यों भाषै' वाले पद की इस प्रथम पंक्ति का अर्थ 'बारबार' लगाया बीरबल ने 'द्वार-द्वार पर जा कर' यह अर्थ लगाया, किसी ज्योतिषी ने 'प्रत्येक वार पर अर्थात् प्रतिदिन' यह अर्थ लगाया तब कवि रहीम ने इन सबका अपनी प्रकृति एवं व्यवसाय के अनुसार ऐसा अर्थ लगाना स्वाभाविक दिखा कर अन्त में यह काव्यपूर्ण अर्थ लगाया कि 'यशोदा का रोम-रोम यों कहने लगा।' अकबर इससे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

२ "जसोदा बार-बार यों भाषै।

है कोउ ब्रज में हितू हमारा चलत गुपाल हि राखै।
कहा काज मेरे छगन मगन कौं नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक-सुत मेरे प्रान हरन कौं काल रूप ह्वै आयौ।
बरु यह गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदि लै मेलौ।
इतनोई सुख कमल-नयन मेरी अंखियनि आगैं खेलौ।"

—'सूरसागर' पृष्ठ १२७३ पद ३५९१।

३ "मेरौ माई निधनी कौ धन माधौ।
बारंबार निरखि सुख मानति, तजति नहिं पल आधौ।

....

सूर स्यामधन हौं नहीं पठवौं भावहि कंस बिन बाधौ।"

—'सूरसागर', पृष्ठ १२७४ पद ३५९६।

से यह कहलवा देता है कि हमें राजा के दंड की परवाह नहीं है। ऐसी परिस्थिति में माँ की ममता इसी प्रकार मुखरित होती है। मातृहृदय के सूक्ष्म पारखी सूरदास ने यशोदा की व्यथा का स्वाभाविक चित्रण करके उसमें मार्मिकता भर दी है।

यशोदा विक्षिप्त सी हो कर कहने लगती है कि क्या हमारे कृष्ण को जाते हुए कोई नहीं रोकेगा ? मदन गोपाल के बिना घर-आँगन-अरे, सारा गोकुल ही कैसे अच्छा लगेगा[1] ? मातृप्रेम में यही होता है कि संतान के दूर चले जाने पर कुछ भी अच्छा नहीं लगता। यहाँ वात्सल्य मानो पछाड़ खा कर आहत हो गया है और कराह कर मुखरित हुआ है। यशोदा सोचती है कि अब अपने नन्हें कर कमलों से मेरी मथानी कौन पकड़ेगा ? अब हठ कर के माखन कौन खाएगा ? हे कन्हाई, मैं तुम्हारे चरण कमलों पर निछावर हो जाती हूँ, तुम यहीं रहो। कृष्ण को जाते देख कर वे मूर्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ी।[2] बालक के दूर चले जाने पर उसका खेलना, उसका हठकरना सब कुछ याद आता है। यशोदा को तो कृष्ण के जाने की बात सुन कर ही सब याद आने लगता है। 'इसके बिना मैं कैसे जीऊँगी' ऐसा सोच वे जाते हुए कृष्ण को देख मूर्छित हो, धरती पर गिर पड़ती हैं। मातृ व्यथा का कितना मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है ? वे कृष्ण से यह भी कहती हैं कि 'माता को इतना दुःखी जान कर अब तुम कभी मथुरा-गमन न करना।[3] माता बालक से यों ही कहेगी कि मुझे दुःखी देखकर भी तुम चले जाओगे ? यह सब अत्यंत स्वाभाविक है।

सूर ने भी नरसिंह के समान रोहिणी के कृष्ण-प्रेम का वर्णन किया है। रोहिणी धरती पर गिर पड़ती है, फिर अत्यंत व्याकुल हो कर खड़ी होती है, किसी के भी शांत करने पर शांत नहीं होती। अन्त में वे कहती हैं कि तुम्हारे बिना तो हम

---

१ "नहिं कोउ स्यामहिं राखै जाइ।

....

मदन गोपाल बिना घर-आगन, गोकुल काहिं सुहाई।

—'सूरसागर', पृष्ठ १२७४, पद ३५६३।

२ "को कर-कमल मथानी धरिहै, को माखन अरि खैहै।

....

हौं बलि-बलि इन चरन-कमल की, ह्याई रहौ कन्हाई।

सूरदास अवलोकि जसोदा, धरनि परी मुरझाई॥"

—'सूरसागर', पृष्ठ १२७४, पद ३५६२।

३ "जननि दुखित जानि कै कबहुं, मथुरा गवन न करियै।"

'सूरसागर' पृष्ठ १- .. .. ।

मर जाएँगी।[१] कृष्ण के मथुरागमन के लिए प्रस्थान करते समय का यशोदा का विलाप तो हमारे नेत्रों को भी अश्रु-प्लावित कर देने वाला है। वे कृष्ण से कहती हैं कि 'हे मोहन, मुझे तनिक तुम्हारा मुख देख लेने दो। मेरे लाल, मेरे मदनगोपाल, मेरी ओर मुँह फेरो। मुझसे माता का नाता रखना। . नन्द ने यशोदा को समझाया सम्हाला, अन्यथा यशोदा के प्राण निकल जाते।'[२] जब रथ चलने को है तब भी यशोदा पुकारती हैं कि 'गोपाल कृष्ण को मथुरा जाने से रोको। लज्जा और संकोच करने से काम नहीं चलेगा। एक पल बीतता है तो मानो सात युग बीतते हैं। (अर्थात् एक क्षण भी गँवाये बिना, निर्लज्ज कहला कर भी हम कृष्ण को रोक लें) अक्रूर के साथ कृष्ण को मत जाने दो, हमारी बात सुनो, इनके बिछुड़ने पर तो गोकुल की सारी शोभा ही समाप्त हो जाएगी।[३] इसके बाद यशोदा का कंठ गद्-गद् हो गया और सारा शरीर प्रेम पुलकित हो गया।

जितना कहा जा सकता था, पुकारा जा सकता था उतना यशोदा ने कह-पुकार लिया। यहाँ तक कहा कि निर्लज्ज होकर चलते हुए कृष्ण को रोक लिया जाय क्योंकि इनके बिना गोकुल श्रीहीन हो जाएगा। अंत में वे थकित-सी हो कर गद्गद् रह जाती हैं और सारा शरीर पुलकित हो जाता है। यह वर्णन अतीव मर्मस्पर्शी है। जाते हुए कृष्ण का और एक बार मुँह देख लेने की अभिलाषा करने का यशोदा का मातृभाव मर्माहत कर देने वाला है। जब रथ चला तब यशोदा की मातृव्यथा 'पुत्र'

---

१ " र राहिनी राइ।
धरनी गिरति, उठति अति व्याकुल, कहि राखत नहीं कोउ ॥

तुम बिनु मरि जाहि ॥"
—'सूरसागर' पृष्ठ १२७८, पद ३६०८।

२ "मोहन नैकु बदन त्न हेरी।
राखौ मोहि नात जननी कौ, मदनगुपाल लाल मुख फेरौ।
र
गए न प्रान सूर ता अवसर, नंदजतन करि रहे घनेरौ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ १२७८, पद ३६०८।

३ "गोपाल हि राखहु मधुबन जात।
लाज किऐ कछु काज न सरिहैं, पल बीतै जुग सात ॥
सुफलसुत के संग न दीजियै, सुनौ हमारी बात।
गोकुल की सब सोभा जैहै, बिछुरत नंद के तात ॥

सूरदास कछु बोल न आयौ, भे पुलक सब गात ॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ १२७८, पद ३६०७।

की पुकार लगा कर मुखरित हो उठी।[१]

नंद की मनोव्यथा का वर्णन भी संक्षिप्त होते हुए हृदयद्रावक है। जब मथुरा में नंद से कहते हैं कि अब आप व्रज जाइये, तब नन्द रो पड़ते हैं और उनके मुख से निकलने वाले शब्दों में भी नेत्रों से टपकने वाले अश्रुबिंदुओं की-सी क्षमता एवं हृदयस्पर्शिता है। वे कृष्ण से कहते हैं कि ऐसे निष्ठुर वचन मत कहो, कृष्ण! ये बड़े दुःसह हैं, सहे नहीं जाते। तुम तो यह सब हँस कर कह गये, किन्तु मेरे नेत्र तो अश्रु से भर गए। अब ऐसा कभी मत बोलना। चलो, तुरन्त चलो, अब व्रज के आँगन में खेलना। यशोदा तुम्हारा मार्ग देखती होगी। तुम्हें आता देख वह दौड़कर तुम्हें मार्ग में ही ले लेंगी। बलराम ने कहा कि तुम व्रज जाकर माता को धीरज बँधाओ, तब नंद को यह बात ऐसी लगी मानो नागिन ने डस लिया हो।[२]

नन्द के पितृहृदय का कितना हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है! बिना कृष्ण के व्रज लौटने की बात उन्हें नागिन के दंश सदृश प्रतीत होती है। बालक से बिछुड़ने पर आँसू बहाते हुए पिता के हृदय का चित्रण सूर से अच्छा हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया है। एक पद में नन्द कृष्ण से कहते हैं कि 'मोहन, तुम्हारे बिना हम नहीं लौटेंगे। जब यशोदा दौड़ कर तुम्हें लेने आएँगी, तब मैं उन्हें जवाब क्या दूँगा[३]? नन्द की कृष्ण से बिछुड़ने की वेदना ऐसी है जो वर्णन नहीं की जा सकती[४]। इनका शरीर काँपने लगा, जैसे हवा से पत्ता काँपता है। वे निर्बल और क्षीण पड़ गए वे उनका हृदय अत्यंत धक धकाने लगा। पछताते हुए वे व्रज लौटने लगे।[५] इनका हृदय दुःख

---

१ "महरि, पुत्र कहि सोर लगायौ ''
—'सूरसागर', पृष्ठ १२७६, पद ३६१०।

२ "निठुर वचन जनि कहौ कन्हाई। अति ही दुसह, सह्यो नहिं जाई॥
तुम हँसि कै बोलत ये बाता। मेरैं नैन भरत हैं पानी॥
अब ये बोल कबहु नहिं बोलौ। तुरत चलहु ब्रज आँगन डोलौ॥
पथ निहारति जसुमति ह्वै है। धाइ आइ मारगमें लैहै॥
जननि अकेली व्याकुल ह्वैहै, तुमहि गये कछु धीरज लैहै॥
व्याकुल नंद सुनत यह बानी। डसी मनौ नागिनी पुरानी॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३२५, पद ३७३३।

३ "मोहन तुमहि बिना नहि जैहौं।
महरि दौरि आगे जब ऐहै, कहा ताहि मैं कैहौ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३२७, पद ३७३८।

४ "सूर नंद बिछुरत की वेदनि, मोपै कही न जाइ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३२६, पद ३७३४।

५ "भए बल हीन खीन तन नृपति, ज्यों बयारि बस पात।
धकधकात हिय बहुत सूर उठि, चले नंद पछतात॥"
—'सूरसागर' पृष्ठ १३२८, पद ३७४२।

वे अनिरेक से भर आया, चलते समय गला भी भर आया और कंठ अवरुद्ध तथा गद्-गद् हो गया। आधा-आधा डग चलना भी उन्हें करोड़ो पर्वत लाँघने के समान कठिन होने लगा। वज्रपात हो जाने पर भी शरीर में जीव रह गया यही आश्चर्य की बात है[१]। वे व्रज की ओर वैसे ही चले जैसे मानो विरह के समुद्र में निश्चेतन हो कर बस चले जा रहे हों[२]।

नन्द के पितृहृदय के इस चित्रण में सूरदास ने कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने दी है। स्वाभाविता, सूर के वात्सल्यवर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है। तभी तो इनके वात्सल्य के पदों में सच्ची मार्मिकता पाई जाती है। आधा-आधा कदम चलना भी पर्वत लाँघने के समान हो जाने का वर्णन कितना यथार्थ है। दुःख की बात सुन कर हमारे पैर निर्बल पड़ जाते हैं, भारी हो जाते हैं। निश्चेतन-से होकर विरह समुद्र में व्रज की ओर बहते चले जाने का वर्णन भी नन्द की मन स्थिति और मनोव्यथा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है।

जब नन्द व्रज लौट आते हैं तब यशोदा उन्हें बिना कृष्ण के लौट आने के लिए कितना कोसती है और कितनी विरह वेदना अनुभव करने लगती हैं इसके चित्र भी अतीव मर्मस्पर्शी है। यशोदा कृष्ण से मिलने, नन्द को दूर से देखते ही, ऐसे दौड़ पड़ी जैसे गाय बछड़े को मिलने दौड़ती है[३]। कृष्ण को न देखकर वे मूर्छित सी हो गईं, जैसे मानो तुषार के पड़न से कमलिनी मुरझा गई[४]। यशोदा नन्द पर खीझने लगी और दशरथ का उदाहरण दे कर उन्हें बार-बार धिक्कारने लगी। नन्द भी यह सुन कर व्याकुल हो और मूर्छित हो कर धरनी पर गिर पड़े[५]। यशोदा नन्द से कहती हैं कि

---

१ "दुख समूह हृदय परिपूरन, चलत कंठ भरि आयौ।
अध अध पद भुव भइ कोटि गिरि, जौलग गोकुल पैठौ।
सूरदास अस कठिन कुलिस तैं, अजहु रहत तनु बैठौ॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३२८, पद ३७४३।

२ "बिरह सिंधु मैं परे चेत बिनु, ऐसेहि चले बहाइ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३२६, पद ३७४४।

३ "धाइ धेनु बच्छ ज्यौं ऐसैं ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३२६, पद ३७४५।

४ "देखि रहत पोष-सरोवर मानौ पुरइनि हेम हई॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३२६, पद ३७४६।

५ "बार बार महरि कहति, जनम धिक कहाए॥
कबहूँ कहति सुनी नहीं, दसरथ की करनी।
यह, सुनि नद व्याकुल ह्वै, परे मुरछि धरनी॥
—'सूरसागर', पृष्ठ १३२६, पद ३७४७।

'जैसे तुम कृष्ण को ले गए थे वैसे उन्हें लाये क्यों नहीं[1] ? तुम्हारी आँखें फूट नहीं गई ? तुम्हें मार्ग कैसे दिखाई दिया ? कृष्ण को देखे बिना मैं जली जा रही थी और तुमने आकर उस विरहज्वाला को फूंक कर और प्रज्वलित कर दिया। मेरा यह हृदय कृष्ण के बिना फट कर दो टुकड़े क्यों नहीं हो गया ? तुम्हें और तुम्हारे बिना कृष्ण के लौट आने वाले इन चरणों को धिक्कार है। तुम श्याम के बिछुड़ने की बधाई देने आए हो[2]। तुम्हारी बुद्धि मंद पड़ गई, तुम बुद्धिहीन हो गए जो कृष्ण को छोड़ कर चले आए। अब मथुरा जाकर किसी भी प्रकार उन्हें ले आओ[3]।' यशोदा को एक गोपी समझाती है कि 'तब तो तू कृष्ण को मारती-पीटती थी, सजाएँ देती थी। क्रोध में आकर क्या-क्या नहीं सुनाती थी ? रस्सी बाँध कर उन्हें घर-घर घुमाती थी। अब वृथा पछताने से क्या लाभ [4]?'

"तब तू मारिबोई करति" वाले पद को, "सूरसागर" के प्रथम संस्करण में यशोदा के प्रति कहे गए सखी-वचन के शीर्षक से (सखी वचन यशोदा-प्रति) छापा गया है। किन्तु इस पद को आचार्य शुक्ल जी ने 'त्रिवेणी' के अपने आलोचनात्मक प्रबंध 'सूरदास' में नन्द के यशोदा-प्रति कहे गए वचन के रूप में समझाया है। अन्य अनेकानेक आलोचकों ने भी इसी का अनुसरण किया है। वास्तव में इसे सखी-वचन ही मानना चाहिए जो यशोदा को समझाने के लिए आश्वासन देने के प्रयत्न के रूप में है। नन्द में तो इतने होश-हवास ही नहीं रह गए थे और यशोदा की खीझ भरी कटुवाणी का प्रत्युत्तर देने का साहस ही नहीं रह गया था, जो वे ऐसी, यशोदा को और झुंझला देने वाली बात कहते।

---

१ "लै जु गए जैसैं तुम ह्याँ तैं, ल्याए किन वैसे हिं आगैं धरि ॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३३०, पद ३७५०।

२ "फूटि न गईं तुम्हारी चारौ, कैसैं मारग सूझे ॥
इक तौ जरीजात बिनु देखें, अब तुम दीन्हौं फूकि।
यह छतिया मेरे कुंवर कान्ह बिनु, फटि न भई द्वै टूक ॥
धिक तुम धिक ये चरन अहो पति..............."
—'सूरसागर', पृष्ठ १३३१, पद ३७५२।

३ "मंदहीन मति भयौ नंद अति, होत कहा पछिताने छन-छन।
सूर नंद फिरि जाहु मधुपुरी, ल्यावहिं सुतक कोटि जतन धन ॥"
—'सूरसागर' पृष्ठ १३३२, पद ३७५७।

४ "तब तू मारि बोई करति।
रिसनि आगैं कहि जु आवति, अब लै भाँडे भरति ॥
रोस कै कर दावरि लै, फिरति घर-घर धरति।
कठिन यह करि जो बाध्यौ, अब वृथा करि मरति ॥
—'सूरसागर', पृष्ठ १३३२, पद ३७५६।

यशोदा का विरह व्याकुल और व्यथित मन उससे पति को मूर्ख भी कहला देता है यह चित्रण कितना मनोवैज्ञानिक है। "किसी भी प्रकार मेरे बालक को यहाँ ले आओ" यह यशोदा का हठ माता का हठ होते हुए भी बालहठ के समान प्रेमहठ है। लौट कर व्रज की ओर आने वाले नन्द के चरणों को भी धिक्कारा गया है, सुन्दर कृष्ण को देख कर भी व्रज चले आने वाले नन्द के नेत्रों को भी धिक्कारा गया है। यह सब स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थिति में व्याकुल माता के मुख से ऐसे ही वचन निकलते है। सूरदास ऐसे स्थलों पर वर्णन करने में सफल हुए हैं इसका कारण यह है कि वे अपने को यशोदा की स्थिति में डाल कर उसके अनुरूप का अनुभव करके, अनुभूति को तीव्र रूप दे कर उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं।

यशोदा को सारा गोकुल कृष्ण की अनुपस्थिति में श्मशान सा भयानक लगता है, जो मानो खाने दौडता हो। इसी लिए वे कृष्ण के पास जाने का निश्चय करती हैं[1]। वे नद से कहती है कि 'तुम्हे व्रज का मोह है अतएव इस अपने व्रज को ठोकवजा कर अच्छी तरह सम्हालो। हम तो मथुरा जाती है, जहाँ कृष्ण है[1]।' वे सोचती हैं कि 'मैं ही तब कृष्ण के सग क्यो न गई ? मैं उन्हे छोडकर कभी न लौट आती। अब तो मैं यमुना के जल में बह जाती हूँ। मुझे जिलाकर क्या करोगे[2] ? वे मथुरा की ओर जाते हुए पथिक से यह सदेशा देवकी के लिए भेजती हैं कि "देवकी से जाकर इतना कहना कि मैं तुम्हारे पुत्र की धात्री ही हूँ। उसी नाते मुझ पर दया-माया रखना। तुम तो कृष्ण की आदतें जानने लग गई होगी, किन्तु तब भी मुझसे कहे बिना नही रहा जाता कि प्रात काल होते ही मेरे लाडले को जो मक्खन-रोटी बहुत भाती है वह जरूर देना। उसका ध्यान रखना क्योंकि वह बहुत संकोची

---

१ "नद व्रज लीजै ठोंकि बजाइ।
देहु बिदा मिलि जाहि मधुपुरी, जह गोकुल के राई॥
... ...
भूमि मसान, विदित यह गोकुल, मनहु धाइकै खाइ।
सूरदास-प्रभु पास जाहि हम, देखहि रूप अघाई॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३४१, पद ३७८६।

२ "माई हौं तिन संग गई।
हौंए दिन जानत ही बूही, लोगनिकी सिखई॥
जोहौं कैसें हु जान पावती, तौ बन आवति दौंहि॥
अब हौं जाई जमुन जल बहिहौं, कहा करौ मोहि राखी।"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३४१, पद ३७८७।

है[1]।

बालक कृष्ण के मथुरा से न लौटने पर यशोदा को सारा गोकुल श्मशान-सा भयानक लगता है और खाने दौड़ता है—इस वर्णन मे सूर ने पुत्र वियोग की मातृ-हृदय जन्य सहज वेदना को मूर्तिमती करके हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। 'नद, ब्रज लीजें ठोकि बजाय' मे तो अतीव मार्मिक व्यंजना है। आचार्य शुक्लजी ने 'त्रिवेणी' के सूरदास शीर्षक प्रबन्ध मे इसके सबंध मे यथार्थ ही लिखा है कि "एक एक वाक्य के साथ हृदय लिपटा हुआ आता दिखाई दे रहा है। एक वाक्य दो-दो, तीन-तीन भावों से लदा हुआ है। श्लेष आदि कृत्रिम विधानो से मुक्त ऐसा ही भाव-गुरुत्व हृदय को सीधे जा कर स्पर्श करता है[2]। वे इसे भावशबलता न कह कर भावपचामृत कहते हैं। यशोदा का यह सोचना, कि "काश, मैं ही तब कृष्ण के साथ मथुरा चली गई होती! तब मैं तो उन्हें छोड़कर अकेली कभी न लौट आती। अब तो यमुना के जल मे मर जाने के अतिरिक्त और चारा ही क्या है", अत्यत स्वाभाविक और हृदय स्पर्शी है। देवकी को भेजे जाने वाले सदेशे मे तो सूर ने यशोदा के मातृहृदय को मानो निकाल कर ही सामने रख दिया है। कृष्ण की आदतों की ओर ध्यान आकृष्ट कराना, यह कहना "तुम जानती ही हो, तब भी मुझसे कहे बिना नही रहा जाता' नटखटी और माखन चोर कृष्ण को सकोची स्वभाव का कहना, धात्री के नाते ही अपने पर दया-माया रखने के लिए प्रार्थना करना—इत्यादि वर्णन मार्मिकता की सीमा के समान हैं।

वात्सल्य के वियोग पक्ष का एक चित्र सूरदास कृष्ण के मथुरागमन से पूर्व भी प्रस्तुत करते हैं। जब कृष्ण के कालीदह मे कूद पडने का समाचार यशोदा को मिलता है तब वे शोक-समुद्र मे डूब जाती है, सुध-बुध खो बैठती हैं[3]। माता के दुःख का वर्णन नही किया जा सकता[4]। वे 'मेरो बाल कन्हैया' पुकारती हुई व्या-

---

१ "संदेसौ देवकी सौं कहियौ।
हौं तो धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहयौ॥
जदपि टेन तुम जानति उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात होत मेरे लाल लड़ैतै माखन रोटी भावै।"
—'सूरसागर', पृष्ठ १३४३, पद ३७१३।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'त्रिवेणी', पृष्ठ ६४।

३ सोंक-सिंधु बूड़ी नंदरानी। सुधि बुधि तन की सबै भुलानी!"
—'सूरसागर', पृष्ठ ४४८, पद ११६५।

४ "सूर-स्याम सुत जीय मातु के, यह वियोग बरन्यौ नहिं जाई।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ४४८, पद ११६४।

कुल होकर मूर्छित हो गई[१]। नन्द भी रोते हुए पुकार कर कहने लगे कि "इस बुढ़ापे में मुझे क्यों छोड़ दिया कृष्ण। कुछ दिन की मोह माया लगा कर यों पानी में क्यों अदृश्य हो गये?" इतना कह कर वे कटे हुए वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर मूर्छित हो कर गिर पड़े[२]।

नन्द यशोदा के, कृष्ण के कालीदह में कूद पड़ने पर शोक समुद्र में डूब जाने का, अत्यंत व्याकुल हो जाने का तथा मूर्छित हो जाने का वर्णन अतीव मर्मस्पर्शी है। तट पर खड़े रह कर पुत्र के लिए रोते हुए—मचलते हुए, विक्षिप्त की तरह पुकारते हुए व्याकुल माता-पिता का हृदयद्रावक चित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है।

नरसिंह मेहता ने भी 'नागदमन' के प्रसंग का वर्णन अपने बाललीला के पदों के अंतर्गत किया है, किन्तु उसमें नागलोक का ही वर्णन किया गया है, मानवसृष्टि के माता-पिता के वियोग दुःख का वर्णन बिल्कुल नहीं किया गया है। नरसिंह अनंत की शक्ति के साथ नागदमन के चित्र का अंकन करते हैं और सूर धरती के हृदय को थाम कर बैठे हुए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास का वात्सल्य के संयोग पक्ष का सजीव वर्णन यदि पाठकों को प्रसन्न और पुलकित कर देने वाला है, तो उस के वियोग-पक्ष का वर्णन हृदय को द्रवित तथा नेत्रों को अश्रुप्लावित कर देने वाला है। इन दोनों पक्षों का निर्वाह सूर ने बड़े कौशल और पूरी सहृदयता के साथ किया है। नरसिंह मेहता का तो वात्सल्य के संयोग पक्ष का वर्णन भी अत्यन्त संक्षिप्त है और वियोग पक्ष का वर्णन तो दो चार पंक्तियों में ही समाप्त हो जाता है। दिव्य द्वारिका में रासलीला देख आने वाले नरसिंह का मन वात्सल्य वर्णन में अधिक रम ही नहीं सका है। सूर के समस्त पदों को मिलाकर 'सूर सागर' कहा जाता है, किन्तु वात्सल्य की उमंग-लहरों से पूर्ण हैं। सूरदास के जैसा सुन्दर और मार्मिक वात्सल्य वर्णन विश्व-साहित्य भर में नहीं मिलता। निश्चित ही सूरदास वात्सल्य के सबसे बड़े कवि हैं। यदि ये और कुछ भी न लिख कर केवल वात्सल्य के ही पद लिखते, तब भी ये इतने ही प्रसिद्ध, इतने ही लोकप्रिय और ऐसे ही श्रेष्ठ कवि माने जाते—इसमें कोई सन्देह नहीं।

---

१ ". धरनि गिरि मुरझैया।
सूर बिना सुनेभई अति व्याकुल, मेरो बाल कन्हैया॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ ४५२, पद ११७८।

२ "नंद पुकारत रोइ बुढ़ाइ मैं मोहि छाड्यौ।
कछु दिन मोह लगाइ, जाइ जल भीतर माड्यौ।
यह कहि कै धरनी गिरत, ज्यौं तरुकटि गिरि जाइ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ४६४, पद १२०७।

अध्याय ६

सूरदास और नरसिंह मेहता का शृंगार-वर्णन

रसराज शृंगार को आचार्यों ने संयोग शृंगार और विप्रलंभ शृंगार में विभाजित किया है। सूर-साहित्य में शृंगार-रस के इन दोनों पक्षों का विस्तृत और विशद वर्णन मिलता है। शृंगार-रस के अंतर्गत वर्णित की जा सके ऐसी कोई संभावना इनसे नहीं छूटी। इसीलिए 'बाद के कवियों की शृंगार की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पडती हैं[1]।' 'वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक आए[2]।' इनका शृंगार-वर्णन इतना सुन्दर, मार्मिक एवं सर्वांगपूर्ण है कि आचार्य शुक्ल जी के इस कथन से सहमत हुए बिना नहीं रहा जाता कि 'शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने[3]।' यह शृंगार प्रेमलक्षणा माधुर्य भक्ति के रूप में तथा भक्ति का माध्यम बन कर वर्णित हुआ है, इसलिए इसके लौकिक सौन्दर्य और माधुर्य में अलौकिक उदात्तता पाई जाती है तथा इसीलिए यह दिव्य शृंगार अतीव प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी प्रतीत होता है।

नरसिंह मेहता भी प्रेमलक्षणा माधुर्य भक्ति के गुजराती साहित्य के सबसे बड़े कवि हुए हैं। जिस प्रकार सूरदास, प्रेमलक्षणा माधुर्य भक्ति का आश्रय ले कर, कृष्ण-काव्य का सृजन करने वाले, हिन्दी के सर्वप्रथम कवि हैं, उसी प्रकार नरसिंह भी इस कोटि के सर्वप्रथम गुजराती कवि हैं। गोपी-भाव से किये गये इनके भगवान् कृष्ण की शृंगार-लीला के वर्णन इन्हें घोर शृंगारिक कवि सिद्ध करते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें विश्वास हो गया था कि दिव्य द्वारिका में उन्हें अपनी शृंगार-लीलाएँ दिखला कर उनका, निर्भर हो कर निस्संकोच रूप से वर्णन करने की आज्ञा उन्हें स्वयं भगवान् से प्राप्त हुई थी[4]। सूरदास को अपने गुरु वल्लभाचार्य जी से आज्ञा मिली थी

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ १६५।

२, ३ " " " 'त्रिवेणी', पृष्ठ ७३ ७४।

४ "जे रस गुप्त ब्रह्मादिक नव लहे, प्रगट गाजे तु, इने वचन दीधु,
निश्चे राखी निरभे थई मानजे, दासने अति सनमान दीधु।"
— इ ह. देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह' पृष्ठ ७६, पद ४।

कि 'घिघियाते काहे को हो ? भगवद्लीला का वर्णन करो।'

इन दोनो कवियो ने भगवान् के प्रेममय आनन्द-रूप को ही काव्य का विषय बनाया। प्रेमभाव की चरम सीमा—आश्रय और आलंबन की एकता दिखला कर भक्त और भगवान की एकता दिखलाना तथा माधुर्य भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करना ही इन दोनो भक्त-कवियो का उद्देश्य रहा है। उस अनन्त और परम सृष्टिकर्ता के सौंदर्य और प्रेम का वर्णन लौकिक एव श्रृगारिक होते हुए भी भक्ति के परम उज्ज्वल एव उदात्त भाव से प्रेरित होने के कारण दिव्य, पवित्र और अलौकिक है। लोक के माधुर्य के भीतर अनन्त दिव्य और अलौकिक माधुर्य का साक्षात्कार ही भक्ति है— भक्तो के हृदय की इस सूक्ष्म एव तीव्र अनुभूति की इन दोनो कवियो के साहित्य मे सफल अभिव्यक्ति हुई है। लौकिकता के सन्निवेश ने अलौकिकता मे स्वाभाविकता, सजीवता एव मार्मिकता की अभिवृद्धि की है। आसक्तियो के मध्य मे रह कर भी अनासक्त रहना यही ईश्वरोन्मुखता है, यही ईश्वरत्व है, इस तत्त्व को श्रृगार के माध्यम से अभिव्यजित करना भी इन कवियो का उद्देश्य रहा है।

सूर और नरसिंह का सयोग-श्रृगार

सूरदास के श्रृगार-वर्णन मे सयोग और वियोग दोनो पक्षो का निर्वाह देखा जाता है, किन्तु नरसिंह ने तो, किंवदन्ती के अनुसार, दिव्य-द्वारिका मे उद्दाम सयोग श्रृगार देखा था, इसलिए उसी का वर्णन अधिक किया है। जहाँ सूर के पदों मे विप्रलभ श्रृगार के सैकडो पद मिलते हैं, वहाँ नरसिंह मेहता केवल कृष्ण के मथुरा के लिए प्रस्थान करते समय का गोपियो का विरह-दुःख वर्णित करके ही, तथा 'श्रृगार-माला' के कुछ इने-गिने पदो मे गोपियो की विरह-व्यथा का चित्रण करके ही विप्रलभ श्रृगार से छुटकारा पा लेते है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यही है कि 'गोविंद-गमन' मे ही गोपियो की विरह-व्यथा का ऐसा हृदय द्रावक वर्णन किया गया है कि नरसिंह का गोपी-भाव से कृष्ण के नित्य सान्निध्य मे रहने के लिए इच्छुक एव उत्सुक हृदय उस असह्य विरह-दुःख के समुद्र म डूब कर स्वय दुःखी होना नही चाहता था।

सूरदास ने श्रृगार-वर्णन मे अपनी मौलिक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है इसमे कोई सदेह नही, किन्तु किसी नए, मौलिक प्रसग की उद्भावना वे नही सोच सके हैं। श्रृगार-वर्णन मौलिक होते हुए भी उसकी पृष्ठभूमि परम्परागत ही है। नरसिंह मे श्रृगार-वर्णन के लिए कहीं-कहीं कवि का रूप प्रबल हो गया है। उन्होंने एक नए प्रसग की उद्भावना की है। इसे उन्होंने अपनी 'सुरत सग्राम' नामक रचना मे वर्णित किया है। नरसिंह के पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी भी भाषा के किसी भी कृष्ण-कवि ने इस प्रकार की मौलिकता का परिचय नही दिया है। इसकी मौलिकता एव इसके साहित्यिक मूल्य को कन्हैयालाल मुन्शी ने भी स्वीकार किया

है[1]। यह एक प्रकार से खण्डकाव्य है जिसे नरसिंह की बड़ी रचनाओं में श्रेष्ठ माना जा सकता है। इस विशिष्ट मौलिकता के कारण नरसिंह को शृंगार-वर्णन के क्षेत्र में सूरदास से अधिक सम्मान देने की इच्छा हो जाती है, किन्तु सूर के संयोग-शृंगार तथा विप्रलम्भ शृंगार के सैकड़ों हृदयस्पर्शी चित्रों का जब ध्यान आने लगता है तब नरसिंह के शृंगार-वर्णन को एकांगी और अपेक्षाकृत अपूर्ण ही मानना पड़ता है। 'सुरत-संग्राम' में पाई जाने वाली मौलिकता नरसिंह की विशिष्टता है इसे तो स्वीकार करना ही पड़ता है। अतएव सर्वप्रथम नरसिंह की इस विशिष्ट रचना पर ही विचार किया जाय। 'सुरत-संग्राम' में कुल ७२ पद है और राग प्रभात में लिखे गए हैं। इस रचना के प्रारम्भ में ही वे कहते है कि जिस शूरशिरोमणि कृष्ण ने अघासुर, बकासुर, कंस, जरासंध इत्यादि का संहार किया और पांडवों को महाभारत-युद्ध में विजय प्राप्त कराई वे ही कृष्ण सुरत-संग्राम में राधा से पराजित हो गए। वे कहते हैं कि 'यह मैं सत्य कह रहा हूँ कि कृष्ण हार गए। कोई मुझे मूढ़ मति का कहेगा, कोई मुझे अल्पमति भी कहेगा, किन्तु यह सत्य तो मैं कह कर ही रहूँगा कि कृष्ण हार गए, हार गए[2]।' कृष्ण राधा से पराजित हो गए यह कहने का उनका उत्साह 'हार गए, हार गए' यों दो बार के कथन से स्पष्ट अभिव्यक्त होता है। जब युद्धभूमि छोड़ कर द्वारिका चले जाने वाले कृष्ण का 'रणछोड़' रूप गुजरात में लोकप्रिय हुआ, तब प्रेम के युद्ध में राधा से हारे हुए कृष्ण का प्रेम-पराजित रूप नरसिंह को इतना प्रिय हो इसमें आश्चर्य ही क्या?

नरसिंह मेहता के द्वारा वर्णित 'सुरत-संग्राम' के अद्वितीय शृंगार-चित्र का दिव्य और मधुरतम रस पाठकों को और आलोचकों को मुग्ध करता है। राधा और कृष्ण का, दस-दस सखियों और सखाओं के साथ का, प्रथम बार का युद्ध, कृष्ण के राधा को छेड़ने पर, ऋतुराज वसंत की मनोहर एवं मलयानिलयुक्त मादक प्रभात में, पक्षियों के मधुर कलरव के शृंगारोद्दीपक वातावरण में प्रारम्भ होता है। परन्तु एकाएक नन्द के वहाँ आ जाने पर प्रेम-युद्ध शांत और स्थगित हो जाता है। अगली चैत्र-पूर्णिमा की रात्रि को पुनः प्रेम युद्ध करने का निश्चय किया जाता है। "पराजित को विजेता की दासता स्वीकार करनी पड़ेगी[3]।" राधा की इस शर्त को भी कृष्ण स्वीकार करते हैं। चैत्र पूर्णिमा की रात्रि को ललिता, चन्द्रावली, विशाखा आदि सखियों के साथ राधा प्रेम युद्ध के लिए उत्साहपूर्वक प्रस्थान करती हैं। कृष्ण के साथ राधा ही

---

१ K M Munshi, "Gujarat & Its Literature, Page 143

२ "सत्य हृदये धरु, सम खाईने कहु, नाथजी हारियो एम दासु,
नरसैंयो मूढ मति, को कहे अल्पमति, (पण) हरि हारियो हारियो सत्य भासु।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६४।

३ "राधिका बोलती, मनमांहे डोलती, जे हार ते तेनु दास थाय।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६६।

दृढ युद्ध करेंगी यह निश्चित किया जाता है, किन्तु राधा कृष्ण को युद्ध की भयानकता से बचाने के लिए एक संदेशा भिजवाती हैं कि "हमारी शरणागति स्वीकार कर लो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।"[1] संदेशवाहक और दूत होने का सौभाग्य एवं गौरव नरसिंह को प्राप्त होता है।

उधर कृष्ण अपने गोप-सखाओं को समझाते हैं कि 'तुम सब कहो तो बनो शरणागति स्वीकार कर लें, क्योंकि जीतने पर कोई यश प्राप्त नहीं होगा और हारने पर घोर अपयश मिलेगा।' किन्तु स्त्रियों के सम्मुख भुकने के लिए उनके साथी बिल्कुल तैयार नहीं थे। इसी बीच नरसिंह वहाँ पहुँचे जिन्हें चोर समझ कर सब गोप पीटने लग गये। कृष्ण ने नरसिंह को बचाया और आने का कारण पूछा। नरसिंह भी बड़े ढीठ थे और राधा के द्वारा भेजे गए थे इसलिए वे सहसा कृष्ण से भी नहीं डरते। वे कृष्ण से कहते हैं कि 'संदेशवाहक और दूत के साथ ऐसा व्यवहार करने वालों को और उनके स्वामी को धिक्कार है। तुम सबको पुरुष किसने बनाया, तुम तो पृथ्वी पर भार ही हो। तुमसे तो स्त्रियाँ भली हैं। राधा का पत्र पढ़ कर, हे कृष्ण तुम्हें उनकी शरणागति स्वीकार कर लेनी चाहिए।'[2] यह सुन कर कृष्ण की क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो गई और उन्होंने पत्र ले कर सिदामा को पढ़ने दिया। पत्र में लिखा था 'कि हम अबलाओं में बल नहीं है ऐसा मन सोचना। चण्डी ने कितने शूरों का संहार किया है इस पर भी विचार करो। बड़े बड़े देवता भी पुरुष होते हुए नारी की सेवा करते हैं। अतएव तुम हमारी शरणागति स्वीकार कर लो[3]।' नरसिंह भी साहस करके कहते हैं कि 'नारी को पराजित करना कोई कठिन कार्य नहीं है ऐसा मत सोचना। प्रलयकर भगवान् शंकर भी भीलनी से हार गए तब अरे ग्वाले, तुम्हारी

---

१ "कीजिए जरा नहीं, हारे रूपड़ा सही, भाइ करें युद्ध नहिं रहु रामा।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाइ, 'नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६८।

२ " ने कृष्ण सहसथी नहिरे बीनो

कोणे पुरुष कर्या, भार भू पर धर्या, तम थकी तो भली होय नारी,
काहना पत्र वाचीने तु शरण थारे।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ९७-९८ ९९।

३ "अबलमा बल नहिं एम धारीश नहि जो जो चंडीए चोलिया शूर केता,
..
पुरुष जे देवना, नारीने सेवना
शरण था नाथ नरसैंयो वारी।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ९९, पद १७।

क्या बिसात ? शरणागति स्वीकार करने में ही तुम्हारा कल्याण है[1]। यहाँ हमें नरसिंह की ढीठता पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलती है। वे कृष्ण से 'अल्या गोपला' अर्थात् 'अरे ग्वाले' तक कह देते हैं। कृष्ण के पास से राधा की ओर लौटते हुए वे कहते हैं कि 'तुम अपना मान स्वयं खो दोगे और हार कर रोओगे।'

इसके पश्चात् कृष्ण अपने साथियों के साथ युद्ध के लिए शस्त्रसज्ज हो कर प्रस्थान करते हैं। पृथ्वी काँपने लगी तथा शेषनाग और कूर्म भी काँप गए। उधर नरसिंह के पहुँचकर कृष्ण का उत्तर सुनाने पर राधा विशाखा आदि भी 'अजीत को जीत कर' यश प्राप्त करने का निश्चय करती है तथा आपस में वे सब कहती हैं कि 'गोप सैन्य के मध्य म लाल का रूप तो देखो[2]।' इसके अनन्तर गोपियों समेत राधा ने युद्ध के लिए ऐसा सिंहनाद किया कि स्वर्ग के देवता भी चौंक गए और गोप-सैन्य भी आतंकित हो गया[3]। कृष्ण ने भी जयदेव को संदेशवाहक और दूत बना कर राधा के पास भेजा। जयदेव ने राधा के पास पहुँच कर उन्हें समझाना प्रारंभ किया कि 'जब शूर शिरोमणि कृष्ण ने पूतना और ताडका जैसी राक्षसियों का तथा अनेक भयानक राक्षसों का संहार किया है तब तुम सबकी गणना ही क्या ?' यह सुन कर राधा ने जयदेव को निरुत्तर कर देने वाली बात कही—"हम तो आद्याशक्ति स्वरूपा हैं। हमारा महत्त्व पृथ्वी के समान अप्रतिम है। बिना पृथ्वी के बीज की उपादेयता या सार्थकता ही नहीं मानी जाती। अरे, तुम्हें किसने जन्म दिया और कृष्ण को

---

१ "नारीनेजीतवी, एहमा भीति शी
एवु धारीश नहि काहना काला

ए त्रिपुरारियो, भिलडीथी हारियो,
तो अल्या गोपाला तु कवण लेखे।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ६६, पद १८।

२, ३ "राधा विशाखा वदे, वाल्जो मदें मदे,
ए अजितने अलि भीनीने जश लेवो,
सैन्य जो गोपनु, आवियु चोपतु,
नो तु ए विच लालनो लटक केवो।
करो सिंहनाद ए सुणे ए वो,
करकीने कोलिया, तोलने तोलिया, छलया सुणी स्वर्गना देवो।

गोप जे महा बली, तेह सर्वे गया छली ,,
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १००, १०१, पद २२।

किसने उत्पन्न किया यह तो बताओ[1]।" जयदेव निरुत्तर हो कर कृष्ण के पास लौटे। जयदेव से राधा की बातें सुन कर कृष्ण ने सैन्य को आगे बढ़ने का आदेश दिया।

कृष्ण के सैन्य को मार्ग में अपशकुन होने लगे और राधा के सैन्य को सब शुभ शकुन होने लगे। जब दोनों सैन्य आमने-सामने हो गए तब कृष्ण ने मकराकृति व्यूह की रचना करके युद्ध आरम्भ किया। राधा ने तुरन्त ही नागाकृति व्यूह की रचना की। युद्ध के अधिक बढ़ने से पूर्व ही राधा ने नरसिंह के साथ कृष्ण को कहलवाया कि "तुम्हें साथ देने गोप आए हैं और मुझे साथ देने गोपियाँ आई हैं। अब हमारे-तुम्हारे कारण इन सब को क्यों कष्ट हो, जैसे भैंसों के लड़ने पर वृक्ष टूटता है? दोष तुम्हारा है, बुद्ध-बुद्ध मेरा है—अतएव इन सबको बचाया जाय। हमारे-तुम्हारे द्वन्द्व-युद्ध से ही क्यों न जय-पराजय का निश्चय किया जाय[2]?" नरसिंह से राधा का संदेश सुन कर कृष्ण द्वन्द्व-युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए। इस बार भी नरसिंह ने शरणागति स्वीकार करने का उपदेश दिया और कहा कि जैसे पार्वती के कहने पर भी दक्ष ने और मन्दोदरी के कहने पर भी दशानन ने उचित उपदेश ग्रहण नहीं किया था वैसी ही गति आपकी है[3]।" नरसिंह के लौटने पर जब राधा द्वन्द्व-युद्ध के लिए उत्साहपूर्वक आगे बढ़ने लगी तब गोपियों ने उन्हें समझाना प्रारंभ किया कि 'शूरशिरोमणि और रसिकशिरोमणि कृष्ण को पराजित करना सरल नहीं।' राधा ने उत्तर दिया कि 'कृष्ण के ये दोनों बिरुद मैं समाप्त कर दूँगी[4]।' तब गोपियाँ

---

१ "अल्या आदि देवी अमो, भामटा सौ तमो,—
कोइ बीज पृथ्वी विण क्याही वांशो;
....
तु अल्या क्या थकी, तेज केहने नकी,—
पूछ तु कृष्णने जई क्या थी आव्यो ?"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ १०२, पद २७।

२ "आवीआ गोप सौ, तुन कारण अल्या, महरे कारणे गोपी आनी;
....
तुजमुज कारणे, बहु पडे धारणे, महीष लडये ज्यम वृक्ष भाजे;
वाक छे ताहरो, काहक छे माहरो, अन्यने दुःख केइ केम छाजे।
आपण बे मली युद्ध करवु मली, हार साए तेनो पच लाजे।"
—वही, पृष्ठ १०४-१०५।

३ "राय रावणने सनी वारती पार्वती, तोय रे बोध बे दद्दे न मान्यो।"
—वही, पृष्ठ १०५, पद ३६।

४ "नरसैंना स्वामीने, अति घणा कामीने, बिरदथी पाडु सखी आज खोटा।"
—वही, पृष्ठ १०६, पद ३७।

कहती हैं कि 'धन्य है, तुम्हारी उपमा तुम्ही हो'[1]।'

उधर कृष्ण को भी उनके गोप सखाओं ने समझाना प्रारम्भ किया कि "राधा से द्वन्द्वयुद्ध करना उचित नही है क्योंकि वे रस से भरी हुई हैं और सुरत-संग्राम मे निपुण हैं[2]।" जब कृष्ण इन सब की बात नही मानते तब बलराम धीरे से उन्हें कहते हैं कि "मेरी इस गुप्त सीख को मान भी लीजिए, अन्यथा कामिनी (राधा) आपका दर्प हर लेगी[3]।" तब कृष्ण जयदेव से सदेशा भिजवाते हैं कि द्वंद्वयुद्ध नही, युद्ध होगा[4]।

इसके पश्चात् युद्ध का प्रारम्भ होता है। बलराम ललिता, विशाखा आदि गोपियों पर अष्ट आलिंगनो, चुम्बनो, दन्त क्षत, कुच-मर्दन, परिरम्भण इत्यादि से आक्रमण करते हैं[5]। गोपियों के केश बिखर गए, अधर खडित हुए और चोली-लहगा सब कुछ खो गया[6]। तब राधा मर्यादा का लोप करके दृग असि सज्ज करके, उरु-प्रदेश की ढाल लेकर, वंकिम भौंहो का धनुष तथा तिरछी चितवन के बाण ले कर कृष्ण तथा उनके साथियों को परास्त करने के लिए कटिबद्ध हुई[7]। अब राधा-कृष्ण का सुरत संग्राम प्रारम्भ हुआ। राधा ने निकट पहुँचने पर स्तन रूपी शस्त्र से ही

---

१ "सर्वे मली ओपिमो, धन्य कहे गोपियो, तुलना ताहरी तु रे तरुणी।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ १०६, पद ३८।

२ "रामारसनी भरी, निपुण सुरतसग्राममा, कानुडा काम एक्कानु काचु।"
— वही, पृष्ठ १०६, पद ३९।

३ "मावजी मानीए, शीख दउ छानी रे,
कामनी कामनी दर्प हरशे।"
— वही, पृष्ठ १०७, पद ४१।

४ "जा जयदेव जइ, सर्वने दे कही, द्वद्व नहि पण कहे युद्ध करिये।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह,' पृष्ठ १०७, पद ४१।

५ "बाथमा भीडता
रद देशे मली हृदमा जाता वली, मोद मनमां धारि कुच पकडता।
हरख आधातथी, नखना पात थी,
रुभने रोलीने, चुभने चोलीने
पिएट द्रय पीमता, मनमा हीसता
चुबर्मे चोलता, सप्त विधि घोलता, अष्ट आलिगने चोली नारव्या।"
— वही, पृष्ठ १०७, १०८, पद ४३, ४४।

६ "केश विखराइ गयो, अधर खडित भयो, चोलीने चणिया सर्व खोया।"
— वही, पृष्ठ १०८, पद ४५।

७ "मर्यादने लोपीने, दु खी करी गोपीने, धोपीने धाइ रण बीच राधे,
दृग-असि सज करी, ढाल उरनी धरी, भ्रुव शरासन विच शरने साधे।"
— वही, पृष्ठ १०८, पद ४६।

प्रहार करना प्रारंभ किया[१]। जिससे महारथी कृष्ण गिर गए और उनके केश पकड़ कर राधा ने उनका विपरीत हाल किया[२]। हाथ स्तनों को पकड़ कर उनसे प्रहार करती हुई राधा ने कृष्ण को तथा उनके साथियों को त्रस्त कर दिया[३]। कृष्ण को तो चित्त गिरा कर के राधा ने स्तनों के प्रहार में प्रायः पराजित ही कर दिया। तब नरसिंह ने कृष्ण का चरण स्पर्श करके पुकारा कि "अब भी शरणागति स्वीकार कर लो। राधा आपके दुःख दूर कर देंगी[४]।" तब कृष्ण परमात्मा ने बादलों से निकलने वाले सूर्य के समान आत्मा को विद्ध करने वाले बाण बरसाना प्रारम्भ किया जिसके फल स्वरूप मल्ल-सदृश राधिका कृष्ण के ऊपर से गिर गईं[५]। अब राधा ने भी पृथ्वी में उठ कर सिंहनी के समान गर्जना कर के ऐसे बाण चलाये कि नरसिंह भी कुछ लज्जित हो गये और जिन बाणों के लगने पर कृष्ण जी कृश होकर धराशायी हो गए तथा और सब गोप यहाँ-वहाँ दौड़ने-भागने लगे[६]। क्षण भर के लिए पराजय-सी अनुभव करने वाले गोपियों की स्थिति तो बड़ी विचित्र हुई, किन्तु राधा ने उस समोहन बाण

---

१ "गोपनु बल लखी, सावध थई सखी, चापनी वींच भरी श्राम मारे।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ १०६, पद ४६।

२ "शरतणा मारथी, हारिया महारथी......
धरी शीरना केश, करी विपरीत वेश ..."
— वही; पृष्ठ ११०, पद ५०।

३ "मारती फरी फरी, कुच करमा धरी, हरितणी मील करी तार-तार।"
— वही; पृष्ठ ११०, पद ५०।

४ "तेम थई ओपिका, कृष्ण पर गोपिका, चाड पाडे निज बल दाखे।
अक पर वामा ले हस्त धरी आमले, पाद ग्रही कुच साथे अफाले,
नरसैं धरी चर्णने, भीत तो मर्णने, शर्ण या राधिका दुःख टाले।"
— वही; पृष्ठ १११, पद ५२।

५ "अभ्र छेदीने आदित्य दखो
तेम कृष्ण परमातमा, भेदीने आतमा, तीरधरी वीर वरसे रे हरषे
....
पडी गई बालिका मल्ल ज मालिका . ..."
— वही; पृष्ठ १११, पद ५३।

६ " .. ...."धरा तजी सिंहणी पेर गाजी;
तीर धरी धीरमा, मूकयुं आहीर मा, वीर नरसैं गयो कंइक लाजी;
उर मांहि लागता उन्मादन वागता, भागता आहीरा आही ताही,
कृश थई कृष्णजी त्यागी दई तृष्णजी, भ्रात आदि पड्या महीनी माही।"
— वही; पृष्ठ १११, पद ५४, ५५।

से अपने को युक्तिपूर्वक बचाया[1]। कृष्ण तब भी किसी प्रकार राधा को गिरा कर उन पर कमल पर के भौंरे की तरह से बैठ गए।

इस प्रकार रति-युद्ध मे कभी कृष्ण और कभी राधा जीतते हुए दिखाई देते हैं, किन्तु अन्त मे राधा ने शोषण करने वाला बाण चलाया, जिससे कृष्ण मूर्छित हो गए और अन्य गोप गिरने या भागने लगे[2]। बलराम भी कृष्ण को लेकर भागने लगे[3]। राधा तथा गोपियो ने उनका पीछा किया, किंतु वे गाँव की सीमा मे चले गए। राधा तथा गोपियो की इस विजय पर आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। अब राधा और गोपियाँ भी विजय-वाद्यो से निनाद करती हुई अपने घरो को लौटती हैं।

इस 'सुरत-संग्राम' रचना मे नरसिंह ने शृङ्गार मे वीर रस की सामग्री प्रस्तुत की है। सूरदास ने भी शृंगार रस मे वीर रस का आभास देनेवाले कुछ पद लिखे हैं। उन अल्प पदो मे भी सूर ने अपनी कल्पनाशक्ति का अद्भुत परिचय दिया है। 'सुरत-संग्राम' मे मौलिक प्रसग-योजना के अतिरिक्त कोई विशेष कल्पना-शक्ति या काव्य के भीतर परिचय नही मिलता। अपने शृंगार वर्णन को, एक स्थान पर कृष्ण को परमात्मा कह कर[4] उन्होने अलौकिक और उदात्त रूप दे दिया है। अनन्त सुन्दर की लीला के रूप मे ही यह वर्णन है। अपने एक दार्शनिक पद मे उन्होने राधा को भक्ति कह कर शृंगार-लीला को लौकिक होने से बचा कर दिव्यता प्रदान की है[5]। सुरत-सग्राम के अंत मे एक पद मे उन्होंने स्पष्ट भी कर दिया है कि सासारिक दृष्टि-कोण से, ऐसा वर्णन करना बहुत बडा दोष माना जा सकता है, किंतु ऐसे ही गान द्वारा हमारी ईश्वरवदना होती जाती है[6]। आसक्तियो के बीच मे रह कर अनासक्त

---

१ "न'रीवा कोपथी, हारिया गोपति ''
"धरीने संमोहन, उठीआ मोहन, मारिय शर नारीने बल थी,
कंइ पडी वारणे, कइ पड़ी धारणे, रािये वाराने रारयु कल थो।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ११२, पद ५५।

२ "आवी राधा त्यहा, शोषण साधी मारयु,
....
शोषणे शुक थई, गोप गया कइ कइ, कइक तो नासीने धर्या पद्दता।"
— वही; पृष्ठ ११४, पद ६२।

३ "कृष्ण पाछल धरी, ओढो पक्ति करी, राम, वहन करी श्याम नाठा।"
— वही; पृष्ठ ११४, पद ६४।

४ "तेम कृष्ण परमातमा, भेदीने आतमा, तीर धरी नीर वरसे से हरषे"
— वही; पृष्ठ १११, पद ५३।

५ "भक्ति ते राधिका, मुक्ति जशोमती. .. ''
— वही; पृष्ठ ४८३, पद ३५।

६ "छे दोष दरियाव, पण गायन भाव, वरिये भाई कृष्ण नमन बहुए।"
— वही; पृष्ठ ११७, पद ७२।

रहना ही ईश्वरोन्मुखता है यही प्रच्छन्न उपदेश संकेतरूप से इसमें है। एक और पद में उन्होंने इस बात को स्पष्ट रूप से कह दिया है कि सभी सांसारिक व्यवहारों को निभाते हुए विकारों में निर्लिप्त रहना तथा सभी को समदृष्टि से देखना ही सच्चा वैराग्य है[1]।

रस की दृष्टि से 'सुरत-संग्राम' नरसिंह की श्रेष्ठ रचनाओं में से है। शृंगार रस के साथ वीर रस भी वर्णित है यह एक विशेषता है। आलंबन स्वरूपा राधा का आश्रय-रूप कृष्ण का, आलंबन की चेष्टाओं के रूप में उद्दीपन, विभाव इत्यादि शृंगार रस के सभी तत्त्व रस के पूर्ण परिपाक में सहायक हुए हैं। इसमें नरसिंह ने कामशास्त्र के भी अनेक तत्त्व और भेद सन्निहित कर दिये हैं। गोपीभाव से कृष्ण-भक्ति में लीन रहने वाले नरसिंह को यह विश्वास हो गया था कि 'दिव्य द्वारिका' में उन्हें स्वयं भगवान् से वहाँ की शृंगार-लीलाओं को निर्भय होकर निःसंकोच रूप से गान करने का आदेश मिला था। जयदेव से प्रभावित होने के कारण भी नरसिंह में इतनी घोर शृंगारिकता पाई जाती है।

सूरदास ने भी शृङ्गार रस में वीर रस का अत्यंत सुन्दर वर्णन किया है[2]। भौंहों के धनुष, नेत्रों की तिरछी चितवन के बाण, दन्तज्योति की करवत, नखक्षत के भाले, इत्यादि वीररस की सम्पूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। यहाँ सूर वीर रस का आभास मात्र देकर नहीं रह जाते। वीर रस के भाव को अंकुरित करके उसका दूर तक इस प्रकार विकास करते हैं कि वह रस नहीं, तो रसवत कोटि तक तो अवश्य ही पहुँच गया है।

इस प्रकार के एक और पद में सूर ने अपनी अद्भुत कल्पनाशक्ति का अनोखा परिचय दिया है। राधा और कृष्ण के रति-संग्राम में, विजय पाने पर राधा सम्मुख

---

१ "संसार व्यवहार सर्वे साच विये, विकार थी वेगला रहिये;
सर्वे भूत समदृष्टे पेखे, तेने वैरागी कहिये।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ १२, पद २८।

२ "रूपे संग्राम रति खेत नीके।
एक तैं एक रनवीर जोधा प्रबल, मुरत नहिं नैकु अति सबल जी के।
भौंह कोदंड, सर नैन, आलुपि काम, छूटति मानों कटाच्छनि निरारैं।
हसनि दुज-चमक करवरनि लौहे झलक, नखनि-छत-घाव नेजा सम्हारैं॥
पानपट टारि, कंचुकी मोचिन करन, कवच-सन्नाह सो छूटे तन तैं।
भुजा भुज धरत मनु द्विरद सुंडनि लरत, उर उरनि भिरे दोउ छुरे मन तैं॥
लटकि लपटानि मानों सुभट लरि परे खेत, रनि सेज, मचि रति न कीन्हे।
सूर प्रभु रसिक सिय राधिका रसिकिनी, कोक-गुन सहित सुख लूटि लीन्हे॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ १०५-१०६, पद २०४०।

रहने वाले, डट कर युद्ध करने वाले अगों को तो पुरस्कृत करती है और विमुख रह कर कायरता दिखलाने वाले केशो को बन्धन का दड देती हैं। विजयोत्सव के उपलक्ष्य मे पुरस्कार पाने वाले अग हैं — हाथ, भुजा, नेत्र, नासिका, ललाट, अधर तथा वक्षस्थल जिन्हे क्रम से कगण, आभूषण, काजर, नथ, तिलक, बीडा और हार के पारितोषिक मिले¹। सूर की इस कल्पना से मन इतना मुग्ध हो जाता है और हृदय इतना प्रसन्न हो जाता है कि नत्रो के आगे से यह प्रस्तुत किया गया शृगार-चित्र हटता ही नही है। सूर का यह काव्य-कौशल कितना चकित कर देने वाला है कि एक ओर तो शृगार-सज्जा के अगीभूत आभूषणों का वर्णन कर दिया गया और दूसरी ओर विजयोत्सव के उपलक्ष्य मे उपहारो का वितरण भी करा दिया। नरसिंह ने 'सुरत-सग्राम' मे एक पूरे प्रसग की मौलिक योजना अवश्य की, किन्तु वे इस प्रकार की अद्भुत कल्पनाशक्ति का परिचय नही दे सके हैं। सूरदास इस प्रकार के रति सग्राम के अतगत वीररस का आभास देने वाले अपने इने गिने पदो मे भी पाठक के चित्त पर एक ऐसा स्थायी प्रभाव डालते हैं जो नरसिंह अपनी पूरी, 'सुरत-सग्राम' रचना से भी नही डाल सकते हैं।

सूर के प्रेम की स्वाभाविकता

सूरदास का शृगार वर्णन कथाक्रम के निर्वाह के कारण विशेष स्वाभाविक जान पडता है। नरसिंह ने बाल्यावस्था से यौवनावस्था तक के प्रेम के विकास के चित्र प्रस्तुत नही किये हैं। उन्ही ने 'रास सहस्र पदी' मे रासलीला का तथा शृगार माला' वसत ना पद, हिंडोलाना पद, चातुरी छत्रीसी, चातुरी षोडशी इत्यादि में कृष्ण और राधा एव गोपियों के सयोग शृगार का ही चित्रण किया है प्रेम के विकास का चित्रण कही नही किया। सूर ने तो बाल क्रीडा के सखा सखियो को ही यौवन-क्रीडा के सखा-सखियो के रूप मे चित्रित किया है। उनका प्रेम 'लरिकाई को प्रेम' है, बाल्यावस्था से अपने आप विकसित होने वाला सहज प्रेम है जो आसानी से क्या, किसी भी स्थिति मे छूटता ही नही। गोपियों के मध्य मे रहने वाले अनत सुदर कृष्ण मे इतना आकर्षण दिखलाया गया है कि गोपियो का उनसे प्रेम हो जाना और प्रकृति

---

१ "नदुरि फिरि राधा सजति सिंगार।
मनहु देति पहिरावनि अग, रन जीते सुरत अपार॥
कटितट सुभट हि देति रसन पट, भुज भुषन, उर हार।
कर कवन, काजर, नकबेसरि, दीन्ही तिलक लिलार॥
बीरा विहसि देति अधरनि कौ, सन्मुख सहे प्रहार।
सूरदास प्रभु के जु विमुख भए, बाधति कायर बार॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६६३, पद २८०१।

की सुंदरता के मध्य में उस प्रेम का विकसित हो जाना स्वाभाविक प्रतीत होता है। बालक्रीडा यौवनक्रीडा में कब परिवर्तित हो जाती है इसका पता तक नहीं चलता — इतना यह सब स्वाभाविक जान पड़ता है।

सूर ने राधा-कृष्ण का मिलाप बाल्यावस्था में इस प्रकार कराया है कि "खेलते खेलते कृष्ण हाथ में भौंरा और डोरी लिए ब्रज की गली से निकल कर यमुना के तट पर गए। उनके शरीर पर पीतांबर, मस्तक पर मोर मुकुट तथा कानों में कुंडल शोभा पा रहे थे। इनके सुन्दर शरीर पर चन्दन की खौर लगी थी। वहां अचानक उन्होंने नीलवस्त्र परिधान की हुई गौर-वर्ण छविमयी राधा को देखा जिसके नेत्र विशाल थे और जिसने भाल पर कुंकुम लगाया था। कृष्ण उसे देखते ही रीझ गए उनके तथा राधा के नेत्र एक-दूसरे के प्रति ठगे-से देखते रह गए[१]। उन्होंने राधा से पूछा, "तुम कौन हो गोरी ? किसकी बेटी हो ? ब्रज की गली में तो तुम्हें नहीं देखा।" राधा उत्तर देती है — "हम ब्रज में क्यों आएँगी ? अपने ही घर के द्वार पर हम खेलती रहती हैं क्योंकि सुना है, ब्रज में तो नंद का लड़का दही मक्खन की चोरी करता है।" कृष्ण कहते हैं — "तुमसे हम क्या चुरा लेंगे ? चलो, हमारे साथ खेलने, संग मिल कर खेलेंगे। रसिक शिरोमणि कृष्ण ने बातों में भोली राधा को 'भुरा' लिया[२]। दोनों ने अपने मन में प्रथम स्नेह का अनुभव किया और नेत्रों में ही बातें करके गुप्त प्रेम को प्रकट किया। कृष्ण ने कहा — "हमारे यहाँ ब्रज में खेलने आना और नन्द के गृह द्वार पर मुझे पुकार कर बुला लेना — मेरा नाम

---

१ "खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर बाँधे, हाथ लिए भौंरा चक डोरी॥
मोर मुकुट कुंडल स्रवननि वर, दसन-दमक दामिनि-छवि छोरी।
गए स्याम रवि तनया कै तट, अंग लसति चंदन की खोरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी॥
संग लरिकनी चलि इत आवति, दिन-थोरी अति छवि तन-गोरी।
सूर-स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४६६, ४६७, पद १२६०।

२ "बूझत स्याम कौन तू गोरी ?
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी॥
काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि चोरी।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी॥
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४६७, पद १२६२।

कान्ह है[1]।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर ने राधा और कृष्ण के प्रेम का जो चरम उत्कर्ष दिखलाया है उसकी उत्पत्ति और उसके विकास को अत्यंत स्वाभाविक और सहज रूप मे चित्रित किया है। नरसिंह की रचनाओं के परिवेश मे इस प्रकार के चित्रण की संभावना ही नही है। वे तो राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रौढ़ रूप का चित्रण करने मे ही कृतकृत्यता अनुभव करते हैं। सूर ने खेल ही खेल मे राधा-कृष्ण के प्रेम को सहज रूप से उत्पन्न करा दिया है, जो संयोग की स्थिति में उभयपक्ष में सम बतलाया गया है, किन्तु कृष्ण के मथुरा जाने पर विषम रूप मे वर्णित किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने यथार्थ ही कहा है कि "सूर का संयोग-वर्णन एक क्षणिक घटना नही है, प्रेम-संगीतमय जीवन की गहरी चलती धारा है, जिसमे अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कही कुछ दिखाई नही पड़ता। राधा-कृष्ण के रग-रहस्य के इतने प्रकार के चित्र सामने आते हैं कि सूर का हृदय प्रेम की नाना उमगो का अक्षय भडार प्रतीत होता है।...प्रेम नाम की मनोवृत्ति का जैसा विस्तृत और पूर्ण ज्ञान सूर को था वैसा और किसी कवि को नही[2]।"

कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन

सूर और नरसिंह दोनो के शृङ्गार रस के सयोग पक्ष की तुलना करने पर हम देखते हैं कि सूर ने जितने विस्तार से आलवन तथा आश्रय की सुन्दरता का वर्णन किया है, उतने विस्तार से नरसिंह ने नही किया। नरसिंह ने कही इस प्रकार का गोपी मुख से यो वर्णन किया है कि "मेरे नेत्र उन्हे देखते हुए तृप्त ही नही होते इतनी मैं मोहित हो गई हूँ। मैंने अपनी सुध-बुध खो दी है और चित्रवत् हो गई हूँ। कमलवदन कृष्ण अपने विशाल नेत्रो, ललाट पर की सुहानी तिलक रेखा, मस्तक पर के मोर मुकुट, हृदय पर के हार तथा कटितट पर सुहाने वाली किंकिणी के कारण अत्यत सुन्दर प्रतीत होते हैं[3]।" हरिजी का रूप कोटि कामदेवो के समान है और उनकी

---

१ "प्रथम सनेह दुहुनि मन जान्यौ।
नैन नैन कीन्ही सब बातैं गुह्य प्रीति प्रगटान्यौ॥
खेलन कबहु हमारैं आवहु, नंद सदन ब्रज गाउ।
द्वारैं आइ टेरि मोहिं लीजौ, कान्ह हमारौ नाउं॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ ४६७, पद १२६२।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, "त्रिवेणी", पृष्ठ ८८-८९।

३ "तृप्त न थाय नयणा मोरा, नीरखो मोह पामी मखी;
विसरी सुध-बुध सर्व सजनी, जाणे चित्रामरा आलखी।
कमलवदन, विशाल लोचन, तिलक रेखा सोहामणी;

वाणी अमृत के समान है। उनके चंचल नेत्रों ने मेरे मन को हर लिया है[1]।" एक स्थान पर नरसिंह कृष्ण का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि इन्होंने मस्तक पर मोरमुकुट धारण किया है, कानों में मकराकृत कुंडल धारण किये हैं, शरीर पर पीताम्बर धारण किया है जिसके कारण वे मेघ-सदृश प्रतीत होते हैं। इनके ललाट पर केशर का तिलक है तथा कंठ में गुंजा का हार है[2]। हृदय पर माला तथा कानों में कुंडल धारण किये हुए पीताम्बरधारी कृष्ण अति रूपवान दिखाई देते हैं[3]। नरसिंह ने कृष्ण के नेत्रों के लिए वर्णन किया है कि उनके लोचन इतने सुन्दर हैं कि उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती[4]। उन नेत्रों में अद्भुत आकर्षण और जादू भरा है[5]। नरसिंह ने अनेक स्थलों पर कृष्ण को पतला और सुंदर वर्णित किया है[6]। गुजराती के लोक-साहित्य में और कृष्ण-साहित्य में नायक छरहरे बदन का (पातळियो) ही वर्णित किया गया है। नायिका को तन्वंगी वर्णित करना तो परंपरागत है, किन्तु नायक को भी छरहरे बदन का वर्णित करना गुजराती साहित्य की अपनी निजी विशेषता है। नरसिंह की राधा और गोपियाँ 'पातळिया' की प्रीत के लिए पागल रहती हैं। नरसिंह ने कृष्ण को

मस्तक मुगट उर हार लहेके, कटलिट छेहे किंकणी,
रूपेरा सुंदर वर ए शामलीओ जी.................."

— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ११६, पद ३।

१ "हारजीनु रूप ते कोटिक मयणथी, मुख थी बोले ते अमृत वयण जी,
मन हरी लीधुं ते चंचल नयण जी।"
— वही; पृष्ठ १२०, पद ४।

२ "मोर मुकुट वाहाले शिर धर्यो, मकराकृत कुंडल वर्ण;
पीताम्बर वाहाले पेहेरियुं, जाणे उपमा मेघज वर्ण।
केसरना तिलक शिर धर्या, पेहेर्यो गुंजाना हार;
— वही; पृष्ठ १५५, १५६, पद १।

३ "पीतांबर नी पलवट वालो, उर लेहेके माला;
कानबीच कुंडल ललके, दीसे रूपाला॥"
— वही; पृष्ठ २५५, पद ६७।

४ "लोचन एना रे न तुले कोई आवे"
— वही, पृष्ठ २७४, पद ३३।

५ "लोचन माहे काय कामण भरियुं"
— वही; पृष्ठ २७४, पद ३५।

६ "मीत धरी पातलिये म्हारे ....."
— वही; पृष्ठ २६६, पद १८।

मधुभापी के रूप मे वर्णित किया है[1]। एक स्थान पर राधा-कृष्ण के सुन्दर नेत्रो को वाणो की उपमा देती है[2]। कृष्ण को अनेक बार छैला-छबीला कहा गया है[3]। सलोने नेत्रो वाले कृष्ण कोटि कामदेवो के समान सुन्दर हैं। उनमे पुरुष के बत्तीसो लक्षण है तथा कोटि वर्ष के आयु होने पर भी नव यौवन से पूर्ण हैं[4]। मस्तक पर मोरमुकुट तथा कानो मे कुडल धारण किये हुए पीताम्बरधारी कृष्ण के अधर प्रवाल के समान लाल हैं। ऐसे रूपवान कृष्ण की सुन्दरता देखने के लिए मुनिजन भी दौडते हैं[5]। एक स्थान पर कोई गोपी कहती है कि "प्रियतम के नेत्र बडे अनियारे हैं। उन नेत्रो मे लाल रेखा है। यदि तुम्हारा मन होता हो तो मुझे कोई आपत्ति नही, तुम उन नेत्रो तथा उनके भीतर की लाल रेखा को घूंघट से देखो। उन नेत्र-वाणो से होने वाली पीडा का उपचार यही करना होगा कि उन्हे हृदय से लगाना होगा[6]। कृष्ण के सुन्दर मुख पर गोपियाँ निछावर

---

१ "मीठ्डा बोला नाथ रे, आवोने मीठडा बोला नाथ।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ २८८, पद ११३।

२ "हरीना नेण सलुणा वाण, हृदयामा वाग्या रे।"
— वही, पृष्ठ ३०६, पद १५२।

३ "भल्या छेलछबीला नदना रे, तु गीत मधुरा गाय।"
— वही, पृष्ठ ३१४, पद १७०।

४ "नेण सलोणा शामलीया पर तन मन धन वारूँ रे।
कद्रप कोट सरीखो सुदर, पुरुष लछण बतीसे रे,
नवजोवन जादवरायजी हे जेवो क्रोट वरीसे रे।"
— वही, पृष्ठ ३१६, पद १८०।

५ " .. .. मस्तक मुगट सोहाम्णो रे।
काने कुडल झलहले, अधर, प्रवाले रग राता रे।
पीताबर पेहेयु श्यामअगे, जेने जेवा मुनिजन धाता रे।"
— वही, पृष्ठ ३२२, पद १९१।

६ "अणियाला लोचन वहालाजीना, माहे रातलडी रेख रे,
जो मन माने तहारु राजी मुज्नु, घुघटडे रहा पख रे।
कालेजना कनावला रे, जम वाण छूटे रे,
एक आश्चर्य कहु सुणरे सजनी तन साले घट पीडे रे।
एक उपाय कहु सुण बेहनी, जेम भोगे अग पीडा रे,
नरसैंयाना स्वामीने मलीने, रुदया सरसो भाड रे।"
— वही, पृष्ठ ३२५, ३२६, पद २०१।

हो जाती हैं[1]। कृष्ण के स्मित ने उन्हें मोहित कर लिया है[2]। उनकी मीठी दृष्टि ने उन्हें मुग्ध कर दिया है[3]। राधा-माधव की आरती में भी नरसिंह ने कृष्ण के सौंदर्य का संक्षिप्त ही वर्णन किया है, यथा — मस्तक पर मोरमुकुट और कंठ में वनमाला सुहाती है तथा कानों में कुंडल चमकते हैं[4]।

नरसिंह के ये सभी वर्णन अत्यंत संक्षिप्त हैं। उस अनंत सुन्दर के रसिक-रूप के दर्शनों के लिए मुनिजन भी आतुर हैं ऐसा कह कर नरसिंह ने अपनी शृङ्गार-भावना अनंत को अर्पित कर दी है। 'पातळिया' कृष्ण की वेषभूषा का, कृष्ण के मोहक स्मित का, कृष्ण की मीठी दृष्टि का, अनियारे और बाण सदृश अनुपम नेत्रों का, कमलवदन का, करोड़ों कामदेव सदृश उनके रूप का, उनके मधुभाषी स्वरूप का तथा उनकी छैल छबीली प्रकृति का वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी हृदयस्पर्शी और सरल है इसमें कोई संदेह नहीं।

सूरदास ने कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन बार-बार और अनेक प्रकार से किया है। इन वर्णनों में उन्होंने अपनी अपूर्व कल्पना शक्ति का अद्भुत परिचय देते हुए अनोखे अलंकारों का प्रयोग किया है। गोपियाँ कृष्ण के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कहती हैं कि "देखो माई, नंदनंदन के मुख-सौन्दर्य को इनके अंग अंग की शोभा देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो सूर्य और चन्द्र उदित हो गए हों। इनके सौंदर्य के आगे स्मर-देवता भी लज्जित हो जाते हैं। इनके नेत्रों में खंजन, मीन तथा हरिणी की सी चंचलता, कमल की सी सुन्दरता तथा भौंरे की सी कालिमा है। कानों में मकराकृति कुंडल ललित होते हैं। नासिका कीर के समान, ग्रीवा कपोत के समान तथा दाँत दाड़िम के दानों के समान सुन्दर हैं[5]। गोपियाँ कृष्ण की सुन्दरता का सार कहती

---

१ "सुंदर मुख शामलाया करू, वारी वारी जाउं रे।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ३२०, पद, २१६।

२ "मरकलडे मोहनने मोहिली, नायलु चित्त ते चळियु रे।"
— वही, पृष्ठ ३४६, पद २६१।

३ "मोरडी तायरी मीठडी "
— वही, पृष्ठ ३४३, पद २६८।

४ "मोर मुकुट मस्तक धर्यो, कंठे सोहे वनमाळा रे,
श्रवणे कुंडल झळकता, तगे सोहे मजबाला रे।"
— वही, पृष्ठ ४२७, पद ५४१।

५ "नंद-नंदन मुख देखौ माई।
अंग अंग छवि मनहु उये रवि, ससि अरु समर लजाइ॥
खंजन मीन भृंग वारिज, मृग पर दृग अति रुचि पाइ।

है[१]। वे उनके चचल और विशाल नेत्रो की इधर-उधर देखती हुई दृष्टि मे मन को गिरवी रखने की ताक का भाव अनुभव करती हैं। उनके अधर अनुपम हैं, नासिका सुन्दर है, कपोल चारु है और कानो पर के कुडल ललित हैं। उनकी मुख-मुस्कान अतीव सुन्दर है तथा अनेक मीठे-मीठे बोल मधुरतम हैं[२]।

कृष्ण की सुन्दरता का इससे मोहक, सुन्दर और सरस वर्णन क्या हो सकता है जब कि एक गोपी कहती है—इनकी सुन्दरता का क्या वर्णन करूँ ? क्षण-क्षण मे इन कमल नयन के अगो की सौन्दर्य-शोभा परिवर्तित हो जाती है, विशेष मनोहर हो जाती है[३]। तथा राधा कहती हैं—निमिष-निमिष मे वह अनत रूप और वह असीम छवि मे परिवर्तित हो जाते हैं[४]। क्षण-क्षण मे नवनूतन रूप धारण करने वाली कृष्ण की रमणीयता का यह वर्णन बडा ही मनोरम है। अनत सुन्दर कृष्ण मे ऐसा सौन्दर्य होना स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी देखा जाय तो प्रेमी या प्रेमिका को अपना प्रियपात्र नित्य नूतन तथा अतीव सुन्दर प्रतीत होता है। कृष्ण के इस सौदर्य को देखते-देखते गोपियाँ सुध-बुध भी खो देती हैं। कोई उनके कुडलो की आभा को देख कर ही बिक जाती हैं। कोई उनके सुन्दर कपोलो को देख कर ही मुग्ध रह जाती हैं। इन गोपियो को अनत सुन्दर से आकृष्ट होने पर अपने शरीर की या अपने घर की सुध ही नही रह जाती। कोई सुन्दर नासिका

स्रुति-मडल कुडल मकराकृत, बिलसत मदन सदाई ॥
नासा कीर, कपोत ग्रीव, छवि दाडिम दसन चुराई।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४८२—४८३, पद १२४४।

१ "देखौ माई सुदरता को सागर',
—वही, पृष्ठ ४८३, पद १२४६।

२ "बने बिसाल अति लोचन लोल।
चितै चितै हरि चारु बिलोकनि, मानौ मागत हैं मन ओल ॥
अधर अनूप, नासिका सुदर, कुडल ललित सुदेस कपोल।
मुख मुसुक्यात महा छवि लागति, स्रवन सुनत सुठि मीठे बोल ॥"
—वही, पृष्ठ ४८४, पद १२४८।

३ "सखी री सुदरता को रग।
छिन छिन माहि परति छवि औरै, कमल नैन कै अग ॥
परिमिति करि राख्यौ चाहति हैं, लागी डोलति सग।
चलत निमेष बिसेष जानियत, भूली भई मति भग ॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ ४८७, पद १२५८।

४ "निमिष निमिष वह रूप न वह छवि, रति कीनै जिय जानि।
इकटक रहति निरतर निसिदिन, मन बुधि सौं चित सानि ॥
एकौ पल सोभा की सींवा, सकति न टर मह आने।"
— सूरसागर', पृष्ठ ८६५, पद २४७०।

देखती रह गई, तो कोई अधरों की शोभा देख कर अवाक् रह गई। कोई दन्तज्योति पर ही मुग्ध हो गई तो कोई चारु चिबुक की द्युति को ही देखती रह गई[1]। सूर के ये सभी वर्णन अनन्त सुन्दर कृष्ण का एक मनोरम चित्र हमारे हृदय पटल पर अंकित कर देते हैं। सूर की नवोन्मेष शालिनी कल्पना इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होती, वह कृष्ण के एक एक अंग को ले कर भी अनेक पदों का निर्माण करवाती है। नेत्र, भुजाएँ, रोमावली, कटितट पर शोभित पीताम्बर इत्यादि का काव्य-कौशल-युक्त वर्णन इन्होंने अनेक पदों में किया है। यह एक ऐसी विशेषता है, जिसका नरसिंह की रचनाओं में प्राय अभाव-सा है।

संभोग वर्णन

सूर और नरसिंह दोनों ने उदात्त शृङ्गार के रूप में संभोग का वर्णन भी किया है। यह अद्वैत का, एकत्व का प्रतीक बन कर आया है। लौकिक वर्णनों के द्वारा *अलौकिकता तथा आध्यात्मिकता की ओर संकेत किया गया है। सूरदास इस प्रकार* के वर्णन में भी कल्पनाशील रहे हैं, जब नरसिंह कामशास्त्रवश ही प्रतीत होते हैं। एक पद में सूर कहते हैं कि रस भरे हुए नवल किशोर कृष्ण और नवल नागरी राधा एक-दूसरे पर भुजाएँ डाल कर तमालतरु के नीचे उमंग के साथ क्रीडा करते हैं। एक दूसरे के हृदय से दोनों या लिपटे हुए हैं जैसे स्वर्ण में मरकतमणि जडा गया हो। कोटि कामदेव भी निछावर कर दिये जायँ ऐसी अनुपम इनकी रसकेलि थी। राधा और कृष्ण की ऐसी जोडी पर सूरदास बलिहारी जाते हैं[2]।

---

१ "स्याम अंग जुवति निरखि भुलानी।
कोउ निरखति कुंडल की आभा, इतनेहि माँझ बिकानी॥
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यौं पानी।
देह गेह की सुधि नहिं काहूँ, हरषत कोउ पछितानी॥
कोउ निरखति रही ललित नासिका, यह काहू नहीं जानी।
कोउ निरखति अधरनि की सोभा, फुरति नहीं मुख बानी॥
कोउ चकित भई दसन चमक पर, चकचौंधी अकुलानी।
कोउ निरखति दुति चिबुक चारु की, सूर तरुनि बिततानी॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४८८, पद १२६२।

२ "नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया॥
क्रीडा करत तमाल-तरुन तर स्यामा स्याम उमगि रस भरिया।
यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर बृषभानु-कुँवरिया॥
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५०२, पद १३०६।

इसमें गौरवर्ण राधा से लिपटे हुए श्यामवर्ण कृष्ण की स्वर्ण मे जड़े गए मरकत मणि से तुलना सूर की उच्च कल्पना-शक्ति का तथा अलकार-प्रयोग-कौशल का परिचायक है। ऐसे सुन्दर वर्णन सूर मे पग-पग पर मिलते हैं। नरसिंह भी 'सुरत-सग्राम' मे एक स्थान पर कहते हैं कि जैसे भौंरा कमल के मकरद का पान करने उसे खीचता है वैसे ही हरि हरिवदनी राधा को खीचते हैं[1]। जितनी सुदर उपमा है, उतना ही सुदर 'हरि हरिवदनी' मे यमक का प्रयोग भी है। नरसिंह ने एक पद मे राधा के मुख से सभोग-सुख का वर्णन कराया है। इस प्रकार के वर्णन अनेक बार अनेक ढग से किये गये हैं। इस पद मे राधा ललिता से कहती हैं—'सजनी, सुरत-सुख का वर्णन करते हुए मुझे लज्जा अनुभव होती है। तब भी जो आनद और रस मैंने अनुभव किया उसे सुनो।......रस का भोगी व्रजनाथ श्याम मुझे वन मे मिला। उस कामी ने मेरा हाथ पकडकर कहा—'अच्छा किया, जो तुम आ गई। चलो, अब हम काम क्रीडा करें।' घनश्याम के नेत्रो मे अमृत था और मैं हर्ष से फूली न समाई। उस कामी ने मेरे हृदय मे काम जगाया। हृदय के प्रेमावेग से कचुकीवन्द अपने आप टूट गए और इसका तो पता भी न चला कि मेरा नीलाम्बर कटि से कब खिसक गया। मेरे हृदय मे प्रेम का सागर उमडने लगा और काम इतना अत्यधिक बढ गया कि मैं उस कामी के गले से जा लगी, हृदय से जा मिली। मेरा चित्त चलित हो गया था। मेरे प्रिय ने भी मुझे उत्साह तथा उमग से गले लगा कर विविध विलास कराये। उस समय मैंने गोवर्धनधारी कृष्ण को अपने उर पर धारण कर लिया। कृष्ण ने आलिगनो और परिरभणो से मेरे अगों को दबाते हुए हम दोनों के अतर को मिटा कर एकत्व का सुख दिया। मेरे प्रिय श्याम के सुकुमार अगो को मेरे पुष्ट और कठोर स्तनों ने आलिगन के समय अवश्य कष्ट दिया। जब अधरो का दर्शन करते हुए कपोलो पर चबन करते हुए रसिक शिरोमणि कृष्ण रति-सग्राम मे विजयी हुए तब कामदेव ने अपने अभिमान को भुला दिया। आज के सुख की बातें मैं तुझे, हे सखी, सक्षेप में ही कह रही हूँ। पृथ्वी पर जा कर नरसिंह इसका विस्तार-पूर्वक वर्णन करेगा[2]। वास्तव

---

१ "भृग अरविंदने, चूचे मकरदने, हरि हरि वदनीने तेम ताणे।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ११०, पद ५७।

२ "सजनी सुरतनु सुख जेहजी, साभल तुजने कहुँ तेहजी,
जे अनुभव्यो रस आजजी, मुजने आवे लाज जी।
....
श्याम संजोगी रसनो भोगी, वनमा मलयो व्रजनाथ।
कर ग्रह्यो मारा कामीए के भले आवी मामिनी।
आव अबला आपण बेहु क्रीडा कीजे कामनी।

में नरसिंह ने शृंगार लीला का अनेक पदों में अत्यंत विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

गोवर्धनधारी कृष्ण को भी अपने वक्षस्थल पर धारण करने की राधा की उक्ति विशेष महत्व रखती है। गोवर्धन को भी धारण कर लेने वाले अनंत सामर्थ्यवान कृष्ण को भी राधा ने अपने प्रेमपूर्ण हृदय पर धारण कर लिया यों कह कर नरसिंह मेहता कृष्ण से भी राधा को और प्रेम को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। नरसिंह ने इस प्रकार का वर्णन अधिक खुल कर और स्वाभाविक रूप में कर दिया है। इस प्रकार के शुद्ध प्रेम-मिलन में वे अलंकार प्रयोग से मानो बचना चाहते हैं। चातुरी षोडशी और चातुरी छत्रीसी में उन्होंने राधाकृष्ण के प्रेम-समागम का विशेष खुल कर नग्न शृंगार-वर्णन किया है। इन दोनों रचनाओं में रसिक शिरोमणि कृष्ण, ललिता को दूती बना कर रूठी हुई राधा को मनाने के लिए भेजते हैं। राधा के रूप शृङ्गार का तथा अभिसारिका रूप राधा के सौंदर्य का वर्णन भी अत्यंत मनोहर है। राधा मान तज कर, नंदकुमार से मिलने के लिए, मन में हर्षित हो कर सोलहों प्रकार के शृङ्गार-सज्ज करने लगी। स्नान करके, अंगों को केशर तथा चंदन से चर्चित करके सौरभ युक्त हो कर राधा ने चंपकवर्ण वस्त्र परिधान किये। इस वस्त्र परिधान से उनके अंगों की शोभा और बढ़ी। कुरंग सदृश चंचल नेत्रों वाली राधा घूंघट में से मधुर मुस्कान बिखेरती रही। नेत्रों में काजर लगा कर तथा ललाट पर बिंदी लगाकर राधा

अमृत एना नयनमा, एवो ए घनश्याम ;
हु अंग फूली थइ घेली, कामाए जगाड्यो काम।
कमण ते चोला तण, उर बले तूट्या तेह,
मै नीलांबर नव नाख्युं, वगी थका दर्शाव्युं तेह।
प्रेमतणो सागर उलट्यो, वाध्यो काम अपार,
जई कामा ने कंठे वलगा, मारु चित्त चाल्युं ते ठार।
उछंगे लीधी वालमे, विविध विलास्या आदरि,
जेणे गोवर्धन कर धर्यो, ते में राखियो उर धरी।
आलिंगन दीधुं शामले, करे भीड्युं तन,
अंतर टाली एक कीधी, मनाव्युं ते मारु मन।
श्याम सुकोमल अंग पीयुनुं, कठण कुच फल सादेरा,
नाथजीनी बाथ भरतां, रूड्या कुचफल बेहेरा।
चुंबन चारु कपोल मरमी, अधर दशी करे पान,
रतिरति रणजोध जीया, मदने ते मूक्यु मान।
माजना गुण शण शामा, सगेवे बहु तुज सुंदरी,
गिरधार वेहनो नरसैयो, पूरण कटेरो भवतरी।"

— इच्छाराम सूर्यराम देसाई,
'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह'
पृष्ठ १४७-१४८, पद ११।

ने शीशफूल, कर्णफूल, नथ इत्यादि आभूषण धारण किये। उनकी चोटी में तो मानो नाग ही लिपटा था। उनके लाल अधर तथा गुदना गुदाये हुए गाल अत्यंत शोभा पा रहे थे। कंठ में मुक्तामाला, हृदय पर हार, करों में कंगन, हाथ में चूड़ियाँ, मुख में पान, चरणों में नूपुर, बिछुआ इत्यादि धारण करके वक्षस्थल पर कस कर चोली बाँध कर राधा हंसगामिनी बन कर चली। उनकी कटि मानो केसरि-लंक थी तथा मुख मानों मयंक था। हृदय पर दो कमल शोभा पा रहे थे और लचकनी चाल से मधु-भाषिणी राधा 'भगवान्' से मिलने अति प्रेमावेग से साथ चली'।

नरसिंह ने कृष्ण से भी राधा का रूप वर्णन करने में विशेष उत्साह सर्वत्र दिखलाया है यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है। यह सारा वर्णन परंपरागत होते हुए भी सजीव, स्वाभाविक और नित्य नूतन है, क्योंकि अनंत सुंदर भगवान् से मिलने की राधा की उत्सुकता का वर्णन किया गया है। अभिसारिका नायिका के रूप में किया गया राधा का यह चित्रण अत्यंत सरस है।

---

१ "मानुनीरा मान तज्यूं तेणी वार नी, राधा धरे छे सोल शणगार जी;
मेटवाने नंदकुमार जी, मनमा हरख थयों अपार जी।
हरख मनमा थयों घणो, मजन कर्यु तेणी वार;
चुवा चंदन अने केसर, सुगंध लई अपार।
चीर चपक साडा पटोली, ओपना ते पहर्यां अंग,
घूंघट मा मधुरुं हसती, नारी नेण कुरंग।
शीश फुली राखडी, नेणे ते काजल रेख,
लीलवट सोहे चांदलो, वणारा ते वलग्यो शेष।
निरमल मोती नाकमा, श्रवण मेहेरी झाल,
अधर अरुण ओपता, आपत्रु शोभे गाल।
मोती माला झरमर कंठे, उर एकावल हार,
चोली पहेरी कमकसी, कर कंकणनो झणकार।
चुडिलो हाथे सोहामणो, बीडी मुखमा जाण,
कांकण सर्वे सोहामणा, शा शा करु वखाण।
चरणे नेपुर घुघरी, वींछुआ ते अणवट सोहो,

....

हंसगमनी गजगति, कटि केसरी नो लंक,
उर अंबुज बे ओपता, मुखडु ते जाणे मयंक।
मुखडेथे मधुरु बेलती, हलवेशु भोडे अंग,
राधा ने प्रेम वाध्यो घणो, मल वाने श्रीभगवत।"

— इ स, देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १४२ १४३, पद ५।

सूर ने भी राधा के रूप-सौंदर्य का तथा अभिसारिका-रूप का वर्णन उत्साह के साथ किया है। वे कहते हैं कि राधा ने अंग-शृङ्गार किया। आपने अपने हाथों से सुन्दर वेनी रची और ललाट पर टीका लगाया। केसर की आड लगा कर, माँग में मोतो की माला सँवार कर, कानों में कुंडल धारण कर, नेत्रो में अंजन लगा कर, नाक में नथ पहन कर, अधरो पर पान की लाली लिये, सुन्दर साडी-चोली परिधान करके सोलहों शृङ्गार के साथ राधा हरि से मिलन चलीं[1]। एक स्थान पर वे कहते हैं कि राधा रूपी गंगा गोपाल सागर में मिलन सुखपूर्वक चली[2]।

यह वर्णन अत्यंत स्वाभाविक और सजीव है। मान के उपरांत अभिसार के लिए उत्सुक राधा के रूप-शृङ्गार का वर्णन अलंकार युक्त शैली में भी सूर ने किया है। सूर और नरसिंह दोनों ने राधा के रूप और शृङ्गार-सज्जा का जो वर्णन तथा अभिसारिका-रूप का जो चित्रण किया है उसमें ध्यान देने योग्य अंतर यही है कि नरसिंह ने अपेक्षाकृत विशेष निःसंकोच हो कर तथा खुल कर इस प्रकार का वर्णन किया है। कई एक पदों में सूर ने भी नग्न शृंगार वर्णन करने में संकोच नहीं किया है। एक पद में वे कहते हैं कि राधा ने गले से हार उतार लिया क्यों कि उन्होंने सोचा कि कृष्ण के हृदय से हृदय मिलाने में यह बाधा उत्पन्न करेगी[3]। नरसिंह ने भी ऐसा ही वर्णन किया है।

विपरीत रति

सूर ने विपरीत रति का भी वर्णन किया है। एक पद में वे कहते हैं कि राधा प्रिय के रूप को देख कर चकित रह गईं। वे सोचने लगीं कि वे पुरुष हैं और मैं नारी

---

१ "प्यारी अंग-सिंगार कियो।
बेनी रची सुभग कर अपनैं, टीका भाल दियौ।
मोतिनि माग संवारि प्रथम ही, केसरि आड सँवारि।
लोचन आँजि, स्रवन तरिवन-छवि, का कवि कहैं निवारि॥
नासा नथ अतिहा छवि राजति, अधरनि बीरा रंग।
नव सत साजि चीर चोली बनि, सूर मिलन हरि संग।"
— 'सूर सागर', पृष्ठ ६४५, पद ३६४५।

२ "सूरदास मनु चली सुरसरी, श्रीगुपाल-सागर सुख-सार।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १०७३, पद १०७।

३ "उतारत है कंठनि तैं हार।
(क) हरि हिय मिलत होत है अंतर, यह मन कियौ बिचार॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ३०७, पद [illegible]३०५।
(ख) "नितुरा कारण टूटेजो हार न भर्ती, आतु रति अगर थाय।"
— इ. सु. देसाई, 'नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह'
पृष्ठ ४२५, पद १०७।

हूँ या वे नारी हैं और मैं पुरुष हूँ। यह सोचते सोचते उन्होने तन की सुध-बुध बिसार दी। अपने तन को देखा तो मस्तक पर मुकुट, कानो मे कुडल, ओठो पर मुरली और हृदय पर वनमाला को शोभित होते देखा। उधर प्रिय के रूप को देखा तो सिर मे माँग और वेनी देखी तथा ललाट पर बेंदी-विन्दु की शोभा देखी[1]। एक और पद मे कृष्ण राधा के वस्त्राभूषण धारण करते हैं और राधा कृष्ण का रूप धारण करती है। गिरिधारी कृष्ण राधा का नीलाम्बर परिधान करके साडी के घूँघट की ओट से देखते हैं और श्यामा कृष्ण का पीताम्बर धारण करके अपने हाथ मे उनका लकुट लेती हैं। इस प्रकार श्याम नारी बने और राधा पति बनी। दोनो परस्पर मधुर बातें करने लगे[2]।

इस प्रकार के वर्णन सूर के अनेक पदो मे अनेक रूप मे मिलते है। कही कृष्ण और राधा दोनो स्त्री रूप मे वन की ओर जाते हैं[3] तो कही कृष्ण राधा को अक मे भर कर पहुँचा आते हैं और राधा की साडी पहन कर ही घर चले आते हैं तथा राधा को पीताम्बर पहना कर घर भेजते हैं[4]।

सूर के शृंगार की विशेषता या विचित्रता यह है कि इन्होने कृष्ण की बाल्यावस्था मे ही शृंगार की कल्पना की है। बाल्यावस्था मे शृंगार की कल्पना के पीछे धार्मिक और आध्यात्मिक भावना है। सूर बालक-कृष्ण को ईश्वर का अवतार मान

---

१ "निरखि पिय-रूप तिय चकित भारी।
किधौं वै पुरुष मैं नारि, की वै नारी मैंही हौं पुरुष, तन सुधि विसारी॥
आपुतन चितैसिर मुकुट, कुंडल स्रवन, अधर मुरली, मालवन विराजै।
उतहि पियरूप सिर माग बेनी सुभग, भाल बेंदी-बिंदु महा छाजै।"
— 'सूरसागर,' पृष्ठ १८३, पद २७६६।

२ "नागरि भूषन स्याम बनावन।
श्रीनागरि नागर-सोभा अग, कियौ निरखि मन भावत॥
स्यामा कनक-लकुट कर लीन्हें, पीताम्बर उर धारै।
उत गिरिधर नीलाम्बर सारी — घूघट ओट निहारै॥"
"वचन परस्पर कोकिल बानी, स्याम नारि, पति राधा।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १८४, पद २७७०।

३ "नदनदन तिय-छवि तनु काछे।
मनु गोरी सावरी नारि दोउ, जानि सहज मैं आछे।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १८५, पद २७७३।

४ "अकभा दै राधा अब घर पठई
प्यारा की सारा आपुन लै, पीताम्बर राधा उर लाई।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५०३, पद १३१०।

कर अलौकिकता के कारण कृष्ण पर छोटी अवस्था में ही शृंगार रस का आरोपण कर देते हैं। वे सहज प्राकृत बालक का चित्रण करते हुए भी कृष्ण की अलौकिकता की रक्षा करते हैं। भक्तों की भावना में रसों के विरोध का परिहार हो जाता है यह हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। सूर ने शृंगाररति को नहीं, वरन् आध्यात्मिक रति को अपना विषय माना है। वे एक साथ वात्सल्य रति के उपासक नंद-यशोदा का और मधुर रति की उपासिका गोपियों का चित्रण करते हैं। गोपियाँ कृष्ण को सर्वदा यौवन प्राप्त देखती हैं; यशोदा उनको बालक ही मानती हैं। सूर स्पष्टतः आध्यात्मिक अभिप्राय की अपेक्षा रखते हुए, पूर्ण शुद्धाद्वैती दृष्टिकोण से शृंगार-वर्णन करते हैं[१]।

नरसिंह ने नग्न शृंगार वर्णन करते हुए भी अलौकिक एवं आध्यात्मिक संकेत देते रह कर अपने शृंगार को उदात्त, पवित्र एवं दिव्य रूप में प्रस्तुत किया है। नरसिंह ने भी सूर के समान कृष्ण को नारी-वेश धारण करते हुए वर्णित किया है। वे अपने 'वसतना पद' में, होली के आनंदोत्साह का वर्णन करते हुए, एक पद में कहते हैं कि गोपियों ने कृष्ण को घेर लिया और अपनी बाँहों में दबा कर बाद में दो हाथों से पकड़ कर केशर की पूरी मटकी उन पर उँडेल दी। कृष्ण का पीताम्बर छीन कर, सभी गोपियाँ हँसने लगीं और कहने लगीं कि आज हम साँवरिये का मन-भाया शृंगार करेंगी। उन्होंने कृष्ण के ललाट पर बिंदी की, नेत्रों में काजर लगाया, नाक में वेसर पहनाई, माँग में मुक्तामाला धारण कराई, हाथों में चूड़ीकंकण तथा गले में रत्नजड़ित हार पहना कर अत्यंत शोभित होने वाली साड़ी भी पहनाई और चोली पहना कर उसमें पुष्पों के दो कंदुक बना कर रख दिये, पैरों में नूपुर तथा कटि पर मेखला के अलंकार भी धारण कराये[२]। कृष्ण को इस नारी-रूप में वे गाती-नाचती हुई यशोदा के पास ले जाती हैं। कृष्ण के इस रूप को देख कर यशोदा प्रसन्न होती हैं। इस प्रकार होलिकोत्सव की उच्छृंखलता के अंतर्गत, कृष्ण के नारी-रूप का वर्णन अधिक स्वाभाविक जान पड़ता है। सूर ने भी वसंत-लीला में ऐसा

---

१ डा० रामरतन भटनागर, 'सूरदास', पृष्ठ ११६, १३४, १५१, १५२।

२ "प्राणजीवनने घेरी करी, बलियो भीड्यो बाथे,
केसर गोळा ढोळीने साही रह्या बे हाथ।
पीतांबर पट लइने, हास्य करे सर्व नार,
गमतो गमतो करशुं रे, शामला मनना सणगार।
तलवट टीली कीधी रे, नेणे काजल सार;
शीष फूल राखडी झलके रे, मोती माग मझार।
नाके वेसर घाल्यां, रमता नाना भाव;

वर्णन किया है। इसी पद मे केवल एक पक्ति मे नरसिंह यह भी कहते हैं कि राधा को भी कृष्ण की वेष-भूषा से सजाया गया[1]।

और एक पद मे वसन्त ऋतु में कृष्ण वनिता के वेश मे वनविहार करते हुए सर्व गोपियो को मुग्ध करते हैं। इस सुन्दर और धन्य ऋतु मे कहान और कामिनी रसकेलि करते हैं, जिसमे साँवरिये को श्यामा के रूप मे अपने वक्षस्थल पर सोत्साह धारण किया जा रहा है[2]। एक स्थल पर नरसिंह वर्णन करते हैं कि छरहरे बदन के (पातलिया) कृष्ण का पीताम्बर ले कर उन्हे राधा का नीलाम्बर पहनाया गया[3]। इन वर्णनो मे नरसिंह ने स्वाभाविकता की विशेष रक्षा की है यह स्पष्ट है। होली के आनदोत्साह मे वेशपरिवर्तन की क्रीडा अस्वाभाविक नही जान पड़ती। सूर ने भी वसतलीला मे ऐसा वर्णन किया है।

कृष्ण की शृंगार-लीलाओ मे दानलीला का वर्णन नरसिंह ने मुख्य रूप से

ककण चूडी खलके रे, हार हेम जड़ाव।
पटोली आत ओपती, फुमक फरके माहे ;
कदुक कुसुम बे लइने, मेल्या चोली माहे।
नेपूर पाये रणभणे, कटी मेखला भणकार ;
लटके बाहु लोभावोजी, भाभरने भमकार।"

— इच्छाराम सूर्यराम देसाई,
'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह'
पृष्ठ २२८, पद १४।

१ "शामलानो वेश शामाने कीधो, अति आनद "
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ २२६, पद १४।

२ "वनमा विलसता रे विलसता, वहालो वनिता वेशे रे ;
निरखता मोही रह्या सहु, अबला अग उलासे रे।"
"धन धन ऋतु रढियाली, रसमा कम कहान कामनी रमता रे ;
शामलीयाने शामा रूपे, धाई धाई उर पर लेता रे।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ २३८, पद ४४।

३ "पीतांबर लई पातलीयानु, नीलांबर पहेराव्युं रे।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई,
'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ २४५, पद ६६।

केवल एक ही बडे पद मे तीन पृष्ठो मे अत्यन्त सक्षेप मे कर दिया है, जब कि सूर ने अत्यंत विस्तार से, सरसता के साथ इस लीला का वर्णन किया है। नरसिंह ने इसमे इतना ही रसिक वर्णन किया है कि राधा कृष्ण से पूछती हैं—"किस दूध का दान माँग रहे हो ?" सूर ने तो "तुम हमसे अग-दान माँगते हो।"[१] ऐसी राधा की खीझ का तथा "हाँ, हम अग अग का दान ले कर रहेंगे"[२]। ऐसी कृष्ण की उक्ति का रसिक वर्णन बार-बार किया है। सूर की राधा और गोपियाँ, यशोदा के घर जा कर उलाहना भी देती हैं। 'दानलीला' के अतिरिक्त अपनी 'श्रृगारमाला' नामक रचना मे कही-कही उल्लेख मात्र के रूप मे दानलीला का वर्णन नरसिंह ने सक्षेप मे किया है, किन्तु सूर का वर्णन तुलना करने पर विस्तृत, विशद, सरस और हृदयस्पर्शी प्रतीत होता है। पनघटलीला का वर्णन नरसिंह मे नही के बराबर मिलता है और जो मिलता भी है वह केवल उल्लेख मात्र के रूप मे। सूर ने पनघटलीला का वर्णन विस्तार पूर्वक पचासो पदो मे किया है। नरसिंह ने जल-क्रीडा का वर्णन बिल्कुल नही किया है, जब कि सूर ने बीसो पदो मे जलक्रीडा का अत्यत मनोहर और रसिक वर्णन किया है। नरसिंह न चीर-हरन-लीला का वर्णन कही कही केवल निर्देश मात्र के रूप मे किया है, जब कि सूर ने यह वर्णन भी अनेक पदो मे विस्तृत रूप से किया है। ग्रीष्मलीला का वर्णन भी सूर ने किया है, नरसिंह ने नही। इसका स्पष्ट कारण यही है कि सूर ने मौलिकता का निर्वाह करते हुए भी, कृष्णचरित्र को, कथा के रूप मे भागवत की योजना को आधार बना कर, अपने पदा मे वर्णित किया है। नरसिंह को कथा क्रम का ध्यान तक नही है। उनका कृष्ण प्रेमी गोपी-हृदय जो मन मे आता है, जो मन को भाता है, वही गा देता है। इसीलिए कृष्ण की अनेक लीलाओ का उन्होंने वर्णन क्या, निर्देश तक नही किया है।

वसतलीला

वसतलीला का वर्णन सूर और नरसिंह दोनो ने विस्तार-पूर्वक और उत्साह के साथ किया है। इसमे दोनो कविया ने उद्दीपन के रूप मे प्रकृति-वर्णन भी सुन्दर ढग से किया है। दोनो कवियो का होली खेलने के वर्णन मे लोकजीवन के आनदो त्साह का अद्भुत वर्णन मिलता है। गोप, कृष्ण, राधा और गोपियो के नाचन तथा गाने बजाने का वर्णन दोनो कवियो ने बडी उमग के साथ किया है।

---

१ "अगदान हम सौं तुम मागत "
— 'सूरसागर', पृष्ठ ७६६, पद २०८४।

२ "लैहौं दान सब अग अग कौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ७७१, पद २०६३।

सूर की गोपियाँ होली खेलती हुई कृष्ण से कहती हैं कि 'तब तुमने हमारे चीर हर लिये थे, अब हम तुम्हारे वस्त्र छीन लेती हैं। . .. एक सखी ने मोर-पंख लिया तो एक ने आकर पीताम्बर छीन लिया। एक ने नेत्रों में अंजन लगाया तो एक ने मुख पर गुलाल लगा दिया। फाग में कौन किसकी प्रभुता मानता है? जिसके मन में जो आया उसने वही किया।'[1] नरसिंह की गोपियाँ भी कृष्ण के साथ ऐसा ही व्यवहार करती हैं। वे कृष्ण का पीताम्बर छीन कर हँसती हुई कहती हैं कि हम कृष्ण का मनभाया शृंगार करेंगी[2]। दोनों कवियों ने केशर, चन्दन, गुलाल रंग इत्यादि से होली खेलते-खेलते प्रेमोन्माद में और आनन्दोत्साह में कृष्ण और राधा के आलिंगन, सभोग इत्यादि का शृंगारिक वर्णन भी खुल कर किया है। सूर ने तो 'श्री राधा गिरवरधर ऊपर' में विपरीत रति का वर्णन भी कर दिया है। आध्यात्मिक सकेत भी दोनों कवियों ने इस प्रकार के वर्णन में बराबर किये हैं। सूर कहते हैं कि व्रज-वनिताओं का सुख देख कर सुर-नार भी हृदय में सोचती हैं कि हम क्यों न व्रज वनिताएँ हुई[3]? नरसिंह कहीं यह कहते हैं कि सुर-नर मुनिवर भी भ्रम में पडते हैं क्योंकि वे लीलाभेद नहीं जानते हैं,[4] तो कहीं यह कहते हैं कि भगवान की लीला देख कर सुर नर-मुनिवर सब मुग्ध हो जाते हैं।

नरसिंह ने वसतलीला के अन्तर्गत एक अत्यत सुन्दर रूपक की सृष्टि भी की है। यहाँ हमें उनकी कल्पनाशक्ति का सुन्दर परिचय मिलता है। वे कहते है

---

१ "तब तू चीर हरे जु हमारे, हा हा रवाई सबहीं।
अब हम बसन छीन करि लैहैं, हा हा करि हौ अबहीं॥

. ...

एक सखी आइ पाछे तैं, मोर पच्छ गहि लीन्यौ।
एक सखी त्या आइ अचानक, पीताबर धरि छीन्यौ॥
एकै आखि आनि, मुख माट्यौ, ऊपर गुलना दीन्यौ॥
मानत कौन फाग में प्रभुता, मनभायो सो कीन्यौ॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२५०, पद ३५३४।

२ "पीताबर पट लइने, हास्य करे सर्व नार;
गमता-गमतो करशु रे, शामला सकल शणगार।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ २२८, पद १४।

३ "व्रज-वनिता हम क्यों न भईं, यौं कहति सकल सुर-नार।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२४१, पद ३५२५।

४ "सुरीनर मुनीवर भरमें भूला, लीला भेद न जाणे रे।"
इच्छाराम सूर्यराम देसाई, —'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ २३१, पद २२।

"चलो, गोकुल मे एक आम्रवृक्ष पुष्पित हो रहा है इसे देखने चलो। वसुदेव ने इसे बोया है और नद के यहाँ यह अकुरित हुआ है। यशोदा ने अपने दूध से इसे अभिसिंचित किया है। इस आम्रवृक्ष की छाया मे सोलह-सहस्र कोकिलाएँ आश्रम पा रही हैं[१]।" वसन ऋतु के प्रतिनिधि आम्रवृक्ष के रूप मे किया गया कृष्ण का यह वर्णन अत्यत मनोरम है। ऐसे अलौकिकता के सकेत दोनो कवियो ने वसन्त-वर्णन मे अनेक स्थलो पर बार-बार किये हैं। वसन्तवर्णन के अतर्गत किया गया प्रकृतिवर्णन भी अत्यन्त अनोखा है, जिस पर आगे एक स्वतन्त्र अध्याय मे अलग से प्रकाश डाला जाएगा। इसी वसन्तवर्णन मे नरसिंह की राधा अपने को कृष्ण की पत्नी मान कर कहती हैं कि "मेरा पति सुन्दर है और मेरा सुहाग अखड है[२]। इसी वसन्तवर्णन के अन्तर्गत राधा और कृष्ण के विवाह का भी नरसिंह ने बडा सुन्दर और दिव्य वर्णन किया है। सूर ने भी राधाकृष्ण के विवाह का वर्णन तो किया है, किन्तु वसन्त ऋतु मे नही। वसन्त पचमी के शुभ दिन विधिवत् रूप से नरसिंह ने राधा-कृष्ण का विवाह सपन्न कराया है। पुष्पो से सुसज्जित मडप मे ब्रह्मा ने स्वय पुरोहित बन कर यह विवाह कराया। देवताओ और मुनिवरो ने कृष्ण के गले मे माला पहनाई। उस अवसर पर जितने सुन्दर श्याम बने ठने थे, उतनी ही सुन्दर राधा भी सजी धजी थी। प्रथम नरसिंह के स्वामी का विवाह हुआ, बाद मे सारे ससार का[३]।"

---

१ "चलो जोवा जइरागोकुलमा, गुणवत आवो मोरे;
जादवकुले वसुदेवे वाव्यो, फूटयो नदने घरे अकोरे।
पयपान जशोदाजाराासींच्यु, ते आवो सफले फलियो,
सोल सहस्र कोकिला कलेवर, त्रिभोवन छाय धरी रहियो।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४६७, पद ५।

२ "अखड अहेवातण मारे, रा वर रूडो।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ २५७, पद १००।

३ "वसत विवाह आदर्यो हो हो, आदर्यो रे परणे छे नदजी को लाल।
वसत पचमीने नौतम नक्षत्रे, लगन लीधो निराधार बल जाऊ।
कलश थपानु ने गणेश बेसारु, तोरण बधावु द्वार।
धन्य धन्य फागण धन्य रा महिमा, मडप फूलोनो रच्यो बल जाऊ,
मावेसु ब्रह्मा वेद भणत हे, वर त्यो छे हो मोरे प्यारे, वरत्यो छे मगलचार।
सुरिवर मुनिवर सरवे मलीने, कठ आरोपी वरमाला बल जाऊ,
भावे भगत ने जुगते जमाडु, वरत्यो छे हो प्यारी ललना, वरत्यो छे जय-जयकार।

सूर ने वसंत वर्णन के भीतर अनेक स्थलों पर अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति का सुन्दर परिचय दिया है। नरसिंह में ऐसी कल्पना-शक्ति का प्राय अभाव सा ही है ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा। सूर ने एक पद में बड़ी मनोमुग्धकारी कल्पना की है कि वसंत ने पत्र भेजा है, "हे मानिनी, तुरत अपना मान तजो।" नवदल तथा कमल-पत्र कागज है, कमल के भीतर का भौंरा स्याही है तथा काम का बाण ही लेखनी है। कामदेव ने लिख कर उस पर अपनी छाप दे दी। मलयानिल पत्रवाहक बना, उस पत्र को शुक और कोयल ने पढ़ा तथा सब गोपियों ने सुना[1]। इस प्रकार की कल्पनाएँ तो सूर में प्रचुर परिमाण में और सर्वत्र मिलती हैं।

हिंडोल-लीला

जितना सुन्दर और सहज दोनों कवियों का वसंत-वर्णन है उतना ही मनोहर और स्वाभाविक दोलोत्सव का वर्णन भी है। इस प्रकार के पदों में भी प्रकृति-सौंदर्य का सुन्दर वर्णन मिलता है, जिसका अध्ययन आगे एक अलग अध्याय में स्वतंत्र रूप से किया जायगा। सूर ने सावन के हिंडोले को भी, वात्सल्य के पदों में बतलाये गये पालने के समान, दिव्य ही वर्णित किया है, जिसे विश्वकर्मा और कामदेव ने बनाया है[2]। वहीं वे यह भी कहते हैं कि इन्द्र ने सुरपुर से अपना हिंडोला ही भेज दिया है[3]।

नरसिंह ने भी सूर के समान अलौकिकता की सूचना देने वाले संकेत अवश्य किये हैं, और वे भी स्वर्ण हिंडोले को विश्वकर्मा द्वारा निर्मित वर्णित करते हैं।

सूरदास और नरसिंह दोनों देवताओं की प्रसन्नता तथा पुष्पवृष्टि का वर्णन

जेसो सुंदर श्याम बन्यो है, ऐशा बनी राधे नार बल जाऊं,
पहेलो परण्यो महेतो नरशीनो स्वामी, पछी परण्यो आ सकल संसार।
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ २५३, पद ८९।

१ "ऐसौ पत्र पठायौ वसंत। तजहु मान मानिनी तुरंत ॥
कागद नव दल अवनि पात। देति कमल मसि भंवर सुगात ॥
लेखिनि काम बान के चाप। लिखि अनंग वस दीन्ही छाप ॥
मलयानिल चर पठयौ बिचारि। बाचत सुक पिक सुनि सब नारि।"
— 'सूरसागर,' पृष्ठ १२०५, पद ३४६३।

२ "द्वै खंभ बिसकर्मा बनाइ, काम कुंद चढ़ाई।
— 'सूरसागर', पृष्ठ ११६७, पद ३४४६।

३ "मनो सुरपति सुर-सभानैं, पठै दियौ हिंडोल।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२५५, पद ४५३६।

बराबर करते हैं[१]। सूरदास की अपेक्षा नरसिंह ने दोलोत्सव का वर्णन अधिक विस्तृत और शृंगारिक रूप में किया है। जहाँ सूर राधा, गोपियों तथा कृष्ण के सौंदर्य और वस्त्राभूषण या एवं हिंडोले की दिव्य सुन्दरता का वर्णन करने में उलझे हुए रह जाते हैं, वहाँ नरसिंह झूलने के प्रेमानंद का स्वाभाविक वर्णन करने में विशेष उत्साह दिखलाते हैं। सूर की गोपियाँ गाती हुई, झूलती-झुलाती हुई मन की साध पूरी करती हैं और कभी कोई डरती है तो कृष्ण उसे हृदय से लगा लेते हैं[२]। नीलवसना, गोरवर्ण राधा और पीताम्बरधारी श्यामवर्ण कृष्ण का हिंडोले पर झूलना ऐसा लगता है जैसे मानो घन में विद्युत् होती है[३]। राधा और कृष्ण विह्वल हो कर झूलते हैं[४]। वे दोनों झूम-झूमकर झूलते हैं[५]।

नरसिंह ने सावन के झूलों पर झूलते हुए कृष्ण, राधा और गोपियों का वर्णन विशेष रसिकता के साथ किया है। "राधा कहती हैं कि मैं कृष्ण से बातें कर रही थी इतनी देर में कृष्ण ने दस-बीस झूले और जोर से झुलाये। परिणामस्वरूप मेरी वेनी बिखर गई, हार टूट गया और सिर पर से वस्त्र खिसक गया। बाद में तो वे और जोर से झुलाने लगे तब मैंने कहा कि "रोकिये प्रियतम, मेरे वस्त्रों के उड़ने से मेरे अंग खुले हो रहे हैं। मेरी सखियाँ उधर हँस रही हैं, लेकिन आपको उसकी चिंता नहीं है। इतना निर्लज्ज मैंने तुम्हें नहीं जाना था, मेरे लाडले स्वामी! जाओ, अब मैं तुमसे कभी नहीं बोलूँगी।" राधा के ऐसे वचन सुन कर रसिक-शिरोमणि हँस पड़े[६]।

---

१ अ "अंबर बिमाननि सुमन बरषत, हरषि सुर संग नारि।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ११६७, पद ३४४८।
ब "उपरथी कुसुम मोह वरखी रह्या रे, सुरीवर मुनिजन बोले जय-जयकार रे।"

२ "झुलत झुलावत कोउ हरषि गावति, सब पुरवति मन साध।
....
कोउ डरपति, हा हा करि विनवति, प्यारो अंकम लाइ।।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२००, पद, ३४५२।

३ "नील पीत दुकूल स्यामल-गौर-अंग बिकार।
मनहु नौतल घट-घटामैं, तड़ित तरल आकार।।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२०३, पद ३४५६।

४ "झूलंत विह्वल स्याम-स्यामा...... ...."
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२०४, पद ३४६०।

५ "सूरदास स्वामी, पिय-प्यारी, झूलत हैं झकझोल।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२५५, पद ३५३७।

६ "मारा वहालाजी शुं वात करता, घुमरी थई दशवीश ;
वेण वछूटी ने हार ज तूट्यो, मंबर खसियां शीश रे।

हिंडोले के इस प्रथम पद मे ही नरसिंह ने रसिकता दिखलाई है। यह वर्णन कितना प्रकृत और मनोवैज्ञानिक है¹ झूलते हुए बाते करने मे आनन्द आना और उस आनन्द मे लीन राधा को झूले की गति बढ जाने का पता न चलना कितना स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। जब केश बिखर गए, हार टूट गया और वस्त्र अस्तव्यस्त होने लगे तब आनन्द-समाधि समाप्त हुई और राधा ने कृष्ण को झूला रोकने के लिए कहा, यह भी सहज है। पास मे खडी हुई सखियो की ओर तथा झूले की बढ़ती हुई गति के कारण अपने अस्तव्यस्त होने वाले वस्त्रो की ओर ध्यान जाने पर राधा का कहना है कि देखो मेरी सखियाँ हँस रही हैं, झूले की गति के कारण मेरे अग खुले हो रहे हैं— इस वर्णन मे भी कितनी मनोवैज्ञानिकता है। सखियाँ हँस रही हैं, मैं सकोच, लज्जा, मर्यादा, सखियो के मज़ाक का भय —ये सभी भाव इस कथन मे निहित है। अपने कहने पर भी जब कृष्ण ने झूला नही रोका तो राधा ने उन्हें निर्लज्ज कहा और धमकी दी कि मैं तुमसे अब कभी नही बोलूंगी — यह सब अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है और स्त्री-स्वभाव के नरसिंह के ज्ञान का परिचय है। राधा की ऐसी भावभगिमा पर कृष्ण का हँस पडना भी अत्यन्त स्वाभाविक है। नरसिंह कल्पना की ऊँची उडानें बहुत कम भरते हैं, अलकार-प्रयोग का कौशल भी प्राय नही सा दिखलाते हैं, किन्तु प्रेम की स्वाभाविकता का वर्णन बडे ही मनोहर, सहज और हृदयस्पर्शी ढग कर देते हैं। ऐसे वर्णन तो उनके अनेक पदो मे मिलते हैं। कही वे लिखते हैं कि झूले के बढने के साथ राधा का आनन्द भी बढा¹ तो कही कृष्ण के पीताम्बर के हवा मे उडने पर राधा के आनन्द का वर्णन करते हैं²। झूलने मे वे स्पर्शसुख, चुम्बन, आलिगन इत्यादि का वर्णन भी बार-बार करते हैं। राधा और गोपियो के झूलने के इस आनद

हिंटोलो राखो मादा वाहाला, अंग उघाडां थाय,
मारी सहियर सर्वे हास्य करे छे, तेमा तमारु रउ जाय रे।
आवा निर्लज थयाते नवि जाण्या, लाटक वाया नाथ;
नहि-नहि बोलु नहि चालुं वाहाला, आज पछी तमारी साथ रे।
रावा-रावां वचन सुणे हरि हसिया, रसिकवर सुकुमार।"
— इ सू देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ४३६, पद १।

१ "कोई वाधो-वाधो अगमा आनद अपार रे.. ... .."
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहताकृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ४४०, पद ४।

२ "पीतांबर ते पीयुजी केरु, अगेथी अलगु थाय रे;
तेम-तेम तारुणी मनमां हरखे, उलट अगे न माये रे।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४४६, पद १६।

को नरसिंह 'महारस'[1] कह कर शृंगार को दिव्य रूप प्रदान करते हैं। तुलना करने पर नरसिंह का दोलोत्सव-वर्णन सूर के वर्णन से अधिक सजीव, स्वाभाविक, सरस एवं विस्तृत है।

रासलीला

'रासलीला' का वर्णन सूर और नरसिंह दोनों ने किया है। सूर के रासलीला के पदों की संख्या नरसिंह के रासलीला के पदों से कम है। नरसिंह ने पूरे एक सहस्र पदों में रासलीला वर्णित की थी इसी लिए उस रचना का नाम भी उन्होंने 'राससहस्र-पदी' रखा था। किन्तु अब केवल १८६ पद ही मिलते हैं। उनकी 'शृंगारमाला' रचना में भी रास का वर्णन कुछ पदों में किया गया है। नरसिंह का रासलीला-वर्णन अति शृंगारिक है क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया था कि उन्होंने 'दिव्यद्वारिका' में यौवन के एक दिव्य मधुर भाव से आप्लावित करनेवाले रास में राधाकृष्ण को निमग्न देखा था। यह दिव्य मधुर भाव वासना में सीमित नहीं था, अपितु सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा करने वाला अमृत मधुर व मधुरत्व राधाकृष्ण के उन आवेगों में निहित था। उन्हें यह भी विश्वास हो गया था कि राधा और कृष्ण की उस रास-लीला का तथा अन्य शृंगार-लीलाओं का निःसंकोच और निर्भय हो कर वर्णन करने का उन्हें स्वयं रासेश, रसिक-शिरोमणि भगवान् कृष्ण से ही आदेश मिला था। सूर और नरसिंह दोनों ने इस रास को शरत्पूर्णिमा के दिन खेला गया वर्णित किया है। सूर और नरसिंह दोनों के हृदय का भाव-माधुर्य रास के रस माधुर्य का वर्णन अमृत टपकाने वाले शरत्चंद्र की मधुरिम ज्योत्सना में ही करना चाहता है। इन दोनों कवियों ने रास के समय मधुर रव करने वाले आभूषणों का मनोहर वर्णन किया है। दोनों की भाषा भावानुरूप तथा शैली रसानुकूल स्वाभाविक रूप से हो गई है। इसी में कृष्ण की मुरली की मोहिनी का वर्णन भी दोनों कवियों ने उत्साहपूर्वक किया है। नरसिंह मुरली की मोहिनी का वर्णन राधा के मुख से कराते हुए कहते हैं कि "वन में वेणुनाद हुआ, अब मैं कैसे धैर्य धारण करूँ? उस मधुर वेणुनाद से तो अंग अंग में अनंग जागता है[2]।

---

१ "मगन थने महारस माहे, करी मधुरा गान रे।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४५?, पद ३?।

२ "छानी केम रहुं, वन वेणु वाजे,
सांभलता अंगेन, अनग जागे।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ १६५, पद ८

प्रिय ने बाँसुरिया बजाई और मार्ग में ही मेरे अंग-अंग मानों विद्ध हो गए[1]।
प्रिय ने बाँसुरिया बजाई और मुझमें घर में नहीं रहा गया। सूर गोपियों से मुरली-सम्बन्धी पचासों अनूठी उक्तियाँ कहलवा कर अपनी उद्भावना-शक्ति तथा कल्पना-शीलता का अनोखा परिचय देते हैं। उनके कृष्ण की मुरली की धुन पर ब्रज-वनिताएँ तो दौड़ती ही हैं, सुर, मुनि और नाग भी मुग्ध रह जाते हैं। प्रकृति पर भी मोहिनी मुरली का प्रभाव पड़ता है। यमुना के जल का प्रवाह रुक गया, पवन भी स्थिर हो गया तथा चन्द्र भी रुक गया, जिसके कारण रात लम्बी हो गई, और पशु-पक्षी एवं जलचर भी अधीन हो गए[2]।

गोपियों की मुरली सम्बन्धी उक्तियाँ सूर में पचासों मिलती हैं, किन्तु नरसिंह में बहुत कम मिलती हैं। नरसिंह के एक पद में गोपियाँ कहती हैं कि "यह बाँस की बाँसुरी ही हम से भाग्यवान है, जिसे श्याम प्रेम-पूर्वक अधरों पर रखते हैं। कृष्ण के अधरामृत का जो रस दुर्लभ है, उस रस का इसे अहर्निश आस्वादन करने को मिलता है। इसने हमारे प्रिय को मुग्ध कर-घर के अपने वश में कर लिया है और इसी लिए अधरामृत के रस का पान करती रहती है। इस सौत से साथ कैसे रहा जाय जो सर्वदा स्वामी के कान भरती है। इसने कौन से ऐसे पुण्य और तप किये हैं जिनके कारण यह स्वामी को इतनी प्यारी है[3]। सूर ने तो इस प्रकार की उक्तियाँ गोपियों से अनेक

---

१ "वासलडी वाही रे वहाले, मारगडे जाता
अंगो-अंग विंधाणड्ड.................."
—के० का० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १७४, पद ४३।

२ "सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुरमुनि-नाग निरंतर, ब्रज-बनिता उठि धाई॥
जमुना नीर-प्रवाह थकित भयौ, पवन रह्यौ मुरझाई॥
खग-मृग-मीन अधीन भए सब, अपनी गति बिसराई॥
द्रुम-बेली अनुराग पुलकतनु, ससि थक्यौ निसि न घटाई।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ६०३, पद १६०८।

३ "वांसली वासली, भ्रम थकी थई भली, हेते शु शामले अधुर राखी;
जे रस प्रेमदा, दुर्लभ छे सदा, ते रस दिननीश रही रे चाखी।
वालमो वश कर्यो, तेणे वरि करी घरो, अधुर अमृत रस पान करती,
शोक जोडे थई केम रहीये सखी, हरनीश नाहोना श्रवण भरती।
कोण तप कीधलां, पुन्य आवीं मलयां, तेणे करी नाथने असख्य वहाली।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ३८७, पद ४२८।

कहलवाई हैं। सूर की गोपियाँ कहती हैं कि "इतन पर भी गोपाल का मुरली प्रिय है। यद्यपि यह कृष्ण को अनेक प्रकार के नाच नचाती है, उन्हें एक पैर पर खड़ा रख कर अपना अधिकार दिखलाती है, कृष्ण की कटि को अपनी आज्ञाओं के भार से टेढ़ी करके उन्हें त्रिभंगी मुद्रा मे खड़ा रखती है, उन्हे दास बना कर उनकी ग्रीवा को भी झुका रखती है, स्वय अधर शय्या पर सो कर अपने पैर तक दबवाती है, कृष्ण की तिरछी भौंहो, तिरछे नेत्र तथा फरकते हुए नासापुटो से हम पर कोप भी कराती है[1]।" सूर की गोपियो के मुख से मुरली को सौत कहलवाते हैं। सूर ने मुरली के प्रत्युत्तरो की भी कल्पना की है। मुरली सम्बन्धी उक्तियाँ सूर की वाग्विदग्धता का अद्भुत परिचय देती है। एक ही बात को कहने के न जाने कितने टेढे-सीधे ढग इन्हे मालूम हैं। नरसिंह में ऐसे कौशल का प्राय अभाव सा ही है।

रासलीला के वर्णन म दोनो कवियो ने राधा और गोपियो के वस्त्राभूषण का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। नरसिंह रास मे लीन कृष्ण और गोपियो का वर्णन यो करते हैं कि "जिस प्रकार चद्र आकाश म ज्योत्सना से वेष्टित है उसी प्रकार कृष्ण गोपियो से वेष्टित हैं[2]।" इस वर्णन मे यदि नरसिंह ज्योत्सना के स्थान पर तारे कहते तब तो कुछ दूरी का भाव भी रहता, किन्तु ज्योत्सना कहने से लिपटे रहने का भाव अभिव्यक्त हो जाता है। रास की रसमग्नता म राधा का कृष्ण को सर्वस्व अर्पित करना भी वर्णित किया गया है। वे कहते हैं कि पायल की झकार के साथ रास में लीन राधा कृष्ण की ग्रीवा मे बाहे डाल देती हैं। अधरामृत का रसपान करती हुई वे अपना और प्रिय का अतर दूर करती है। प्रिय के प्रेम मे अनुरक्त राधा के अग आनद के कारण लसित होते हैं। कृष्ण के साथ रास रस निमग्न हो कर राधा सर्वस्व

---

१ "मुरली तऊ गुपालहि भावति।
सुनिरी सखी जदपि नदलाल हि, नाना भाति नचावति॥
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी ह्वै आवति॥
अति आधीन सुजान कनौडे गिरिधर नार नवा वनि।
आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर, कर पल्लव पलुटावति॥
भृकुटी कुटिल, नैन नासापुट हम पर कोप करावति।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४६२, पद १२७२।

२ "ज्यम शशी गगनमा, वींटयो चाद्रणी,
त्यम हरि वींटायो सकल गोपी।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह महेता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ १८७, पद ८३।

समर्पित कर देती है'[1] ।"

रासेश्वर कृष्ण की रासलीला का वर्णन सूर भी कुछ इसी प्रकार से करते हैं। एक पद में वे कहते हैं कि "ग्वालिन को कृष्ण ने रासरस-निमग्न कर दिया। सभी व्रजनारियाँ कृष्ण के अधरामृत का रस पान करने लगी। कामातुर बालाओं की प्रार्थना मान कर कृष्ण ने सबकी आशा पूरी की। कभी नृत्य होता है, कभी गान होता है और कभी कोक-विलास होता है। रास-नायक कृष्ण सुख-दुःख का नाश करते हैं[2]।

रासलीला' वर्णन में, भगवान् शंकर की कृपा से 'दिव्यद्वारिका' में जा कर अपना उस रास को देखते रहने के सौभाग्य का वर्णन नरसिंह बार-बार करते हैं। सूर और नरसिंह दोनो ने रास के आध्यात्मिक एवं अलौकिक स्वरूप के लिए संकेत किये हैं। सूर बार-बार कहते हैं कि 'देवतागण पत्नियों के साथ विमानों पर चढकर आकाश में से उस रास को देखते हैं तथा पुष्पवृष्टि करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि व्रज में जन्म पाने वाले धन्य हैं[3]।"सूर ने अलौकिक तत्व की पूर्ण रक्षा की है इसमें कोई संदेह नहीं। नरसिंह और सूर का रासलीला वर्णन रसविभोर कर देने वाला है, नेत्रों के सम्मुख उस दिव्य रास का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत कर देने वाला है तथा मन को दिव्य मधुर रस के सागर में निमग्न करने वाला है। नरसिंह ने भी अलौकिकता एवं आध्यात्मिकता के संकेत अपने रासलीला वर्णन के पदों में बार-बार किये हैं। वे कहते हैं कि सुर-नर-मुनि भी सोच विचार में पड जाते हैं, कोई उसकी लीला नहीं समझ सकता।

---

१ "झांझरिया झमकावी राधा, कंठ वाढुली वाली रे,
अधर अमृतरस पान करता, उरनो अंतर टाली रे।
माननी माती पियु रंग रातो, आनंदे अंग ओपे रे,
मगन थई मोहनजी साथे, शामा सरवस सोंपे रे।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १६७, पद १४।

२ "रस बस स्याम कीन्ही ग्वारि।
अधर रस अचवत परस्पर मगन सब ब्रजनारि॥
काम आतुर भजीं बाला, सबनि पुरइ आस।
एक इक ब्रजनारि, इक इक आपु कर्यौ प्रकास॥
कबहु नृत्यन कबहुं गावत, कबहु कोक विलास,।
सूर के प्रभु रास-नायक, करत सुखदुःख नास॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६२६, पद १६८०।

३ "सुर गन चढ़ि विमान नभ देखत।
ललना सहित सुमन गन बरसत, धन्य जन्म ब्रज लेखत॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६२०, पद १६६२।

शवर भगवान् की कृपा से नरसिंह ने वह रास-रंग देखा[1]। देवता और मुनि भी रासलीला को देख कर जय-जयकार करते हैं तथा पुष्प-वृष्टि करते हैं[2]।

नायिकाभेद और कृष्ण का बहुनायकत्व

सूर और नरसिंह दोनों ने शृंगार के अंतर्गत नायिकाभेद का वर्णन किया है। सूर ने तो 'साहित्य लहरी' में विशेष रूप से नायिकाभेद का वर्णन किया है। 'सूरसागर' में नायिकाभेद वर्णन सहज रूप में आया है। नरसिंह के भी शृंगार रस के पदों में यह स्वाभाविक रूप से आया है। नायिकाभेद भी शृंगार रस का प्रमुख अंग है जिसका इन दोनों महाकवियों ने निर्वाह किया है। अभिसारिका नायिका, खंडिता नायिका, अन्य संभोग दुःखिता नायिका, मानवती नायिका, अधीरा नायिका, वासकसज्जा नायिका, उत्कंठिता नायिका, कलहान्तरिता नायिका, प्रोषितपतिका नायिका, प्रेमासक्ता नायिका, क्रियाविदग्धा नायिका, ज्ञानदसमोहिता नायिका, अज्ञातयौवना नायिका, स्वकीया एवं परकीया नायिका, विप्रलब्धा नायिका, मध्या नायिका, अनुशयना नायिका, इत्यादि नायिकाभेद-वर्णन सूर और नरसिंह में बराबर मिलता है। कदाचित् जयदेव तथा विद्यापति आदि पूर्ववर्ती कवियों से इन दोनों कवियों ने नायिकाभेद-वर्णन को परंपरा के रूप में अपनाने की प्रेरणा पाई होगी। दोनों कवियों ने कृष्ण का वर्णन कहीं कहीं धृष्ठ, अनुकूल, शठ, दक्षिण तथा मानी नायक के रूप में किया है।

कृष्ण का बहुनायकत्व दोनों कवियों ने वर्णित किया है। नरसिंह की राधा कृष्ण से कहती है—"रात बीतने पर तुम घर आते हो। यह बताओ कि कहाँ रहे और क्या किया ? मैं तुम से नहीं बोलूँगी, प्रियतम ! तुम्हारी प्रीत का भेद जान लिया। अनेक से प्रेम-सम्बन्ध रखने वाले का मन कभी स्थिर नहीं होता[3]। मुझसे अधिक

---

१ "सुरिनर मुनि मनमांहे विचारे, पार न पामे कोय रे,
कमिया हरा इनाथी क्मो, नरसैंयो रंग जाय रे।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १८१, पद ७८।

२ "व दे शब्द सुर मुनि करे, बरसे कुसुम अपार।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १६१, पद १।

३ "रजनी वीती घर आव्या, शुं कशु शामलिया रे,
तम साथे नहि बोलुं म्हारा वहाला, प्रीत जाणी पातलिया रे।

घणा घरनो जे होये परणो, तेहनु मन स्थिर न होय रे।"
— इ. सू. देसाई, 'नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ २१०, पद ९१।

भाग्यवती कौन है ? अवश्य ही देखने योग्य होगी[1] ।......झूठ मत बोलो। मैं तुम्हारी बात जानती हूँ। रातभर कहीं खेल कर अब प्रभात के समय यहाँ भाग कर तुम आए हो[2] ।

सूरदास की गोपी कृष्ण से कहती है—"वहीं जाओ जहाँ रातभर रहे। अब क्यों छिपाते हो मनमोहन ? तुम्हारे शरीर पर रति के चिह्न दिखाई देते हैं[3]। प्रातःकाल होने पर तुम आए, लाल ! तुम्हारे नीलवर्ण कोमल वक्षस्थल पर कठोर कुचों के गड़ने के चिह्न बने हुए हैं। रात भर किस के घर रहे और अब यहाँ इस ओर आए हो ? बातें बना कर मुझे भुराते हो[4] । यह बताओ कि तुम किसी पर रीझ गए या किसी ने तुम्हें रिझा लिया ? तुम्हें कोटि सौगंध है यदि तुम यह न बताओ[5] ।

सूर और नरसिंह ने कृष्ण के बहुनायकत्व का वर्णन अनेक पदों में किया है। एक ही ब्रह्म एक ही समय अनेक जीवात्माओं में निवास करता है—यही रूपक इन पदों में निहित है, जिससे लौकिक लीला भी अलौकिक, तथा शृंगार-लीला भी दिव्य लीला बन कर आध्यात्मिक अभिप्राय को अभिव्यक्त करती है। नरसिंह के कृष्ण तो राधा से कहते भी हैं कि 'सुनो नारी, हम ब्रह्मचारी हैं। हमें कोई विरला ही जानता है।

---

१ "मागे भाग्यनिध भामनी कोण, जोवा सरखी अंगोअंग सजनी ।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ २०४, पद १३८ ।

२ "जूठा-जूठा म बोलाश जाण्यु तारी वात ;
नीशा वशी रमी नाहाशी आव्यो छे प्रभात ।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ २०४, पद १३८ ।

३ "तहंइ जाहु जहं रैनि हुते ।
काह दुराव करत मनमोहन, पिटे चिह्न नहिं अंग जु ते ।।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १०८८, पद ३१२२ ।

४ "आए (लाल) जामिनि जागे भोर ।
नील कलेवर कोमल उर पर गड़ि गए कुच जु कठोर ।
निसि बसि रहि मानिनी के गृह, अब आए इहि ओर ।
सूरदास प्रभु बचन बनावत, चोरत हौ मन मोर ।।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १०९१, पद ३१३१ ।

५ "तुम रीझे की उनहि रिझाए ।
हा हा पिय यह प्रगट सुनावो, कोटिक सौंह दिवाए ।।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १०९२, पद ३१३५ ।

वेद भी मेरा भेद नही जानते[1]। यहाँ नरसिंह के शृंगार मे अध्यात्म अभिधा मे ही उत्तर आया है।

सूर और नरसिंह के समस्त सयोग शृंगार वर्णन की तुलना करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि लौकिक होते हुए भी यह अलौकिक और दिव्य है, रस के सभी अंगों का इसमे निर्वाह हुआ है, सरसता, मधुरता और सजीवता की पूर्ण रूप से रक्षा हुई है, तथा मौलिकता भी यथावकाश बराबर प्रस्फुटित हुई है। यदि कुछ अंतर है तो वह यही कि सूर मे कल्पना-शीलता और अलकार-प्रियता अपेक्षाकृत, विशेष रूप से पाई जाती है, जिसके फलस्वरूप उनके पदो मे काव्यत्व का पूर्ण प्रस्फुटन एव चरम विकास दिखलाई देता है।

सूर और नरसिंह का वियोग-वर्णन

आचार्यों ने शृङ्गार के सयोगपक्ष की अपेक्षा वियोगपक्ष को अधिक महत्वपूर्ण माना है। इसका कारण यह है कि वियोग स्नेह-स्वर्ण के लिए कसौटी-सदृश होता है। जब हम सूरदास और नरसिंह मेहता के विप्रलभ शृङ्गार पर विचार करते हैं तब हम स्पष्ट देखते हैं कि सूर का विप्रलभ शृगार तो उनके सयोग शृङ्गार से भी अधिक सुन्दर एव मर्मस्पर्शी है, किन्तु नरसिंह का विप्रलभ शृगार अपेक्षाकृत परिमाण मे भी अति अल्प है और प्रभाव मे भी सूर से कम मार्मिक है। सूर अपने को विप्रलभ शृगार का अद्वितीय कवि सिद्ध करते है। गोपियो की वियोगदशा का सूर का धारा-प्रवाह वर्णन हमारे सम्मुख वियोगजन्य नाना प्रकार की मानसिक दशाओ के मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है। "सयोग और वियोग दो अग होने से शृगार की व्यापकता बहुत अधिक होती है और इसी लिए वह रसराज कहलाता है। इस दृष्टि से यदि सूरदास को हम रससागर कहें तो बेखटके कह सकते हैं[2]।" सूर मे वियोग का सफल चित्रण है। इस क्षेत्र मे भी सूर की समता करने वाला, विरह-वेदना का इतना विस्तृत और गभीर अनुभव करने वाला कोई कवि नही दिखाई पडता[3]।

नरसिंह ने वियोगपक्ष का चित्रण अधिक विस्तार से नही किया है इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण यही है कि गोपी-भाव से कृष्ण की भक्ति मे निमग्न रहने वाला

---

१ "पुरुष तमो नारी अमो ब्रह्मचारी, अपने तो कंई पण जाणे रे;
वेद भेद लहे नही मारो . ... "
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
— पृष्ठ २६६, पद ७।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'त्रिवेणी', पृष्ठ ६५।

३ डा० मुन्शीराम शर्मा, 'सूरसौरभ', पृष्ठ २४८।

उनका हृदय कृष्ण के सयोग का आनद ही अधिक अनुभव करना चाहता था, वियोग के दुःख का नही। तब भी उन्होंने 'गोविन्द गमन' नामक रचना मे कृष्ण के मथुरा-गमन के लिए प्रस्थान करने पर राधा और गोपियो की तीव्र वेदना का मर्माहत कर देने वाला चित्र प्रस्तुत किया है। 'शृंगार माला' नामक रचना मे भी इने-गिने पद विप्रलभ शृंगार के मिलते हैं। नरसिंह मेहता का विप्रलभ शृंगार न तो सूर के विप्रलभ शृङ्गार के समान विस्तृत है और न तो व्यापक है, किन्तु जितना है उतना अतलस्पर्शी एव मार्मिक अवश्य है। 'गोविन्द गमन' मे उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा का 'सुरत सग्राम' के समान सुन्दर परिचय दिया है। तैंतीस पदो की इस रचना मे क्रमबद्धता भी पाई जाती है। जब अक्रूर ने कृष्ण और बलराम को रथ मे बिठा कर रथ चलाया तो ब्रज की सीमा पर उन्होंने राधा और गोपियो को व्यूह बना कर खडी हुई देखा। दो कोस तक मार्ग रोकने वाली सात पक्तियों का व्यूह उन सबने बनाया था[१]। कृष्ण ने अक्रूर से कहा कि "यदि तुम रथ चलाने मे निपुण हो तो इन गोपियो से बचा कर रथ को दौडा दो।" अक्रूर ने रथ को चक्राकार घुमा कर गोपियो को भ्रम मे डाल कर पवनगति से रथ दौडा दिया। गोपियो ने पीछा किया और वे वैसे दौडी, जैसे समुद्र को मिलने नदियाँ तीव्र गति से दौडती हैं[२]। वे सब मन मे इस दृढ निश्चय के साथ दौडती रही कि जीव चला जाय तो कोई बात नही, किन्तु 'जीवन' को—कृष्ण को नही जाने देंगी[३]। किसी ने घोडे की लगाम को पकड लिया तो किसी ने रथ को। तब भी जब अक्रूर ने रथ नही रोका तो राधा ने रथ के चक्र की कील निकाल ली[४]। चक्र के निकल जाने पर रथ, अक्रूर और कृष्ण बलराम सब भूमि पर आ गिरे। 'मारो, बाँधो'

---

१ "व्यूह रचना रची सहु ऊभी, जेणे मात सामुने घर्णा दुर्भी ?
बे कोश लगी आडी सात, काछडावाली ऊभी लारो लार।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ६८, पद २२।

२ "महासागर ने मलवा जेवी नदि पूर्ण त्वराए चाले।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ६६, पद २४।

३ "जीव जाय तो जाय भले, पण जीवण न जावा दइये।"
— वही, पृष्ठ ६६, पद २४।

४ "एवे राधा ने एक मन मूकी, तपाता चक्रनी र्खीली काढी।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य समह',
पृष्ठ ६३, पद २४।

कह कर गोपियो ने अक्रूर को रथ से बाँध लिया[1]। कृष्ण, राधा और गोपियों को समझाते हैं कि ऐसा करना ठीक नहीं। वे सब तो कृष्ण को वैसे ही घेर लेती हैं जैसे मधु के छत्ते को मधु-मक्षिकाएँ घेर लेती हैं। कृष्ण कहते हैं कि 'मैं कल तो आ भी जाऊँगा। इस समय मुझे जल्दी से जाने दो।' राधा और गोपियाँ कहती हैं कि 'हम आपको तभी जाने देंगी, जब आप हमारे साथ कुंज मे चल कर हमे चुंबन, आलिंगन, परिरंभण इत्यादि का सुख दें।' कृष्ण कहते है कि 'रथ से गिरने से मेरे पैर मे चोट आई है, मुझसे चला तो क्या, उठा तक नही जा सकता है।' तब वे सब कहती हैं कि 'आपके लिए हम आप जो वाहन कहे वह लाने को तैयार हैं।' कृष्ण सोच कर कहते हैं कि 'यदि हाथी का वाहन हो तो मैं चल सकता हूँ।' उन्होंने सोचा होगा कि ये सब हाथी कहाँ से लायेंगी ?

यहीं उन्होने एक मौलिक एव विलक्षण कल्पना प्रस्तुत की है। राधा कहती है कि यदि हाथी ही चाहिए तो लीजिए हाथी प्रस्तुत है। उन्होंने चार गोपियो को हाथी के चार पैर बना कर, दो को उन पर सुला कर पीठ की रचना की, दो को पेट का रूप देने बीच मे सुला दिया तथा चद्रभागा को पीछे पूँछ बना कर खड़ा किया। इसके बाद उन्होंने कृष्ण से कहा कि "लीजिये, हाथी यह रहा, विराजिये।" कृष्ण ने कहा कि "हाथी का मुख, हाथी की सूंड और हाथी के दाँत कहाँ हैं? बिना कुम्भ-स्थल के इस हाथी से हृदय प्रसन्न नही होता।" 'वैसा हाथी भी प्रस्तुत है' कह कर राधा हाथी की बनी हुई पीठ पर चित्त सो गई और तब उनकी उन्मुक्त वेनी सूंड बन गई, दोनो गोरे हाथ हस्तिदत हो गए, दोनो पुष्ट स्तन कुभस्थल हो गए और इस प्रकार बना हुआ हाथी गडस्थल से अति स्थूल था। कृष्ण ने तब अकुश के बिना हाथी पर बैठने से इन्कार किया। राधा ने उत्तर दिया कि हम सब के प्रेम का सार-रूप अकुश लीजिए जो मृदु से मृदु और कठोर से कठोर है। गोपियो को सतुष्ट करने के लिए, उन्हे अतिम सुख देने के लिए प्रेमाकुश धारण करके कृष्ण इस विचित्र गज पर विराजमान हुए, जिस दृश्य को देवों ने स्वर्ग से देखा। वायुवेग से उस गज ने कुंज की ओर प्रस्थान किया। कुंज मे पहुँचने पर गोपियो ने कहा कि अब हम आपको नहीं जाने देंगी। कृष्ण ने बहुत समझाया बुझाया और राधा से प्रार्थना की कि हमे जाने दो। तब राधा ने कहा कि पहले रास खेलिए और इसके बाद भी तभी जा सकते हैं, जब कि आप अपने पिता की शपथ ले कर लौटने का वचन दें। कृष्ण ने विवश हो कर

---

१ "मारो बांधो शब्द करती, पांच सात गोपी धाई,
रथनी ऊंध दारो बांध्या, वसुदेवना जे भाई।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ६१, पद २४।

शर्त स्वीकार कर ली और अत्यत सुन्दर रास-रस पान कराने के उपरात वे 'शीघ्र लौट आना, शीघ्र लौट आना' ऐसे गोपी-वचन सुनते हुए रथ मे बैठ कर विदा हुए। विदा होते हुए कृष्ण को देर तक देखते रहने की इच्छा से वे सब वृक्ष पर चढती हैं, बाद मे ऊँची से ऊँची डालियो तक पहुँचती हैं तथा अत मे ताड के ऊँचे वृक्षो पर चढती हैं। जब वहाँ से भी कृष्ण दिखाई देते बन्द हुए तब निराश हो कर राधा और गोपियाँ एकदम वृक्षो की ऊँचाई से धडाम से पृथ्वी पर गिर पडी। मायावी माधव तो माया से निर्लिप्त रहते हैं, किन्तु मायिक जीवो की दशा कितनी दयनीय हुई[1] ?"

---

१ "राधा वह हरि हाथी ज जोइए, त्यो आ रह्यो हरि हाथी रे;
राधा ए रचना करी सुदर, हाथी कीधो सखी ले साथी रे।
चार सखी चार पाद थइ, बे पीठने ठामे सूती रे;
पेट पोल करवा बबे वाजु, एम एम एक तो खूती रे।
पृठ भागने पुछ्छ थइ, चद्रभागा जे नारी रे,
हरिने वह हस्ती हुओ, विरानीए मुरलाधारी रे।
कृष्ण वह नासा रहित गन, एना दरानवदन कीया रे;
कुभ थल रहित गन निरखी, प्रसन्न केम थाय हिया रे।
राधा कहे म्वो गन आणु, पछे रखे वाकु काढो रे;
एम कही राधा ग्द ऊपर, खाला जगाए सती चती रे।
छूटी वेणी शुढाकार बनी रहा, अर्ध हस्त दतुशालवनी रे;
कुमस्थलने स्थानक कुच बे, हरतो गन्दथनलथी अति स्थूल रे।
राधा कहे हरि विरानीए, हस्ती सज थइ ऊभो रे;
कृष्ण कहे अकुश विण न बेसु, राधा कहे हरि वा दुभो रे।
कठिणमा कठिण मृदुमा मृद, एवो अकुश कीधो रे;
सर्व अग मेगो करी घडियो, पछे अकुश हरिने दाधो रे।
गोपी मन मनावा कारण, दिलवेलु सुग देवा रे;
प्रेमाकुश पकडी गजे चढिया, नरखे स्वर्ग देवा रे।
....
वाजुवट ते हस्ती चाल्यो, ऊभो कुन नी माय,
..
गोपी केड न मूकु रे, मारा कथनी
. ...
राधा बोल्या रे, सुणिये नाथनी रे, रमो रासने वलती जाव;
वापना सम खाओ रे, के काले आवशुरे, वली तहीं नहीं करिये कुभाव।
मारग नव लह्यो रे त्यारे हा कर्यो रे, पछी आरम्भो त्या रास;
. .. .
वहेला आवजो, वहेल आवजो, एम गोपी मणती जी

'गोविंद गमन' का यह प्रसंग नरसिंह की मौलिक कल्पना का परिचायक है। मथुरा जाने से पूर्व कृष्ण का राधा और गोपियों को प्रसन्न करने के लिए वृज में जा कर रास खेलने का वर्णन सूर ने नहीं किया है और भागवतकार ने भी नहीं किया है। इसके अतिरिक्त राधा और गोपियों से बने हुए इस विचित्र हाथी पर बैठ कर कृष्ण का वृज की ओर प्रस्थान करना भी अत्यंत मौलिक वर्णन है। नरसिंह की कल्पना-शक्ति इस नवीन प्रसंग योजना के द्वारा एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करती है, जिसमें उनकी मौलिक प्रतिमा पूर्णरूपेण प्रस्फुटित होती है।

'गोविंद गमन' में उपलब्ध होने वाला नरसिंह का विरह-वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी मार्मिक है इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु सूर के विप्रलंभ शृंगार की गहराई, सूक्ष्मता और सरसतायुक्त हृदयस्पर्शिता का नरसिंह में प्रायः अभाव सा है। उनका विरह-वर्णन बड़ा सीधा-सादा है। उनकी राधा और गोपियों में सूर की गोपियों के जैसी वाग्विदग्धता भी नहीं है।

कृष्ण के मथुरा जाने का संवाद पा कर नरसिंह की गोपियाँ कैसी हो गई जैसे बाघ को देख कर अजा भयभीत हो जाती है।[1] सूर की गोपियाँ तो यह संवाद पा कर चित्रवत् हो जाती हैं, उनके नेत्र स्थिर हो जाते हैं, दृष्टि एकटक देखती रह जाती है, पुकारने पर भी सुनती नहीं हैं और देह की सुध-बुध भी बिसार देती है[2]।" सूर और नरसिंह के इस एक ही दृश्य के वर्णन में यह स्पष्ट दिखाई देता है

... .
जेवा तेवा हरि दीसशे रे, चालो चाढये ऊंची टाल
जेम जेम हरि जाय छे रे, तेम तेम ऊंची चढती बाल
....
ते जव नव लही रे, ताड चली सर्वे बाल
ताड थी दीसता रह्या रे, के वृक्षथी पडी थई निराश
....
माधव ने माथा लोपे नहीं, पण मायिक जीवना शा डाल।"

— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह, पृष्ठ ७० से ७३, पद २६ से ३१।

१ "कृष्ण जवा नु साभलयु ज्यारे गोपियोए ज्यारे जी;
वाघ देखी अजा जेवी तेम थई स्त्रियो त्यारे जी।"

— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ५७, पद १।

२ "चलत जानि चितवति ब्रज-जुवती, मानहु लिखी चितेरें।
जहा सु तहा एकटक रहि गई, फिरत न लोचन फेरें॥
बिसरि गई गति भाति देह की, सुनति न स्रवननि टेरें।"

— 'सूरसागर', पृष्ठ १२६६, पद ३५७८।

कि सूर की शैली नरसिंह की अपेक्षा बड़ी ही चित्रात्मक और सरस है।

सूर ने कृष्ण के मथुरागमन के समय की गोपों की स्थिति का वर्णन "सब ग्वाल सखा व्याकुल हो गए" इतना ही किया है, किंतु नरसिंह तो लिखते हैं कि "जब गोपों को यह समाचार मिला तो उन्होंने अक्रूर को मारने का निश्चय किया[१]।" यद्यपि सूर ने 'भ्रमरगीत' के अंतर्गत कृष्ण के विरह में होनेवाली गायों की दयनीय दशा का वर्णन अवश्य किया है, तथापि नरसिंह के समान कृष्ण के मथुरा जाते समय की गायों की दु:खी स्थिति का वर्णन किया है। नरसिंह का यह वर्णन उनके पशुप्रकृति संबंधी ज्ञान का परिचायक है। वे कहते है कि 'जब गायों को, चहल-पहल से, कृष्ण के जाने का ज्ञान हो गया, तब वे जोर-जोर से हूँकने लगी और अपने बंधन तोड़ कर कृष्ण के पास दौड़ कर उन्हें घेर लिया। गायों के प्रेम को देख कर कृष्ण गौशाला में गए और अपने कोमल हाथ गायों की पीठ पर सहला कर रोती और हूँकती हुई गायों को रिझा कर आगे बढे[२]।' इस वर्णन में कितनी स्वाभाविकता है! नरसिंह ने कृष्ण के गोपाल रूप का, इस प्रकारके चित्रण द्वारा पूर्ण निर्वाह किया है। सूर यह चूक गए हैं। सूर का गायों के विरह-दुःख का वर्णन गोपी के मुख से उद्धव को संदेशा देते समय हुआ है, कृष्ण के मथुरा जाते समय नहीं। उनके कृष्ण का गायों की ओर ध्यान ही नही जाता। गोपी कहती है कि 'हे उद्धव, इतना जा कर हमारे प्रिय को कहना कि तुम्हारे बिना ये गायें भी परम दु:खी हो कर कृशगात हो रही हैं। उनकी आँखो से आँसू बरसते रहते हैं और हूँक-हूँक कर मानों वे आपका नाम ले रही हैं। जहाँ-जहाँ आपने गोदोहन किया था वहाँ-वहाँ उन स्थलो को सूँघ कर आपकी खोज करती रहती हैं। आपको न पा कर

---

१३३ "वली त्यां गोपसखाए जाण्य् गमन जी,
तिणे तो अक्रूर मारवानुं कीधु मन जी।"
—इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ५७, पद ३।

१३४ "गायोए जावान् जाण्युं रे, मोटा हिंसारवा कीधा तारे रे।
तोडी वरेडुं गौशाला फोडांरे, नीकली गायोनी घणी जोडी रे;
धेनुमें म निरखियो नाथे रे, पेठी गौशालामा अक्रूर साथे रे।
आवी गायोए गोविंद घेरया रे; हरिए वाराफरती कर फेर्या रे;
चक्षुथी चौधारे अश्रु सरतां रे, बां-बां शब्द वाढ्रुं करता रे।
....
कमलकर पीठ ऊपर धरी रे; गायो रीझनी नीकलया हरि रे।"
—इ. सू. देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ६७, पद २१।

पछाड़े खा कर गिरती हैं और उनकी स्थिति ऐसी ही है जैसे पानी के बाहर मछली होती है[१]। सूर का यह वर्णन अतीव मर्मस्पर्शी है और उनके पशु-प्रकृति-ज्ञान परिचायक है।

यद्यपि सूर की गोपियाँ कृष्ण के मथुरागमन का संवाद पा कर उद्विग्न अव हो जाती हैं, तथापि नरसिंह की गोपियाँ तो निश्चय करती हैं कि "लाज-मर्यादा भंग करके भी हम कृष्ण को नहीं जाने देंगी[२]।" सूर का गोपियों की उद्विग्न का वर्णन अत्यंत मर्माहत करने वाला है। वे कहते हैं कि "मधु के छत्ते से म निकाल देने पर मधुमक्खियों की जैसी स्थिति होती है, वैसी ही गोपियों की स्थि हुई[३]।" नरसिंह की गोपियाँ तो कृष्ण के मथुरा जाने का समाचार सुन क कहती हैं कि "जो दो बाप की होगी वही जीवित रहेंगी[४]।" सबके कहने पर रा पत्र लिखती हैं, जिसे गोपी स्वरूपा नरसिंह ले जाते हैं[५]। पत्र में यह लिखा गय कि "जहाँ आप जाएँगे वहीं हम भी आवेंगी तथा नरसिंह को साथ ले कर-हम वहाँ त अवश्य आवेंगी जहाँ आप विश्राम करेंगे[६]।" कृष्ण ने पत्र के प्रत्युत्तर में य

---

१ "ऊधौ इतनी कहियौ जाइ।
अति कृसगात भईं ये तुम बिना परमदुखारी गाइं॥
जल समूह बरषति दोउ अखियाँ, हूकति लीन्हें नाउं।
जहा-जहा गोदोहन कीन्हौ, सूँघति सोइ ठाउं॥
परति पछार खाइ छिन हो छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मान हु सूर काढ़ि डारि है, वारि मध्य लैं मीन॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १६१२, पद ४६८८।

२ "लाज मरजादा मूकीये पण, हरि न जावा दीजिए।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ५८, पद ४।

३ "मधु छड़ाइ, सुफलक सुत लै गए ज्यौं माखी बिललात।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२८१, पद ३६१६।

४ "वे बापनो होय ते जीवे, एने अरथे तजवी काय जी।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६५, पद १७।

५ "*कमल पत्र पर स्वामिनी लखे, त्यां गोपिका देवी स्हायजी ;*
पत्र लई जनार न कोई, त्यां नरसइ-सखी सज थाय जी।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६५, पद १७।

६ "वली निश्चे मनमा कर्युं, आव् जाओ ते गाम ;
....
नरसैंमने साथे लई आवशु, ज्योहां करशो विश्राम।"
— इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६६, पद १८।

संदेशा भिजवाया कि "हम ब्रज के बाहर कुंज में मिलेंगे[१]। राधा का पत्र लिखना तथा कृष्ण का कुंज में मिलने का संदेशा भेजना—यह सब नरसिंह की अपनी मौलिक कल्पना है। उनका गोपी-हृदय वियोग की स्थिति में भी संयोग के सुख की कामना करता है। मथुरा जाने से पूर्व राधा और गोपियों को कृष्ण से कुंज में मिलाये बिना वे नहीं रह सके हैं। सूर में इस प्रकार का वर्णन नहीं मिलता है। नरसिंह का यह सब वर्णन[२] जितना मौलिक है, उतना ही मार्मिक भी है। एक और भी ध्यान देने योग्य अंतर सूर और नरसिंह की गोपियों में हम देखते हैं, और वह यह कि सूर की गोपियाँ प्रिय के वश में हैं, जबकि नरसिंह की गोपियाँ प्रेम के वश में हैं। सूर ने इस प्रकार की अंतिम मिलन की कोई मौलिक प्रसंग-योजना नहीं की है। उनकी गोपियाँ मन ही मन दु:खी हो कर रह जाती हैं, बोलती भी हैं तो आपस में ही कि "अब हम कैसे जीवित रहेंगी ?" रथ चलने पर वे सोचती हैं कि "हम न तो रथ के अंग बनी न ही धूलकण बनी, अन्यथा उनके साथ जाती[३]।" सबकी सब ब्रज-बालाएँ मुरझा पड़ी—यह वर्णन भी बड़ा चित्रात्मक और मार्मिक है।

कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद का गोपियों का विरह-वर्णन नरसिंह की 'शृंगार माला' नामक रचना में केवल कुछ इने-गिने पदों में ही मिलता है। गोपियों के द्वारा नेत्रों के अश्रु पोंछते-पोंछते पलकों के झड़-जाने का उनका वर्णन[४] अतीव मर्मस्पर्शी है। सूर ने गोपियों के विरह-वर्णन सम्बन्धी सैकड़ों पद लिखे हैं। अब कृष्ण के बिना गोपियों को भवन भयानक लगता है, रात-रात भर नींद नहीं आती है और तारे गिन कर तथा कृष्ण का नाम रट कर रात बिताती हैं[५]। वे अपने निर्लज्ज प्राण को कोसती हैं कि 'तुम कृष्ण के बिछड़ने पर शरीर से निकल

---

१ "दूतीने दयाले मोकली, जाओ अमोरे भलण ;
... .कुंजनी वाटें मण्ठण ।"
— 'इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६६, पद १६।

२ देखिए पृष्ठ (प्रबंध का) नं० (१५५-१५६)।

३ "................ .... भई न रथ के अंग
धूरि न भई चरन लपटाती, जाती उहै लौं संग।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२८१, पद ३६१७।

४ "पांपणीओ टरी गईं छेरे, आंसुडां लोहीने।"
— 'इच्छाराम सूर्यराम देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४०३, पद ५३१।

५ "आजु रैनि नहिं नींद परी।
जागत गिनत गगनके तारे, रसना रटत गोविंद हरी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२८२, पद ३६२२।

क्यों नही गये[1] ?' वे पछताती हैं कि तब वृथा लज्जा अनुभव करके हमने रथ को रोका नही और यह दुसह वियोग दुःख प्राप्त किया[2]।

सूर ने विरह व्यथा का अत्यत व्यापक रूप मे वर्णन किया है। अनत सौंदर्य का मधुर सान्निध्य सर्वदा अनुभव करने वाला समस्त ब्रज, क्या जड और क्या चेतन, क्या पशु और क्या मानव, सबके सब विरहाग्नि मे जल रहे हैं। गोपियाँ ऐसा अनुभव करती है कि जबसे कृष्ण गए तब से ब्रज के सब आनद मिट गए और जैसे ब्रज की भाग्य सपत्ति ही छीन ली गई। गायें भी कृष्ण के वियोग मे न तो तृण या कद खाती हैं और न ही दूध देती हैं[3]। पशु-पक्षी, द्रुम-बेलो सबके सब बिना कृष्ण के विरह व्याकुल है। मुरली का मधुर सगीत सुनने के अभ्यस्त मृग अब तृण-फल कुछ भी नहीं खाते हैं और कृशगात होते जाते हैं। वन के कीर-कोयल आदि पक्षी कृष्ण के विरह मे बिलख रहे हैं। जिन लताओ का कृष्ण अपने करपल्लव से स्पर्श करते थे वे सब सूख-सूख कर मुरझाने लगी हैं। अत मे गोपियाँ कहती हैं कि हमारे मदनमोहन के बिना एक एक पल भी युग के समान दीर्घ हो गया है[4]।

सयोगावस्था मे सुखदायी अनुभव होने वाली वस्तुओ का वियोगावस्था मे दुःखदायी अनुभव होना स्वाभाविक है। कृष्ण से सयुक्त रहने की स्थिति मे ज

---

१ "हरि बिछुरत प्रान निलज्ज रहे री।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२८३, पद ३६२४।

२ "सबै अजान भई तिहिं औसर, काहू रथ न गह्यो।
सूरदास प्रभु लाज करि, दुसह वियोग लह्यो॥'
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२८१, पद ३६१८।

३ "तबतैं मिटे सबै आनद।
या ब्रजके सब भागसपदा, लैगु गए नद नद॥

धेनु नहीं पय स्रवति रुचिर मुख, चरति नहीं तृणकद।"
— 'सूरसागर, पृष्ठ १३३७-१३३८, पद ३७७५।

४ "अब तो पसुपच्छी द्रुमबेली, बिनु देखे अकुलात।

वे न मृगा तृन चरत उदर भरि, भए रहत कृस गात॥
.. ..
वे खग बिपिन अधीर कीर पिक, डोलत हैं बिलखात॥
जिन बेलिन परसत कर पल्लव, अति अनुराग चुचात।

सूरनदास मदनमोहन बिनु, जुग सम पल छन जात।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३५१, पद ३-१६।

मधुवन गोपियों को प्यारा लगता था, वही अब अप्रिय लगता है और वे कहती हैं कि "मधुवन तुम क्यों हरे-भरे रहते हो ? श्यामसुन्दर के विरह और वियोग में तुम खड़े ही खड़े जल क्यों नहीं गए ? यहाँ आ कर मुरली-वादन करने वाले कृष्ण के न रहने पर भी तुम फिर-फिर पुष्प धारण करते हो ? कृष्ण के विरह-दावानल में तुम नखशिख जल क्यों नहीं गए[1] ।" गोपियाँ जानती हैं कि गोकुल वही है, लोग वे ही हैं, यमुना तट भी वही है, वन वही है और वसंत भी वही है । किन्तु कृष्ण के न रहने पर वही सुखदायी वसंत जला जा रहा है[2] । .... चातक और कोयल का मधुर रव सुनना भी अब उन्हें सह्य नहीं है[3] ।.. ...... बादल मानो विरहिणी का वध करने आए हैं[4] ।...........वर्षा की बूँदें उन्हें तप्त और असह्य अनुभव होती हैं[5] । ....शरत्पूर्णिमा की रात्रि भी उन्हें आग-सी लगती है[6] ।....... ......चन्द्र भी विरहिणी के दुःख को दुगना करने के लिए ही मानों प्राची दिशा में प्रकट किया जाता है[7] । .. ..अब सभी ऋतुएँ उन्हें और प्रकार की लगती हैं । व्रजराज कृष्ण

---

१ "मधुबन तुम कत रहत हरे ?
बिरह बियोग स्यामसुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे ?
मोहन बेनु बजावत तुम तर, साखा टेकि खरे ।
....
वह चितवनि तू मन न धरत है, फिरि-फिरि पुहुप धरे ।
सूरदास प्रभु विरह दवानल, नखसिख लौं न जरे ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३५३, पद ३८२८ ।

२ "वहै गोकुल, लोग वेई, वहै जमुना ठाम ।
वहै गृह जिहि सकल संपति, वन भयौ सोइ धाम ।।
वहै रतिपति अछत स्यामहि, दहन लाग्यौ काम ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३५३, पद ३८२६ ।

३ "चातक पिक बचन सरसं, सुनि न परत कान ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३५४, पद ३८३० ।

४ "बदरिया बधन बिरहिनी आई ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३८१, पद ३६२४ ।

५ "विषम बूँद तातै री, सहि नहिं जाई ।।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३८५, पद ३६३५ ।

६ "सरद निसा अनल भई . .. ."
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३६३, पद ३६६२ ।

७ "या बिनु होत कहा अब सूनौ ।
लैकिन प्रगट कियौ प्राची दिसि, बिरहिनि कौ दुख दूनौ ।।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३६६, पद ३६७३ ।

के बिना सब कुछ उन्हें फीका लगता है। वर्षा में बादलों को देखकर नेत्रों में प्रसन्नता के बदले अश्रुधारा उमड़ पड़ती है, शिशिर में हृदयकमल ही ठिठुर जाता है, वसंत में तन की विरहवेली सब सुखों को दुःखों के रूप में पल्लवित और पुष्पित करती है[1] ......पहले शीतलता का सुख देनेवाली कुंजलताएँ अब अनलपुंज हो जाती हैं[2]।

ये सारे वर्णन विरहिणी गोपियों के हृदय की व्यथा-वेदना को मानो मार्मिकता के मोम से साकार करते हैं। विरहवर्णन की सूरदास की शैली इतनी मर्माहत कर देने वाली है कि उनके संबंध में प्रसिद्ध ऐसी निम्न उक्ति लोकोक्ति यथार्थ प्रतीत होती है—

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर को पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, बेध्यो सकल सरीर॥"

यद्यपि कहीं-कहीं ऊहात्मक उक्तियाँ उन्होंने अवश्य कही है, तथापि स्वाभाविकता का निर्वाह उन्होंने अपने अधिकांश पदों में बराबर किया है। इसीलिए इनका विरह-वर्णन इतना सजीव, इतना प्रभावोत्पादक और इतना करुण प्रतीत होता है। प्रिय के अभाव में पहले की सारी वस्तुएँ अप्रिय अनुभव होने लगती हैं इसके पचासों श्रेष्ठ और मार्मिक उदाहरण गोपियों के विरह-वर्णन में मिलते हैं।

अब तक कृष्ण के रूप-रस का पान करते हुए कभी न अघाने वाले तथा लाज-लकुट से भी न डरने वाले और पलक-कपाट तोड़ कर भी कृष्ण के पास चले जाने वाले नेत्रों को भी वे भला-बुरा कहती हैं। वे कहती हैं कि 'ब्रजराज कृष्ण के बिछुड़ने पर उनके संग ही संग श्याममय होकर उड़ न जाने वाले इन नेत्रों पर से अब विश्वास उठ गया है। अपने को रूप रस लालची कहलाते थे, किन्तु करनी ऐसी बिलकुल नहीं

---

१ "सबैरितु औरै लागति आहि।
सुनि सखि वा ब्रजराज बिना सब, फीकी लागत चाहि॥
वै घन देखि नैन बरषत हैं, पावस गये सिरात।
....
सिसिर विकल कापत जु कमल उर सुमिरि स्याम रस भोग॥
निरखि बसंत विरह बेली तन, वे सुख दुख ह्वै फूलत॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३५३, पद २६६२।

२ "बिनु गुपाल बैरिनि भई कुंजैं।
तब ये लता लगति तन सीतल, अब भईं विषम अनल की पुंजैं॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १६१२, पद ४६८६।

की। सचमुच ये नेत्र क्रूर और कुटिल हैं[1]। ...अपने को चकोर, भौंरा, खजन, मृग इत्यादि कहलाने वाले ये नेत्र कृष्ण के मुखचन्द्र के बिना भी जीवित हैं, कृष्ण-मुखरूपी कमल के बिछुड़ा पर भी व्यर्थ यहाँ ठहर हैं, मनरजन के चले जाने पर भी पंख पसार कर उनके पास उड़ कर चले नहीं जाते तथा उद्धव रूपी व्याध के आने पर भी उनसे बचने के लिए नहीं भागते हैं। व्रजलोचन कृष्ण के बिना भी लोचन बन रहे हैं इससे तो दुःख प्रतिक्षण बढ़ता रहता है[2]।

ऐसे स्थलों पर सूर मार्मिकता के साथ अपनी कल्पनाशीलता भी मनोहर रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

वर्षा ऋतु में तो गोपियों की विरहवेदना रूपी सरिता में मानो बाढ़ आती है। वे कृष्ण से कहती हैं कि "चातक और पिक की पीर को पहचान कर अपने समय पर बादल भी आ गए, किन्तु तुम नहीं आए[3]।" वर्षा ऋतु उन्हें कृष्ण का दर्शन भी करा देती है। इन्द्रधनुष मानो कृष्ण का पीतांबर है, बिजली मानो कृष्ण की दन्तद्युति है तथा बकपंक्ति मानो मुक्तामाला है तथा काले बादल उनका सुंदर

---

१ "बिछुरत श्रीव्रजराज आजु, इन नैननि की परतीति गई।
उड़ि न गए हरि संग तबहिं तें, ह्वै न गए सखि स्याममई॥
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछुवै न भई।
साँचे क्रूर कुटिल ये लोचन ..."
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२८०, पद ३६१४।

२ 'कहे चकोर, मुख बिधु बिनु जीवन, भँवर न तहँ न उड़ि जात।
हरि मुख-कमल-कोस बिछुरे तें ठाले क्यों ठहरात॥
खंजन मनरंजन जन जौ पै कबहुँ नाहिं सतरात।
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात॥
ऊधौ बाधक ब्याध ह्वै आए, मृग सम क्यों न पलात।
...
व्रज लोचन बिनु लोचन कैसे, प्रति छिन अति दुख बाढ़त॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १४६१, पद ४१६०।

३ 'बहुरि बदरौ बरसन आए।
अपनी अवधि जानि नंदनंदन, गरजि गगन घन छाए।
.. ..
चातक पिक की पीर जानि कै, तेउ तहाँ तैं धाए॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३८२, पद ३६२६।

शरीर है । . इस प्रकार कृष्ण का स्मरण करके ब्रजवनिताएँ विकल हो रही हैं[१] । गोपियाँ कहती हैं कि वर्षा ऋतु आई, पर हरि न आए[२] । ये इतने निष्ठुर हैं कि स्वय तो नही आए तो कोई बात नहीं, पर सदेशा तक नही भिजवाया । ..इन्होंने तो हमारे नेत्रो म ही आंसू की झड़ी लगा दी है[३] ।...जब से श्याम गए हैं तब से वर्षा ऋतु नेत्रो मे आ बसी है, जिसके कारण रात-दिन नेत्र आंसू बरसाते रहते हैं ।[४]

वर्षा ऋतु मे तो बादल और नेत्र दोनो बरसते हैं, किन्तु कृष्ण के अभाव मे नेत्र तो सदा अश्रुधारा बरसाते हैं और इस प्रकार वर्षा ऋतु सब ऋतुओ मे साथ नही छोडती यह वर्णन गोपियो के अश्रुप्लावित नेत्रो का हृदय-विदारक चित्र हमारे नेत्रो के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है ।

विरह-व्याकुल गोपियाँ कभी तो पपीहे को प्रिय का स्मरण कराकर दुख बढाने वाला समझती हैं और भला-बुरा कहने लगती हैं — 'वैसे ही मैं तो मोहन के विरह मे जली जा रही हूं । अब तू और क्या जलाता' है ? अरे पापी पपीहे, आधी रात को 'पिउ पिउ क्यो पुकारता है[५] ?' तो कभी उसे समदुखभोगी के रूप मे

---

१ "आजु घन स्याम की अनुहारि ।
आए उनइ साँवरे सजनी, देखि रूप की आरि ॥
इद्र धनुष मनु पीतवसन छवि, दामिनि दसन बिचारि ।
जनु बगपाति माल मोतिनि की, चितवत चित्त निहारि ॥
. . . .
सूरदास गुन, सुमिरि स्याम के, विकल भई ब्रजनारि ॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३=५, पद ३६३३ ।

२ "वर्षा ऋतु आई, हरि न मिले माई ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३=५, पद ३६३५ ।

३ "ऐसे निठुर भए नंदनंदन, सदेसौ न पठायो ।
....
सूरदास के प्रभु सौं कहियो, नैननि है झर लगायो ॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३०१, पद ३६६७ ।

४ "निसि दिन बरषत नैन हमारे ।
सदा रहति बरषा रितु हम पर, जबतै स्याम सिधारे ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३६१, पद ३८५४ ।

५ "हौं तो मोहन के बिरह जरी, रे तू कत जारत ?
रे पापी तू पखि पपीहा, पिय पिय करि अधिरात पुकारत ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३११, पद ३९५१ ।

सुहृद समझकर आशीर्वाद भी देती हैं कि 'पपीहे, बहुत दिनों तक जीना'।[1] यह सब बड़ा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। कहीं-कहीं सूर ने एक ही पद में, अपनी तीव्रानुभूति तथा अपूर्व काव्य-कौशल के आधार पर, गोपियों की अभिलाषा, आवेग, व्याधि, तड़पन आदि कई हृदय द्रावक मनोदशाओं का चित्रण किया है। एक पद में गोपियाँ यह अभिलाषा करती हैं कि सुन्दर नेत्रों वाले श्याम कब लौट कर फिर से आवेंगे? लाल रंग के पुष्पों से लदी हुई डालियाँ वे कब आ कर देखेंगे? इस समय तो हमें कृष्ण के वियोग में ये लाल पुष्पों से भरी हुई डालियाँ फुलझड़ी के समान लगती हैं और पुष्पों का झड़ना अंगारों के सदृश प्रतीत होता है। अब फूल चुनने के लिए मैं नहीं जाती क्योंकि कृष्ण के बिना फूल कैसे और किस काम के? अब तो फूल त्रिशूल-सदृश लगते हैं। जब जब हम यमुना-तट पर जाती हैं तब-तब ऐसा अनुभव होता है जैसे मानो हमारे नेत्रों के नीर को ही भर कर यमुना उमड़ कर बहती है। इन नेत्रों की अश्रु धारा से तो गृह सरिता और शय्या नाव बन गई है, जिस पर बैठ कर प्रिय के समीप पहुँच जाने की इच्छा होती है। हमारे कुंजविहारी कृष्ण दौड़ कर 'क्यों नहीं आ मिलते? हमारे प्राण-प्यारे आ कर हमारे ओठों पर रहें[2]।' विरह-वर्णन में ऐसी तीव्र, गंभीर और मर्माहत कर देने वाली व्यथा का जितना सूक्ष्म और गहरा विस्तार सूर में मिलता है उतना नरसिंह में नहीं मिलता।

वर्षा ऋतु में बादलों के हट जाने पर चन्द्र की ज्योत्स्ना दिखलाई देने लगती है तो गोपियाँ कहती हैं कि प्रिय के बिना जो काली रात हमारे लिए सर्पिणी के समान

---

1 "बहुत दिन जीवौ पपिहा प्यारौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ 1361, पद 3455।

2 "नैन सलोने स्याम, बहुरि कब आवहिंगे।
वे जौ देखत राते राते, फूलनि फूली डार॥
हरि बिनु फूलझरी सी लागत, झरि झरि परत अंगार॥
फूल बिनन नहिं जाऊं सखी री, हरि बिनु कैसे फूल।
सुनि री सखि मोहिं राम दुहाई, लागत फूल त्रिसूल॥
जब मैं पनघट जाऊं सखी री, वा जमुना कैं तीर।
भरि भरि यमुना उमड़ि चलति है, इन नैननि कैं नीर॥
इन नैननि कैं नीर सखी री, सेज भई घर नाउ।
चाहत हौं ताही पै चढ़ि कै, हरि जू कैं ढिग जाऊं॥
लाल पियारे प्रान हमारे, रहे अधर पर आइ।
सूरदास प्रभु कुंज बिहारी, मिलत नहीं क्यौं धाइ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ 1372, पद 3883।

है, वह मानो बाट पर उलटी हो गई है[१]।' साँप के लिए प्रसिद्ध है कि दंश के उपरान्त यह उलट जाता है और उसका नीचे का हिस्सा कुछ सफेद होता है। सूर के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के, अलंकार-प्रयोग-कौशल के और चित्रण-चातुर्य के ऐसे तो सैंकड़ों स्थल 'सूरसागर' में मिलते हैं, जिन्हें सूरसागर के रत्न कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं। 'सूरसागर' के सैंकड़ों पद सागर के अमूल्य रत्नों के समान हैं, जिनका मूल्य कभी कम नहीं हो सकता।

एक पद में *गोपियाँ अपने विरह की तुलना ऐसी लता के साथ करती हैं* 'जो शरीर भर में फैल गई है और जिसे नेत्रों ने बोया है और जो अश्रु जल से अभिसिंचित हुई है[२]।' मीरा ने भी एक पद में गाया है कि 'अंसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई।' विरह के रोम-रोम में व्याप्त हो जाने के भाव की अभिव्यक्ति कितने सार्थक सादृश्य के माध्यम से और कितने मार्मिक रूप में हुई है ?

सूर ने राधा की विरह-व्यथा का वर्णन करने में अपनी हृद्गत तीव्रानुभूति का अद्भुत परिचय दिया है। कृष्ण के विरह में संतप्त राधा कभी हरि का स्मरण करते-करते हरिमय हो जाती है और 'राधा, राधा' कह कर राधा के लिए विरहाकुल होती हैं तो कभी-कभी कृष्ण के लिए विरह-व्यथित हो कर 'माधव-माधव' रटती रहती है। उनकी दशा उस काष्ठ के भीतर के कीड़े के समान है, जिसके दोनों छोरों पर आग लगी हो[३]। राधा की विरह-व्यथा के ऐसे तो सैंकड़ों हृदय द्रावक चित्र सूर के वियोग वर्णन में मिलते हैं।

---

१ "पिया बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कबहु जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटि है जात।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३७१, पद ३८६० ।

२ "(मेरे) नैना विरह की बेलि बई।
सींचत नैन-नीर के सजनी, मूल पताल गई॥
बिगसित लता सुभाइ आपनें, छाया सघन भई।
अब कैसें निरवारों सजनी, सब तन पसरि छई॥"
— 'सूरसागर, पृष्ठ १३६४, पद ३८६४ ।

३ "सुनौ स्याम, यह बात और कोउ क्यों समझाय कहै।
दुहु दिसि की रति विरह विरहिनी कैसे कै जो सहै॥
जब राधे, तब ही मुख 'माधौ माधौ' रटति रहै।
जब माधौ ह्वै जाति, सकल तनु राधा विरह दहै॥
उभय अग्र दव दारुकीट ज्यों सीतलताहि चहै।
सूरदास अति बिकल विरहिनी कैसेहू सुख न लहै॥"
— आचार्य राम चन्द्र शुक्ल,
'सूरदास', पृष्ठ १२६ ।

कृष्ण के वियोग में, कुब्जा के कृष्ण-सामीप्य का सुख-सौभाग्य पाने के लिए गोपियों को सौतेली डाह का अनुभव होना स्वाभाविक ही है। इस भाव को ले कर सूर ने अनेक पद लिखे हैं जिनमें सपत्न्य ज्वाला का भाव प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त हुआ है। एक पद में गोपी कहती है कि कुब्जा के करतूत तो देखो। कृष्ण के राजा हो जाने पर स्वयं पटरानी हो गई, दासी नहीं रह गई। पुरुषों को सभी स्त्रियाँ सुहाती हैं, कुब्जा होने से क्या हुआ? कृष्ण ने मानों लज्जा बेच कर खा ली है[1]।

नरसिंह मेहता ने भी दो-एक पदों में कुब्जा के प्रति गोपियों के हृदय के इस प्रकार के भाव को व्यक्त किया है। उनकी गोपियाँ कहती हैं कि 'अब हमारे स्वामी यहाँ गोकुल में क्यों आवेंगे? उन्हें तो मथुरा में मोहिनी नार मिल गई है। मथुरा में शाल-दुशाला है तथा राजसी वस्त्र हैं और यहाँ तो काला कम्बल ओढ़ना पड़ता था। इसीलिए तो गोकुल छोड़ कर मथुरा भाग गए। यहाँ तो 'ग्वाला' कहलाते थे और वहाँ राजा हो गए। अब कहो, गोकुल उन्हें कैसे अच्छा लग सकता है, जहाँ उन्हें नित्य ही गायें दुहनी पड़ती थीं। कंस की दासी कुब्जा काली, कुरूप और लंगड़ी है जिससे कृष्ण को प्रेम हो गया है। कृष्ण भी काले हैं और कुब्जा भी काली है इसलिए जोड़ी तो अच्छी बनी है। वृन्दावन की कुंज गलियों में हमें राम-रस का सुख देने वाले कृष्ण बिल्कुल निराश करके चले गए हैं[2]। इसमें नरसिंह ने गोपियों के वेदना-मिश्रित व्यंग

---

१ "देखो कूबरी के काम।
अब कहावति पाटरानी, बड़े राजा स्याम॥
कहत नहिं काउ उनहिं दासी, वै नहीं गोपाल।
वै कहावति राजकन्या, वै भए भूपाल॥
पुरुष कौं री सबै सौहैं, कूबरी किहिं काम।
सूर प्रभु कौं कहा कहिए, बेचि खाई लाज।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३३५-१३३६, पद ३७६८।

२ "ना आवे, ना आवे रे, नाथजी ना आवे,
श्रेने मथुरामा मली मोहिनी नार रे, गोकुल केम आवे। नाथजी०
मथुरामा छे सालदुशाला, जे नाना विधना वागा रे;
गोकुल मेली नासी गया, काली कामल ओढ़ता भागा। नाथजी०
आगल हुना गोवालिया, ने थया मथुराना राय रे;
वहो वाई गोकुल केम गमे, एने नित्य उठी दोहवा पडे गाय रे। नाथजी०
कंसरायनी दासी कुब्जा, कुभीने वली खोडी रे;
कालो काहनो काली कुब्जा, सरखी मली छे जोड़ी रे। नाथजी०
वृन्दावननी कुंज गलीमा, हमने रमाड्या रास रे;
नरसैयाना स्वामी हमने, करी गया छे निराश रे। नाथजी०
— इ० द० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ २८२, पद ६०।

की अभिव्यक्ति बड़े अनूठे ढंग से की है इसमें कोई सन्देह नहीं। जिस प्रकार यशोदा के देवकी को भेजे गए सन्देशे में सूर यशोदा से कहलवाते हैं कि 'मेरे कृष्ण को मक्खन-रोटी बहुत प्रिय हैं, उसी प्रकार नरसिंह की गोपियाँ कुब्जा को सन्देशा भेजती हैं कि "प्रात-काल उठ कर वे जो भी माँगे वह तत्क्षण देना। और तो कुछ नहीं, किन्तु कृष्ण को मक्खन खाने की आदत है[1]।' कृष्ण के पत्र तक न लिखने पर गोपियाँ कहती हैं कि मथुरा जाकर कृष्ण बड़े कठोर हो गए, छोटा सा पत्र भी नहीं लिखा। गोकुल में सब निन्दा करते हैं कि कृष्ण कुब्जा पर मुग्ध हैं। भला काली और कुरूप कुब्जा क्या नखरा करती होगी? चतुर हो तो समझें भी, मूर्ख को भी क्या चस्का लग गया होगा? स्वामी, आपको यह शोभा नहीं देता, नीच के साथ क्यों भटकते हैं[2]? सूर की गोपियाँ कहती हैं कि और नारी हरि को कहीं न मिली जो इस कुब्जा को स्वीकार करके लाज गँवाई? यह संग तो कौए और हंस के संग सदृश या लहसुन तथा कपूर के संग-सदृश विचित्र प्रतीत होता है[3]।

वियोगावस्था में गोपियों को स्वप्न में भी कृष्ण के दर्शन होने का वर्णन सूर ने बार-बार और बड़े ही चित्ताकर्षक ढंग से किया है। एक पद में राधा कहती हैं कि हम स्वप्न में भी सोच रहना है। जब से कृष्ण बिछुड़े हैं तब से इसी प्रकार की दयनीय अवस्था है। स्वप्न में मैंने देखा मानो गोपाल मेरे घर आये और हँसकर मेरी भुजा गही। परन्तु हाय, क्या बताऊँ उसी समय बैरिन निंदिया उड़ गई, निमिष भर के लिए भी न रही। यह स्वप्न-भंग वैसे ही हुआ जैसे चकई अपने प्रतिबिम्ब को ही प्रिय समझकर प्रसन्न हो जाय और निष्ठुर पवन तथा निष्ठुर भाग्य उस जल को ही चंचल

---

१ "प्रात उठीने रे, प्रथम पूछजे रे, जे मागे ते आपजे तत्क्षने;
बीजु काइ रे, मूधरने भावे नहीं रे माखणनी छे महि मारवणनी टेव।"
— इ० सू० देसाइ, 'नरसिंह महेता कृत काव्यसंग्रह',
पृष्ठ ३१२, पद १६०।

२ "कठण थया मोहन मथुरा जइ, कागल नव लख्यो कग्बो रे।
गोकुलमा सहु वात करे छे, काहान कुबजा शु भराथो रे।
कुबजा काली ने अंगे कुबड़ा, शु करती हशे लग्को रे।
चतुर होय ते चित्तमा चेते, मुरखने शो चटको रे।
नरसैं याचा प्रभु तमने न घटे, नीच साथ शीद भटका रे।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ३१३, पद १६५।

३ "और नारि हरि को न मिली कहु, कहा गवाइ लाज।
जैसे काग हंस की संगनि, लहसुन संग कपूर।"
— सूरसागर', पृष्ठ १३३६, पद ३७७०।

एवं तरंगित करके प्रतिबिम्ब नष्ट कर दें[1]।

आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में 'स्वप्न में अपने ही मानस में किसी का रूप देखने और जल में अपना ही प्रतिबिम्ब देखने का कैसा गूढ़ और सुन्दर साम्य है। इसके उपरान्त पवन द्वारा प्रशान्त जल के हिल जाने से छाया मिट जाना कैसा भूतव्यापी व्यापार स्वप्न भंग के मेल में लाया गया है[2]।' राधा और गोपियों के स्वप्न देखने का वर्णन जहाँ सुन्दर और मार्मिक है वहाँ स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक भी है। दिन-रात जिसका स्मरण बना रहता है, जो जागृतावस्था में सदा हृदय नेत्र और जिह्वा पर रहता है वह कृष्ण स्वप्न में दिखाई दे यह अत्यन्त सहज एवं पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक है।

"नरसिंह ने भी स्वप्नदर्शन का वर्णन एक पद में किया है। राधा स्वप्न में अपने को कृष्ण से विधिवत् विवाहित होती हुई देखती हैं। वे कहती हैं कि आज की बात क्या कहूँ, मैं तो स्वप्न में श्याम के संग विवाहित हुई। विधिवत् रूप से विवाहित हो कर मैंने सास यशोदा को पालागन भी किया। जब मैं स्वप्न में श्याम के संग रसरंग कर रही थी तभी चौंककर जाग गई[3]।" कृष्ण को पति के रूप में स्मरण करती रहने वाली राधा को कृष्ण से विधिवत् रूप से विवाहित होने का स्वप्न दिखाई दे तो वह बड़ा सहज और मनोवैज्ञानिक है।

नरसिंह ने विरह-वर्णन के अन्तर्गत बारहमासे का वर्णन भी किया है जो प्रायः

---

१ 'हमकौं सपनेहू मैं सोच।
जा दिन तैं बिछुरे नंदनंदन, ता दिन तैं यह पोच॥
मनु गुपाल आए मेरैं गृह, हँसि करि भुजा गही।
कहा करौं बैरिनि भइ निद्रा, निमिष न और रही॥
ज्यौं चकई प्रतिबिंब देखि कैं, आनंदे पिय जानि।
सूर पवन मिलि निठुर बिधाता, चपल कियौ जल आनि॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३७०, पद ३८८६।

२ "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'त्रिवेणी', पृष्ठ १०२।

३ "आजनी रातनी वातनी शी कहुं, स्वप्नमां शामळा संग परणी
चोरीमां परवरी, पास बैठा हरी, बाई मारा कर्मनां कोण वरणी।
चार वेदे फरी, चार फेरा फरी, श्री हरीए मारो हाथ झाल्यो
प्रगटया दीपक, मंडप चोरी रची, भागये नव आनंद माहाल्यो।
थाळ कुमकुम भरी, मोड मस्तक धरी, जशोमती सासुने पाय लागी ·
नरसैंयाना स्वामीने, संग रमतां हतां, एटले झबकीने हुं रे जागी।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ३१२, पद १६६।

परम्परागत सा होते हुए भी मार्मिकता से पूर्ण है। "कार्तिक मास में कृष्ण जी छोड़कर चले गए। राधा जी रोने लगी, नेत्रों से अश्रु की धारा चली। अब संसार में क्या जीना है ? किंतु पापी प्राण नहीं जाते हैं, लालची जीव नहीं जाता है। मार्गशीर्ष के महीने में तुमने हमारे प्रेम को मानकर आना नहीं चाहा। शय्या सूनी पड़ी है। पौष के महीने में भी यशोदा के कान्ह नहीं आये। मझधार में हमें छोड़ दिया। मेरे अंग अंग उनके लिए तलफ रहे हैं। माघ के इस महीने में तो कोई मेरे स्वामी को ले आओ, ताकि मैं उनको देख सकूं। फाल्गुन में तो प्रकृति वसन्तागमन पर फूल उठी, किन्तु मेरे हृदय में तो विरह की होली जल रही है, मैं कैसे होली खेलूं ? चैत्र के महीने में मेरा चित्त चलित हो उठता है। शरीर पर थोड़े में ही वस्त्र धारण करने होते हैं। किन्तु वह भी बिना कृष्ण के धारण करना अच्छा नहीं लगता। कृष्ण के बिना मेरा शरीर ही शोभा नहीं पाता। वैसाख में वनों में फल लगे हैं, कोयल कूजती है, आम्रवृक्ष पर आम पकते हैं। ज्येष्ठ के महीने में सूर्य बहुत तपता है और जलाने वाली लूएँ चलती हैं, जिनसे हे प्रियतम तुम आ कर बचाओ ! आषाढ़ के महीने में बादलों के घिरने पर अँधेरा हो जाता है, चारों ओर बिजलियाँ चमकती हैं, मोर मधुर-मधुर रव करते हैं। सावन रिमझिम-रिमझिम फुहार करता है, नदियों में नीर बढ़ता है, सभी गोपियाँ यमुना के तीर स्नान करने चलती हैं। भाद्रपद में बादलों की गर्जनाएँ बढ़ीं, चारों महीने बादल बरसते रहे। राधा जी की चूनरी भी भीग गई। आश्विन के महीने में हरि आये और अबला की आशा को पूर्ण किया। सबको रास-रस का पान कराया। इस बारह-मासे को गाने वाले, कंठस्थ करने वाले और सुनने वाले को बैकुण्ठ प्राप्त होता है'।

---

१ 'कार्तक महीने कृष्णजी, मेली गया रे महाराज
रुदन करे राणी राधिका, नयणे आसुंडानी धार, शु रे जीवु संसारमां '
पापी प्राण न जाय, लोभी जीवडो न जाय शु रे०
मागशर महिने मान्यु नहिं, मारा मोहनलाल,
सेजलडी रे सूनी पडी, ज्या शोकना साल शु रे०
पोष महिने आव्या नहि, जशोदाना कान,
अधवच मेल्या एकला, मारां भुल्या भान शुं रे०
महा महिने महाराजने, तेडी लावो रे घेर
मुखडुं निरखु मारा नाथनु, उलटी रगडानी रेल शु रे०
फागण फुल्यो हो सखी, फुल्या कमलाना कंथ :
हैयामा रे होली बले, कोनकरी रमु रे वसन्त ' शु रे०
चैत्र मासे चित्त चाले नहि, थोडवा मांडा रे चीर :
कीम रे ओढुं जादव विना, मारू शामे न शरीर . शु रे०

जिस प्रकार की पूर्ण मौलिकता नरसिंह ने 'सुरत संग्राम' में और आंशिक मौलिकता 'गोविन्द गमन' में दिखलाई है, वैसी ही सूर ने विप्रलंभ शृङ्गार के अन्तर्गत 'भ्रमरगीत' में दिखलाई है। सूर को भ्रमरगीत प्रसंग बहुत ही प्रिय है। इसे इन्होंने तीन-तीन बार लिखा है। इसे मौलिक 'खण्ड काव्य' की कोटि में रखा जा सकता है। एक भ्रमरगीत तो चौपाई छंद में अत्यन्त संक्षेप में लिखा गया है, जो भागवत के वर्णन का अनुवाद-सा जान पड़ता है। शेष दो भ्रमरगीत पदों में वर्णित हैं, जिनमें मौलिकता का विशेष निर्वाह करके गोपियों का मार्मिक चित्रण किया गया है। गोपियों का सच्चा प्रेम कृष्ण के मित्र और संदेशवाहक उद्धव के ज्ञान-गर्व पर अपूर्व विजय प्राप्त करता हुआ दिखलाया गया है। यहाँ हमें सूरदास के वाग्वैदग्ध्य का पूर्ण परिचय मिलता है। व्यंग्य, हास्य, उपालंभ इत्यादि गुण काव्य के प्रसंग में सजीवता भर देते हैं। इन पदों का नाम इसलिए 'भ्रमरगीत' पड़ा क्योंकि एक भ्रमर के गोपियों के पैरों में आकर लिपटने और गुंजन करने पर उद्धव से बातचीत करती हुई गोपियाँ उद्धव को छोड़ कर भ्रमर को संबोधन करके अपने हृदय के उद्गार प्रकट करने लगी। इन उद्गारों में गोपियों की गहरी विरह-व्यथा तथा उनका अनन्य कृष्ण प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। भ्रमर को निमित्त बना कर वे अपने प्रेम और विरह की गाथा उद्धव को सुनाती हैं।

वे कहती हैं कि "तुम निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने के लिए कहते हो किन्तु हमारे पास दस-बीस मन तो नहीं हैं। एक था वह तो कृष्ण के संग ही चला गया।"[1]

वैशाखे वन फल फुलिया, फुलिया दाडम ने द्राख।
कोयलडी रे टउका करे, पाकी आवानी शाख॥ शु रे०
जेठ महिने रवि तपे घणो, झीणी लू था बलती रे राख,
सहस्र गोपी रे टोले मली, घोली आवानी शाख। शु रे०
आषाड मास भले आवियो, बरस्यो घन अथाक घोर॥
चहुदिस चमके रे वीजली, मधुरा बोले र मोर। शु रे०
भादरवो भले गाजीयो, वरस्यो चारे रे मास॥
भींजे राधाजीनी चुंदडी, भींजे सोले सणगार। शु रे०
आसो मासे हरि आविया, आव्या अबलानी पास॥
आशा पूरी एणे मन तणी, वहाले रमाड्या रास। शु रे०
गाय शीखे ने सांभले, तेनो हजो वैकुण्ठ वास॥
बार मास पूरा थया, गाय नरसैयो दास। शु रे०
— इ० सू० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ५२४-२५ पद ६२।

१ "ऊधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतो सो गयौ स्यामसंग, को अवराधै ईस।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १५०९, पद ४३४४।

मन थे कृष्ण के संग चले जाने पर ही तो थे उन्मन सी हैं। वे उद्धव के ज्ञानपूर्ण एवं दार्शनिक वचनों से ऊब कर कहती हैं कि "हम तो हरिदर्शन की प्यासी" और भूखी हैं[२]। वे कहती हैं कि "हमारे नेत्रों ने तो व्रत लिया है कि कृष्णरूपी स्वाती के बिना सब व्यर्थ है[३]। यहाँ गोपियों का अनन्य कृष्ण प्रेम और उनकी तीव्र दर्शन-व्याकुलता अभिव्यक्त हुई है। कभी-कभी वे अत्यन्त दुखी और विरह व्यथित हो कर कहती है कि "हमारी प्रीति भी कोई प्रीति है जो कृष्ण के चले जाने के बाद भी यह शरीर जीवित है[४]।" कभी वे कहती हैं कि "हमारा कोई दोष नहीं, वे स्वामी ही बिल्कुल कठोर हो गए हैं[५]।" वे उनसे कहती हैं कि "तुम्हारे योग से तो हमारा प्रेम-वियोग भला है। हमें तुम्हारा जोग भी स्वीकार्य है यदि हम मोहन को प्राप्त कर लें[६]।

गोपियों के प्रेम की उत्कटता का उनके कृष्ण-दर्शन औत्सुक्य का तथा उनकी विरह-व्यथा का वर्णन अतीव हृदय-स्पर्शी है। गोपियों की वक्रोक्तियों का तो यहाँ अक्षय भण्डार मिलता है। सूर का 'भ्रमरगीत' हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

नरसिंह ने भी उद्धव प्रसंग को दो एक पदों में वर्णित किया है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि "कृष्ण को इतना कहना कि हमें केवल तुम्हारा आधार है। विष पिला कर ही हमारे प्रिय क्यों नहीं गए जो आज ये दुख के दिन देखने पड़े। विरह के दुख से हम दग्ध हैं और हरि के बिना मानो हृदय में विरह की होली प्रज्वलित हुई है। विरहानल की लपटों में हम जल रही हैं। केवल कृष्ण ही बाँह पकड़ कर हमें बचा सकते हैं[७]।" राधा तो कृष्ण को पत्र भी लिखती हैं, जो बिल्कुल पत्र की शैली में

---

१ "अखियाँ हरिदरसन की प्यासी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १४५६, पद ४१७८।

२ "अखियाँ हरिदरसन की भूखी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १४५६, पद १७५५।

३ "ऊधौ नैननि यह व्रत लीन्हौ।
स्वाति बिन ऊम्र सब भरियन "
— "सूरसागर', पृष्ठ १४५८, पद ४१८१।

४ "ऊधौ कहँकी प्रीति हमारैं। अजहुँ रहत तन हरिके सिधारैं।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १४७७, पद ४२४०।

५ "ऊधौ हमरौ कछु दोष नहिं, वे प्रभु निपट कठोर।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १४८१, पद ४२५३।

६ "जोग भलौ जो मोहन पावैं।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १५२१, पद ४४१४।

७ "ओधव कहजो रे, हरीने एम्लु रे, के अमने हमारो आधार
विखना पाइने रे, वहालोजी शीं नव गया रे मे दुःख देखाड्या दीनदयाल।

ही आरम्भ से अन्त तक लिखा गया है। राधा कहती हैं कि "हमारा कौन सा अपराध देखा जो आप पुनः लौट कर ही न आए ? यदि कुब्जा हाँ कहे तो बार-बार पत्र तो अवश्य लिखना[1]।" नरसिंह का विरह-वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी मर्माहत कर देने वाला है, यह निश्चित है।

सूरदास ने *विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत* राधा की विरह-व्यथा का वर्णन अधिकतर उस सदेशे मे किया है, जो उद्धव ने कृष्ण को सुनाया। राधा की विरह-वेदना इतनी गहरी थी कि वाणी मे उसे अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य ही न थी। हरि-सदेश पाते ही वह मूर्छित हो कर गिर पडी थी। उद्धव ने केवल उन्हें आँखों से अश्रु बहाते देखा। मौन की और अश्रु की विरह-वाणी को उद्धव ने समझा और जा कर कृष्ण को सुनाया। वे कृष्ण से राधा और गोपियों की विरह-व्यथा का वर्णन अनेक पदों मे करते हैं। एक पद मे वे कहते हैं कि "आपके न रहने पर ब्रज से वर्षा और ग्रीष्म—ये दो परस्पर विरोधी ऋतुएँ भी साथ ही साथ रहने लगी हैं, कभी भी यहाँ से नहीं गई अपितु अपने भयानक रूप मे सदा बनी रही। हृदय का विरह ताप और साँसें ग्रीष्म का रूप धारण किए हुए हैं और नेत्रों के अविरल बहते अश्रु वर्षा का रूप धारण किए हुए हैं[2]।

सूर ने राधा और गोपियों की वियोगावस्था के भीतर की विरह-वेदना का वर्णन तीन प्रकार से किया है। (१) कवि के वर्णन के रूप मे, (२) गोपियों के मुख से तथा (३) उद्धव के कृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत होने वाले वर्णन के रूप मे। तीनों

दुखडानी दाभी रे, के ओधव देर केम बले रे, के हरी विना होलां हइटा माहे.
के मेहतणा भडका रे, ओधव जो समे रे, के बलत्तत आवी भाले बाँहे।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ३१२ पद १६१।

१ "लाव लाव सखी एक कागल लखाए हरिने रे
नाथ शो हमारो वाक के न आव्या फरीने रे।
.... फरी फरी लखजो पत्र के कुब्जा के तो रे।"
— 'इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४१५-१६, पद ५०६।

२ "ब्रज तैं द्वै रितु पै न गई।
ग्रीषम अरु पावस प्रवीन हरि, तुम बिनु अधिक भई॥
उर्ध उसास, समीर नैन घन, सब जल जोग जुरे।
बरषि प्रगट कीन्हे दुख दादुर, हुते जो दुरि दुरे॥
बिषम वियोग जु वृष दिनकर सम, हिय अति उडौ करै।
हरि-पद बिमुख भए सुनि सूरज, को तन ताप हरै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १६३०, पद ४७३५।

प्रकार से किया गया गोपियों का यह विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सूर ने कृष्ण के वियोग-दुःख का वर्णन भी उस समय किया है, जब कृष्ण उद्धव के साथ सदेशा भेजते हैं, जब उद्धव ब्रज से लौटते हैं और जब रुक्मिणी और सत्यभामा उन्हें ब्रज की बातें पूछती हैं। एक पद में वे उद्धव से कहते हैं कि "उद्धव, मुझसे ब्रज भुलाया नहीं जाता[1]।" उस कुंज-केलि के समान तो इन्द्रपुरी भी सुखदायी नहीं हो सकती[2]।" रुक्मिणी से वे कहते हैं कि मैं एक निमिष के लिए भी ब्रज को और ब्रज के लोगों को नहीं भूल सकता। . यद्यपि द्वारिका तो सुख निधान है, तथापि गोकुल के समान सुखदायी वह कदापि नहीं है[3]।" इस प्रकार गोकुल का स्मरण करके कृष्ण दुखी हो कर पछताने लगे[4]। सत्यभामा से कृष्ण कहते हैं कि "सुनो सत्यभामा, तुम्हारी सौगध, जब जब भी मुझे गोकुल का स्मरण होता है, नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है[5]।"

कृष्ण की वियोगावस्था की विरह-वेदना का वर्णन न तो अधिक विस्तृत रूप में मिलता है और न ही अत्यन्त मार्मिक रूप में। वे सारे ब्रज को याद करके रोते हैं, केवल राधा और गोपियों का स्मरण करके नहीं। सयोग-पक्ष में जो प्रेम उभय-पक्ष में सम दिखलाया गया है, वह वियोगावस्था में अपेक्षाकृत विषम ही दिखाई देता है। नरसिंह ने तो कृष्ण के वियोग-दुख का वर्णन ही नहीं किया है।

सूर और नरसिंह के शृगार-वर्णन की तुलना करने पर हम देखते हैं कि सयोगावस्था का वर्णन करने का दोनों कवियों का उत्साह समान है। सूर कथा-क्रम का निर्वाह करने का प्रयास करते हुए राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन से स्नेह का विकास

---

१ "ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।"
— 'सूरसागर', पृठ १६४४, पद ४७७४।

२ "कुंज केलि समान नाहीं, इन्द्रपुरी सुखदाई।"
— 'सूरसागर', पृठ १६४५, पद ४७७६।

३ "रुक्मिनि मोहिं निमिष न बिसरत वे ब्रजवासी लोग।"

० "रुक्मिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं। . "
"जद्यपि सुखनिधान द्वारावति, गोकुल के सम नाहीं।
सूरदास घनश्याम मनोहर, सुमिरि-सुमिरि पछिताहीं॥"
— 'सूरसागर', पृठ १७०१ १७०२, पद ४८८६-४८९०।

५ "सुनि सतभामा सौंह तिहारी।
जब जब मोहिं घोष सुधि आवत, नैननि बहत पनारी॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १७०२, पद ४८९२।

दिखलाते हैं और प्रेम-लीलाओं का वर्णन करते है। नरसिंह केवल रसकेलि, रासक्रीडा आदि का वर्णन करने मे ही कृत-कृत्यता का अनुभव करते हैं। दोनो कवियो के वर्णनो मे शृङ्गार के साथ-साथ अलौकिकता के सकेत बराबर मिलते है। सूर का वर्णन विस्तृत के साथ-साथ सूक्ष्म भी है तथा नवोन्मेषशालिनी कल्पनाओं के कारण अधिक सरस और हृदयस्पर्शी अनुभव होता है। नरसिंह का वर्णन प्रायः सीधा-सादा, वही-वही इतिवृत्तात्मक-सा है, जो सरस तो है पर उसमे सूक्ष्मता और कल्पनाशीलता का अभाव है। सूर ने भागवत को आधार बना कर भी अपनी मौलिक प्रतिभा पग-पग पर प्रस्फुटित होने दी है। नरसिंह ने 'सुरत सग्राम' मे एक अत्यन्त मौलिक प्रसग की उद्भावना की है और अन्य रचनाओं के लिए भी भागवत को तो बिल्कुल आधार नही बनाया है। कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने मे इन दोनो कवियो ने बिल्कुल सकोच नही किया है। वियोग-पक्ष की तुलना करने पर सूर और नरसिंह मे साम्य के तत्व कम और वैषम्य के तत्व अधिक दिखलाई देते हैं। सूर ने वियोग-पक्ष का वर्णन अत्यन्त विस्तार से और पूरी सहृदयता के साथ किया है, जिसके कारण उसमे गहराई और मार्मिकता पाई जाती है।

नरसिंह का गोपी-हृदय तो संयोगावस्था के आनन्द से वचित ही होना नही चाहता है, बल्कि वियोगावस्था की विरह व्यथा से बचना चाहता है। इसीलिए वियोग-पक्ष का इनका वर्णन इने-गिने पदो मे ही समाप्त हो जाता है। 'गोविन्द गमन' मे इन्होंने कुछ मौलिकता दिखलाते हुए राधा और गोपियो के विरह-दुख का वर्णन किया है तथा 'शृङ्गार-माला' के कुछ पदो मे विरह-वर्णन देखने को मिलता है। सूर के विरह-वर्णन की तुलना मे नरसिंह का विरह वर्णन न तो विस्तृत है न व्यापक है और न गहरा ही है। सूर ने तो कृष्ण की विरह-व्यथा का भी वर्णन किया है जो नरसिंह ने नही किया है। विप्रलभ-शृङ्गार के अन्तर्गत 'भ्रमरगीत' का सृजन करके सूर ने हिन्दी साहित्य को एक अमर और अद्वितीय निधि दे दी है। सूरदास का विप्रलभ-शृङ्गार हिन्दी साहित्य मे अद्वितीय है। शृङ्गार के दोनो पक्षो का सन्तुलित निर्वाह करने वाले सूरदास निश्चित ही नरसिंह के एकागी शृङ्गार-वर्णन से अधिक स्थायी प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

अध्याय ७

सूरदास और नरसिंह मेहता की भक्ति-भावना

सूरदास और नरसिंह मेहता उच्च कोटि के कवि होते हुए भी मूलत भक्त पहले हैं और कवि बाद में हैं, यह तो सुस्पष्ट है। उनकी कविता भी केवल कवि-कल्पना पर आधारित नही है, अपितु उसमें भक्त की भक्ति भावना की तीव्रानुभूति कविता के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। वे लीलाओं का वर्णन भी करते हैं तो भक्त की गोपी-हृदय की अनुभूति के सहारे। यद्यपि दोनों कवियों की भक्ति मूलत सख्य-भाव की है, तथापि विनय के पदों मे भक्त की सहज नम्रता के कारण कही कही वह दास्यभाव की भी जान पड़ती है। सूरदास के हृदय मे सख्य-भाव की भक्ति का विकास आचार्य वल्लभाचार्य जी से भेंट होने के पश्चात हुआ। इसके पूर्व वे प्रभु-विनय के पद बना कर अपनी भक्ति के पुष्प भगवान के चरणो पर चढाते रहते थे, जिनमे वैराग्य-भावना और दास्य भक्ति देखने को मिलती है। नरसिंह मेहता ने 'हारमाला' के, उनकी भक्ति की परीक्षा के अवसर पर विनय के, भक्ति के पद गाये हैं और वृद्धा-वस्था मे भी वैराग्य, भक्ति और ज्ञान के पद लिखे हैं। नरसिंह की प्रसिद्धि और लोकप्रियता का आधार ये ही पद है।

इन दोनो की भक्ति-भावना लीलावर्णनो मे परम मधुर एव परम उज्ज्वल रूप मे अभिव्यक्त हुई है। प्रेमलक्षणा माधुर्यभक्ति इन दोनो कवियो मे अपने परम उत्कृष्ट रूप में व्यक्त हुई है यह हम छठे अध्याय मे स्पष्ट रूप से देखते हैं। अब विनय के पदो मे प्रकट होने वाली इनकी भक्ति-भावना पर विचार किया जाय।

विनय के पदो मे इन दोनो कवियो का भक्त-रूप प्रबल हो जाता है और ये दोनो अपने हृदय की अमूल्य भक्ति-सपदा को एक भक्त के भोलेपन के साथ हमारे सामने खोल कर रख देते है। इनकी भाषा भी ऐसे पदो मे एक भक्त की सीधी-साधी सरल भाषा है। इनका निश्छल भक्त-हृदय अपनी भक्ति के बदले मे भगवान से भक्ति ही मांगता है, मुक्ति नही। सूर एक पद मे कहते हैं कि "हे भगवान, मुझे अपनी भक्ति दो[१]।" एक और पद मे वे कहते हैं कि "हे भगवान, मुझे भक्ति ही दीजिए

---

१ "अपनी भक्ति देहु भगवान"

— 'सूरसागर', पृष्ठ ३४ पद १०६।

और मैं भक्ति ही पाऊँ ताकि मैं सदा आपका गुण-गान करता रहूँ, सदा आपका ध्यान करता रहूँ और सदा आपका स्मरण करता रहूँ[१]।" नरसिंह मेहता भी इसी प्रकार से कहते हैं कि "हे नाथ, मुझे सदैव भक्ति दीजिए[२]।" एक पद मे वे अपनी ही नही अपितु सभी भक्तों की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि "भगवान के भक्त मुक्ति कभी नही माँगते वे तो बार-बार जन्म चाहते हैं, जिससे भगवान की नित्य सेवा तथा कीर्तन करने का अवसर मिले[३]।" वे मुक्ति को भक्ति की दासी के रूप मे वर्णित करते है[४]। वे हाथ जोड कर भगवान से प्रार्थना करते हैं कि प्रत्येक जन्म मे मुझे तुम्हारी भक्ति प्राप्त हो[५]।"

सूरदास ने ईश्वर की वन्दना करते हुए प्रभु की महिमा के गान के साथ विनय के पदो का मगलाचरण किया है। वे कहते है कि "मैं हरि के उन चरणकमलो की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से लगडा को लाघ लेता है, अधा दृष्टि प्राप्त कर लेता है, बहरा सुनने लगता है, गूँगा वाणी प्राप्त कर लेता है और रक राजा हो जाता है। ऐसे करुणामय स्वामी के चरणो की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ[६]।" इस महिमा-

---

१ "स्याम-बलराम को सदा गाऊँ.... ...
यहै मम ध्यान, यहै ज्ञात सुमिरन यहै, सूर प्रभु देहु हौं यहै पाऊ ॥
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५५, पद १६७।

२ "मारा नाथजी मूजने भक्ति देजो सदा"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४८०, पद २८।

३ "हरिना जन तो मुक्ति न मागे, मागे जन्मोजन्म अवतार रे,
नित्य सेवा नित्य कीर्तन ओच्छव, निरखवा नन्दकुमार रे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४६६, पद १।

४ "मुक्ति छे एनी दासी रे"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४६६, पद १।

५ "बेहु कर जोडीने, नरसैंयो वीनवे, जन्मोजन्म तारी भक्ति जाचे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह,'
पृष्ठ ४७७, पद २२।

६ "चरण कमल बंदौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कछु दरसाई।
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहि पाई।
— 'सूरसागर', पृष्ठ १, पद १।

गान की ध्वनि यही है कि भगवान की कृपा से असम्भव से असम्भव बात भी सम्भव हो जाती है। सूर का यह पद एक संस्कृत श्लोक की छाया के समान है। नरसिंह मेहता ने इस प्रकार का कोई *महिमागान नहीं गाया है*। वे भगवान की, पापियों का उद्धार करने की तथा भक्तों पर कृपा करने की महिमा का वर्णन बड़े उत्साह के साथ करते हैं। सूर भी इसी प्रकार के वर्णन में विशेष उत्साह दिखलाते हैं। सूर और नरसिंह में भगवान के पतित-पावन रूप की महिमा का वर्णन पचासों पदों में किया है। दोनों कवियों ने भगवान की कृपा से तर जाने वाले अनेक पतितों का नामोल्लेख किया है। सहायता के लिए पुकारने पर जिन भक्तों पर कृपालु भगवान ने अपनी असीम कृपा बरसाई उनका नामोल्लेख भी इन दोनों कवियों ने बड़े उत्साह के साथ किया है। भगवान के भक्तवत्सल रूप की महिमा का गान गाने में ये दोनों कवि धन्यता और कृतकृत्यता का अनुभव करते हैं। सूरदास भगवान के पतित-पावन तथा भक्तवत्सल रूप की महिमा का गान एक पद में इस प्रकार करते हैं कि 'हे भगवान, आपको पतित-पावन जान कर आपकी शरण में आया हूँ। .. व्याध, गीध, गणिका, अजामिल, बलि, अहिल्या, गज आदि का उद्धार करने वाले तथा प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी इत्यादि की सहायता करने वाले पतितपावन एवं भक्त-वत्सल भगवान अशरणों की शरण है। ऐसे भगवान का ध्यान ब्रह्मा, शिव, शेष, शुकदेव तथा सनकादि भी नित्य करते हैं'[१]। उद्धार पाने वाले सभी पतितों की पूरी नामावली तथा भगवान की कृपा पाने वाले सभी भक्तों की पूरी नामावली किसी एक ही पद में नहीं मिलती, अतएव इस प्रकार के पदों के अन्तर्गत नामोल्लेख में अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार के पदों में भक्तहृदय की भक्ति की तीव्रता का अनुभव भक्त या भावुक हृदय ही कर सकता है, अन्यथा सामान्य दृष्टि से देखने पर तो इस प्रकार के पचासों पदों में पुनरुक्ति दोष ही पाया जायगा।

नरसिंह मेहता भी प्रभु के पतित पावन तथा भक्त-वत्सल रूप की महिमा का गान भक्ति की तीव्रानुभूति के साथ बड़े उत्साह-पूर्वक करते हैं। एक पद में वे कहते

---

१ "पतितपावन जानि सरन आयौ।

.....

ब्याध अरु गीध, गनिका, अजामील द्विज चरन गौतम तिया परसि पायौ।"
अध औसर, अरध-नाम उचार करि सुमिरन गज ग्राह तैं तुम छुड़ायौ।
अचल प्रह्लाद, बलि दैत्य सुखहीं भजत, दास ध्रुव चरन चित सीस नायौ।
पाडु-सुत बिपति-मोचन महादास लखि, द्रौपदी चीर नाना बढ़ायौ।
भक्तवत्सल कृपानाथ असरन-सरन, भार-भूतल-हरन जस सुहायौ।
सूर प्रभु-चरन चित चेति चेतन करत, ब्रह्म सिव-सेस-सुक-सनक ध्यायौ।"

— 'सूरसागर', पृष्ठ ३१, पद ११६।

हैं कि 'तुम अपने विरद को देखना, मेरी करनी मत देखना। वैर-भाव से भक्ति करने वाले हिरण्यकशिपु तथा पूतना को मार कर आपने तार लिया। तुमने प्रह्लाद की और पांडवों की ठीक समय पर सहायता की। तुमने गज और गणिका का उद्धार किया। तुमने भक्त जयदेव के लिए पद्मिनी को जीवित किया, द्रौपदी की लाज रखी, सुधन्वा की सहायता की, अहिल्या का उद्धार किया तथा मीराबाई के लिए विष को को अमृत बना दिया[१]।"

नरसिंह मेहता के पदों मे मिलने वाली पतितों तथा भक्तों की नामावली सूर के पदो मे मिलने वाली नामावली की अपेक्षा कुछ बड़ी ही है। इसका कारण यह है कि 'हारमाला' के उनकी भक्ति की परीक्षा के अवसर पर भगवान की कृपा के लिए प्रार्थना करते हुए भक्ति के तीव्र भावावेग मे, प्रभु कृपा प्राप्त करने वाले अनेकानेक पतितों और भक्तों के नाम उनके मुख से अपने आप निकलने लगे थे।

भगवान के नाम की महिमा का वर्णन दोनो कवियों मे पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। इस प्रकार का वर्णन सूर के पदो मे अपेक्षाकृत अधिक है। कहीं अनेक पतितों का उदाहरण दे कर सूर कहते हैं कि हरिनाम लेने से कौन नहीं तरा[२] ?" तो कहीं वे कहते हैं कि 'हरिनाम एक ऐसी अमूल्य सपत्ति है जिसे चोर नही ले सकता, जो घट नही सकती, जो गाढ़े समय मे काम आती है, जो जल मे डूबती नही और जिसे अग्नि जला नही सकती[३]। वे रामनाम को अधकार रूपी अज्ञान को दूर करने वाला

---

१ "तुं तारा बीरं सामु जोजे शामला, न जोईश करणी हमारी रे।
हिरण्याकशिपुने हाथे हणीयो, मासी पुतना मारी रे :
प्रह्लाद कारण स्थंभमा वशीया, प्रगट्या देव मोरारी रे :
लाखागृहमा जेम पाण्डव उगार्या, अग्नि ज्वाला व्यापी रे :
अर्धवचने गज गुणका तारी, जयदेवने पद्मिनी आपी रे :
दुष्ट सभामा जेम चीरज पुर्या, लाज पाचालीनी पाली रे :
तेलकढा जेम शीतल कीधा, वेला सुधन्वानी वाली रे :
रुषिश्वरे जेम अहल्या श्रापी, मग्न शल्या थई मारी रे :
ते पण तारे चरणे रघुवर, थई अनोपम नारी रे।
मीराबाईनां विख अमृत कीधा ...."
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४७२, पद ८।

२ "को न तर्यो हरिनाम लिऐं।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६, पद ८६।

३ "चोर न लेत, घटत नहि कबहूँ, आवत गाढ़े काम।
जल नहीं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसो हरिनाम।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६, पद ६२।

सूर्य-चन्द्र का प्रकाश बतलाते हैं, जो रात-दिन अपने प्रसार से अनायास ही हमें कुमार्ग से बचाता है[1]। वे उपदेश देते हैं कि "हरिनाम लो जिससे तुम कालाग्नि से बच सकते हो और सदा सुखी रह सकते हो[2]।" भगवत् नाम लेने से दोनों लोक में सुख प्राप्त होता है और सब दुख दूर होते हैं[3]।

भक्त के लिए भगवान के नाम की महिमा अपार है। उसके लिए तो नाम नाव के समान है जो भव-सागर पार कराके उसे भगवान के निकट ले जाता है। सूर के इस प्रकार के पदों में एक सच्चे भक्त की नाम-महिमा सम्बन्धी श्रद्धा के दर्शन होते हैं। भगवन्नाम के अमोघ प्रभाव के लिए उनमें जो दृढ़ विश्वास है, वह यहाँ देखने को मिलता है।

नरसिंह मेहता भी कहते हैं कि "इस कठिन काल में हरिनाम को रटो। हरि का नाम रटने में पैसा नहीं लगता और कार्य पूर्ण हो जाते हैं। श्यामसुन्दर तो भक्त के अधीन हैं। वे सभी कार्यों को निश्चित ही पूरा करेंगे[4]।" एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'रामनाम की महिमा अनन्त है। शिव-सनकादि भी उसका ध्यान करते हैं। मेरु पर्वत के समान महान पाप करने वाला भी नारायण का नाम लेने से तर जाता है[5]।" वे कहते हैं कि रामनाम ऐसा धन है जो हमारे धनवान होने की घोषणा स्वयं करता है[6]।"

---

१ "अधकार अगान हरन कौं रबि-ससि जुगल मकारा।
बासर निसि दोउ करं मकासित, मड़ा कुमग अनयास।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६, पद ६०।

२ "अब तुम नाम गहौ मन नागर।
जातैं काल अगिनि तैं बाचौं, सदा रहौ सुख नागर।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६, पद ६१।

३ "दुहु लोक सुख करन, दुख हरन "
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६, पद ६०।

४ "हरि हरि रटण कर, कठन कलिकालमां, दाम बेसे नहीं काम सरशे,
भक्त आधीन छे, श्यामसुन्दर सदा, तेतारा कारज सिद्ध करशे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४७६, पद २०।

५ "रामनामनो महिमा मोटो, शिव सनकादिक ध्यान धरे,
मेरु थकी म्होटु होय मायश्चित, नारायणना नामे तरे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४७४, पद १२।

६ "रामनाम धन हमारे वाजे ने गाजे"
—इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',

"अगम और अगोचर पातक हरि के स्मरण मात्र से दूर हो जाते हैं[१] ।" रात-दिन हरि का नाम लेने वाले के सभी कार्य पूरे होंगे[२] ।' नरसिंह के इस प्रकार के वचनों में उनकी नाम-महिमा सम्बन्धी अटूट श्रद्धा एवं अटल विश्वास को हम प्रभावोत्पादक रूप में अभिव्यक्त होता देखते हैं । भक्त के लिए हरिनाम ही अमूल्य संपत्ति है, जिसका दान करने में वह जीवन की सफलता का अनुभव करता है । नरसिंह मेहता सत्संग की महिमा वर्णन और भी उत्साह के साथ करते हैं । सभी भक्तों और सन्तों ने इस का वर्णन किया है । इसके सम्बन्ध में कबीर की उक्ति तो अत्यन्त प्रसिद्ध है कि

"हरि से जनि तू हेत कर, कर हरिजन से हेत ।
मालमुलुक हरि देत हैं, हरिजन हरि ही देत ।"

हरि को दिलाने वाले हरिजन की महिमा नरसिंह ने इस प्रकार गाई है —
"वैष्णव का निवास न हो वहाँ एक क्षण के लिए भी निवास नहीं करना[३] ।" तुम्हारे भक्त की चरणरज मैं मस्तक पर धारण करना चाहता हूँ जिससे कोटि कल्याण हो सकता है । भक्त को प्रेमपूर्वक देखने से नेत्रों को परम सन्तोष होता है और सांसारिक पाप क्षण भर में विनष्ट हो जाते हैं । भक्त से आलिंगन करने पर पाप लव-लेश भी नहीं रह जाता और उसके ज्ञानदीप से हमारा अज्ञानांधकार दूर होता है । एक क्षण के लिए भी सत्संग करने वाला धन्य हो जाता है । भवसागर में डूबने वालों के लिए हरिजन निश्चय ही नाव-सदृश है[४] 'तुम्हारे भक्तों की संगति के बिना मेरा मन भ्रष्ट हो जाता है[५] ।' 'वे लोग भवभय से मुक्त हैं, जो कि वैष्णवों की संगति में

---

१ "अगम अगोचर पातक तेना स्मरण मात्रमा जायजो" —के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १६६ ।

२ "निशदिन लेशे हरिनु नाम, तेनां सरशे सघना काम" —के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १८७, पद ५३ ।

३ "वास नहीं ज्यां वैष्णव करो त्यां नव वसीये वासदीया" —इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६७, पद ५८ ।

४ "तारा दासना चरणनी रेण मस्तक धरूं जे थकी कोटि कल्याण मानु :
निरखतां नेहशुं, नेत्र अमृत ठरे, भगतथा पाप ते क्षणमा वामु :
भक्तने भेटतां किल्बिष नव रहे, ज्ञान दीपथकी तिमिर नासे :
धन्य धन्य भाग्य जे सन संगत करे, धन्य घडी जनु तेज जागे :
भणे नरसैंयो, भवसागर बूडतां, हरिजन नाव निश्चे प्रमाणो ."
— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८७, पद ३२ ।

५ "तारा दासना दासनी नित्य संगत विना, भ्रष्ट थाय धूधरा मंन मारू ।" — इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४७७, पद २२ ।

रहते हैं[1]।" नरसिंह ने भक्तों की महिमा भगवान की महिमा के समान ही बतलाई है यह ध्यान देने योग्य बात है।

सूरदास भी भक्तों की महिमा का वर्णन करते है, किन्तु सूर की तुलना मे नरसिंह का भक्त-महिमा-वर्णन अत्यंत स्वाभाविक रूप मे तथा विशेष प्रभावोत्पादक ढंग से हुआ है ऐसा मानना पड़ता है। सूर ने तृतीय स्कध के अन्त मे 'भक्त-महिमा' शीर्षक अश मे भक्त-महिमा का वर्णन किया है, किन्तु उसमे भक्त के लक्षण अधिक बतलाए गए हैं, उसकी भक्ति का व्यापक प्रभाव नही बतलाया गया है। सकाम और निष्काम भक्त कैसे उद्धार पाते हैं और बैकुण्ठ सिधारते हैं इत्यादि वर्णन[2] ही इसमें अधिक मिलता है। हरि-जन के ठाठ का वर्णन ये एक अत्यन्त सुन्दर रूपक मे करते हैं, किन्तु उसमे भी हरिजन की भक्ति के व्यापक प्रभाव का वर्णन नही मिलता। वे कहते हैं कि हरिजन तो एक ऐसा राजा है जिसके ठाठ को देखकर बड़े-बड़े महाराज, ऋषिराज और राजमुनि भी लज्जित हो जाते हैं। निर्भय देह इस राजा का राजा का राजगढ है, दृढ विश्वास सिंहासन है तथा विमल हरियश छत्र है। वह हरि-पद-पकज के प्रेमरस का पान करके उसके नशे मे इतना चूर है कि ज्ञान रूपी मत्री को कुछ कहने का अवसर ही नही मिलता क्योंकि कुछ कहते हुए उसे बड़ा सकोच होता है। अर्थ और काम द्वारपाल हैं तथा धर्म और मोक्ष नम्र-सेवक हैं। बुद्धि और विवेक भी ऐसे द्वारपाल हैं कि किसी को भीतर आने नही देते। वैराग्य छडी पुकारनेवाला है। अष्टसिद्धियाँ हाथ जोड कर द्वार पर खडी हैं[3]।" इसमे मोक्ष को भी हरिजन का

---

१ "हां रे ते नर छूट्या संसार माहे, जेने होय वैष्णवनो संग रे"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ४६६, पद २।

२ "भक्त सकामी हू जो होइ। क्रम-क्रम करि कै उधरै सोई।
....निष्कामी बैकुण्ठ सिधावै, जनम-मरन तिहि बहुरि न आवै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३७, पद ३६४।

३ "हरि के जनकी अति ठकुराई।
महाराज, रिषिराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई।
निरभय देह, राजगढ ताकौ... . ...

....
दृढ विस्वास कियौ सिंहासन, ता पर बैठे भूप।
हरिजस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम अनूप।
हरि-पद-पंकज पियौ प्रेम-रस, ताही कैं रंगरातौ।
मंत्री ज्ञान न औसर पावै, कहत बात सकुचातौ।

दास बताया गया है यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है। नरसिंह भी मुक्ति को भक्त की दासी के रूप मे वर्णित करके भगवान के मुख से भक्त के चरणों पर कोटि मुक्ति निछावर कराते हैं[1]।

तुलना करने पर हम सुस्पष्ट रूप से देखते हैं कि भक्त की महिमा का वर्णन सूर ने नरसिंह के ढग पर नही किया है। सूर ने हरि से विमुख रहने वालो की निन्दा करने मे विशेष उत्साह दिखलाया है, जो नरसिंह मे मात्रा मे कम पाया जाता है।

इन दोनों भक्त-कवियो ने अपनी जिस अनन्य कृष्ण-भक्ति का वर्णन बडे उत्साह और अभिमान के साथ किया है उसका अब विहगावलोकन किया जाय। सूर ने यह वर्णन कही-कही कवि की आलकारिक भाषा मे किया है, किन्तु नरसिंह ने प्राय भक्त की भोली-भाली, सीधी-सादी और ठेठ भाषा मे इसका वर्णन किया है। सूर एक पद मे कहते हैं कि—'मेरा मन अन्यत्र कहाँ और कैसे सुख प्राप्त कर सकता है? जहाज के साथ समुद्र के मध्य मे चला जाने वाला पक्षी जिस प्रकार चारों ओर उड्डयन करके अन्त मे उसी जहाज के पास लौट आता है, उसी प्रकार मेरा मन भी अनेक दिशाओ मे आकृष्ट हो कर अन्त मे हे कृष्ण, आपकी भक्ति मे स्थिर होता है। कमलनयन कृष्ण के महात्म्य को छोडकर और देवताओ का ध्यान कौन करे? परम पवित्र गगा को छोड कर ऐसा प्यासा कौन हो सकता है जो दुर्बुद्धि से कुआँ खुदवाये? भक्तिरूपी कामलरस का पान करने वाले भक्त-भ्रमर को अन्य देवताओं की भक्ति के कडुये फल खाने मे क्या आनन्द प्राप्त हो सकता है? हमारी सर्व इच्छाओं को पूर्ण करने वाले कृष्ण-भगवान रूपी कामधेनु का त्याग करके अन्य देवताओ की भक्तिरूपी बकरी को कौन दुहावे[2]?' एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'और सब देव तो रक-

---

अर्थ काम दोउ रहैं दुवारैं, धर्म मोच्छ सिर नावैं।
बुद्धि विवेक विचित्र पौरिया, समय न कबहु पावैं।
अष्ट महासिधि द्वारैं ठाढ़ीं, कर जोरे, डर लीन्हें।
छरीदार वैराग विनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हें।''—'सूरसागर',
पृष्ठ १४, पद ४०।

१ "कोटि मुक्ति तारे चरण वारू"
—इ० मु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ५५५, पद ४४।

२ "मेरो मन अनत कहां सुख पावै?
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पर आवै।
कमल नैन को छाडि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गग को छाडि पियासौ, दुरमति कूप खनावै।

भिखारी हैं[1]।'

नरसिंह अपनी अनन्य कृष्ण-भक्ति की अभिव्यक्ति 'हारमाला' के एक पद में इस प्रकार करते हैं—'छैल-छबीले कृष्ण को मैं प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ। कृष्ण मेरे लिए अमूल्य रत्न के समान हैं। अन्य सब देवता मेरी दृष्टि में तृणवत् हैं[2]।' हारमाला प्रसंग में सन्यासी नरसिंहाश्रम से वे कहते हैं कि "चुप रह रे, भगवा धारण करके बकबक करने वाले। अपना भला चाहता हो तो यहाँ से दूर चला जा। यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो छैलछबीले कृष्ण की भक्ति कर। मेरी बात मान जा और माला धारण करके वैष्णव हो जा[3]।" जब उसी 'हारमाला' के अवसर पर रघुनाथाश्रम नाम के संत उन्हें राम की भक्ति के लिए समझाना प्रारंभ किया तब नरसिंह ने अपनी अनन्य कृष्ण-भक्ति को यों प्रकट किया—'वृद्ध होने पर रामनाम लेंगे, अभी मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। छैल-छबीले कृष्ण को छोड कर अन्य किसी की भक्ति मुझे स्वीकार्य नहीं है। वृक्ष का तना छोड कर डालों को क्यों पकड़ूँ? लड्डू को छोड कर गुड कौन खायेगा? रंगीले और छैलछबीले कृष्ण को छोड कर तुम्हारे भगवान का ध्यान कौन करे? मेरी निंदा करो या मेरी वंदना करो, किन्तु मैं गोविन्द को छोड नहीं सकता[4]।' वे यहाँ तक कहते हैं कि कृष्ण और कृष्ण भक्ति को छोड़कर

जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील फल खावै।
सूरदास प्रभु-कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५५, पद १६८।

१ "और देव सब रंक भिखारी
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५५, पद १००।

२ "छेलछाला छबीला नाथने, प्रेमे देखु छु रे
नरसैंयाचो स्वामी अलौकिक रतन, अन्य तृणवत लेखु छु रे।
— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४४, पद १५।

३ "रिहि रे भगवा ! लवलव करतो, भलो हाआ ता आघोना,
. ...
जा तु हित वांछा पोतानू, (ता तु) सुंदर शाम छबीलो गा।
मांण नरसिंयो वच्न करि माहरू माल धरीने वैष्णव था॥"
— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४४, पद १५।

४ "घरडा थईशुं त्यवारि राम कहींशि।
हवडा कहानो माहरि खप नथी।
छैल छबीलो ने छोगालो।
तेहनि मेहलीनि बीजो मनडो नथी।

अन्य धर्मों की ओर देखना भी व्यभिचार है[1]। एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'जिससे कृष्ण ने विवाह किया है उसे दूसरा क्यों अच्छा लगेगा'।[2] पत्नी के हृदय मे पति के लिए जो अनन्य प्रेम-मिश्रित पूज्य-भाव होता है वही गोपी-स्वरूप नरसिंह के हृदय मे भगवान कृष्ण के लिए है। कृष्णरूपी पति को छोड कर अन्य देवताओ की ओर देखना उनके गोपी-हृदय को व्यभिचार-सदृश ही प्रतीत होता है। अपनी अनन्य कृष्ण-भक्ति को सीधी-सादी भाषा मे कहते हुए भी नरसिंह ने उसे पूरी तीव्रता और पूरे बल के साथ प्रकट किया है यह तो निश्चित है। सूर ने भी कृष्ण-पति को पा कर अन्यत्र मन लगाना पति-व्रत को लजाना बतलाया है[3]।

भक्त और भगवान का सबध सूर और नरसिंह ने किस-किस प्रकार का माना है यह भी उनकी भक्ति-भावना को समझने के लिए देखना चाहिए। सूर ने भगवान् और भक्त का सम्बन्ध ठाकुर और दास का[4], समय पर काम आने वाले मित्र का,[5]

भड मूकीनि ढाल कूण साहि ?
मोदक मूकीनि गिहिरा कूण खाय ?
रगीलो छवीलो छाडीने
ताहरा भगवाणियानि कूण धाय ?
को मुहुनि नदो को मुहुनि वदो।
मि गोवदजी मूकवो नहीं।"

— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत 'हार समेना पद अणे हारमाला' पृष्ठ ३६, पद ५।

१ "नरसैयाना स्वामी विना बीजा अनेक धन व्यभिचार है।"— के० का० शास्त्री 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १६२, पद १५६।

२ "जेने नर वरया विट्ठलजी, तेने बीजो क्यम गमशे रे ?' — के० का० शास्त्री 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला,' पृष्ठ १८५, पद ५०।

३ "गोविंद सो पति पाइ, वह मन अनत लगावै ?
मान पुरुष को नाम लै, पतिव्रतहिं लजावै।
— 'सूरसागर' पृष्ठ ११७, पद ३५२।

४ "हरि सौं ठाकुर और न जन कौ।" — 'सूरसागर', पृष्ठ ३, पद ६।

५ "गोविंद गाढ़ दिन के मीत।" — 'सूरसागर', पृष्ठ ११, पद ३१।

अनाथ और नाथ का[1], दीन और दीनानाथ का[2] पुत्र और माता का[3] तथा पतित और पतित-पावन का बतलाया है[4]।

नरसिंह ने भक्त और भगवान के अनेक संबंधों को दिखलाया है। एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'कृष्ण ही मेरी माता हैं, कृष्ण ही मेरे पिता हैं और कृष्ण ही मेरे भाई हैं[5]।' वे भगवान को बार-बार पति रूप में देखते हैं[6]। वे भक्त और भगवान का सम्बन्ध सेवक और स्वामी का भी बतलाते हैं[7]। भक्त और भगवान का संबंध अनाथ और नाथ का भी वर्णित किया गया है[8]। यहाँ हम दोनों भक्तकवियों में भक्ति का वह आवेग देखते हैं जिसमें भगवान से सब प्रकार के संबंध स्थापित करके उनके स्नेह को, उनकी कृपा को प्राप्त किया जा सके।

मनुष्य मात्र को जन्म और जीवन व्यर्थ गँवाने का जो पछतावा होना चाहिए उसका वर्णन सूर और नरसिंह ने बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। सूर ने इस भाव को व्यक्त करने वाले अनेक पद गाये हैं, जिनकी संख्या नरसिंह के इस प्रकार के पदों से निश्चित ही अधिक है। एक पद में सूर कहते हैं कि 'भक्ति कब करोगे, जन्म ही बीत गया। बचपन खेलने में और जवानी अभिमान करने में बीत गई। माया के बहुत प्रपंच किए तब भी पापों से जी नहीं भरा। स्त्री-पुत्र, संपत्ति आदि से प्रीत लगा कर भ्रम में पड़ा रहा। लोभ और मोह से मैं चेता नहीं। वृद्धावस्था में

---

१ "अनाथ के नाथ प्रभु कृष्न स्वामी।"— 'सूरसागर', पृष्ठ ७०, पद २१४।

२ "तुम तौ दीनदयाल कहावत।" — 'सूरसागर', पृष्ठ ७१, पद २१८।

"विनती सुनौ दीन की चित दै।" — 'सूरसागर', पृष्ठ १५, पद ४२।

३ "ज्यौं बालक अपराध कोटि करै, मातु न मानै तेऊ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६५, पद २००।

४ "जद्यपि सूरज महापतित है, पतितपावन तुम तेइ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६६, पद २००।

५ "कृष्ण मात ने कृष्ण तात माहरि
सगो सहोदर कृष्ण सही।" — के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ ३६, पद ५।

६ "जेने नर वर्या विट्ठलजी" — के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १८५, पद ५०।

७ "तु किशा ठाकुरा ! हुं कशा सेवका !"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ ११, पद ६।

८ "हुं अनाथनो नाथ कहिये।" — के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनो पद अने हारमाला', पृष्ठ १११, पद १११।

अब पछताने से क्या लाभ[1] ?'

नरसिंह मेहता ने भी इसी प्रकार के भाव को एक पद में व्यक्त किया है—'जवानी के दिनों में हरि को नहीं पहचाना। तब तो परस्त्री पर मन मुग्ध होता रहा। कंचन और कामिनी के फेर में ही फँसे रहे। पच्चीस और पचास वर्ष तो प्रपंच में बीत गए, साठ और सत्तर वर्ष की आयु तक भी कुछ नहीं समझे। अब भक्ति करने की इच्छा हो तो क्या लाभ ? जब नेत्रों से दिखाई नहीं देता, नासिका गलती रहती है, कानों से सुनाई नहीं देता तब भी माया छूटती नहीं है तृष्णा टूटती नहीं है और अशरणशरण प्रभु को पहचान नहीं पाते। इस अवस्था में शरीर शिथिल पड़ गया है, पैरों से चला नहीं जाता, हाथ में छड़ी है, मुख में दाँत नहीं रह गए तब भी पापी पेट अन्न माँगता है। पूर्वजन्म का संचित पुण्य ही सुख में भी भगवान का स्मरण कराता है[2]।

दोनों भक्तों ने अनेक पदों में ईश्वर से विमुख रहने की प्रवृत्ति में रत रहने वाले मन की तथा सांसारिक आकर्षणों की निन्दा करके ईश्वर-भक्ति की महिमा को गाया है। यह एक नग्न सत्य है कि मनुष्य को सुख और यौवन के दिनों में तो हरि का ध्यान तक नहीं आता, उसका अमूल्य मानव-जन्म मृगतृष्णावत् माया की माँगों को पूरा करने में ही व्यर्थ बीतता चला जाता है। मनुष्य के इस महाभ्रम को दूर कर

---

१ "भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ।
बालापन खेलत ही खोयौ, तरुनाई गरबानौ।
बहुत प्रपंच किए माया के, तिऊ न अधम अघानौ।
जतन जतन करि माया जोरी, लै गयो रंक न रानौ।
लोभ मोह तें चेत्यौ नाहीं, सुपनें ज्यौं डहकानौ।
बिरध भयौ कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि धुनि पछितानौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १०६, पद ३२६।

२ "जुवानी ने दहाडे रे, हरिने जाण्यां नहीं रे, मोह्यु परदारा साथे मन :
कांचन ते मोह्यो रे, कामिनी कलमां रे, कारणके तोड़ना धायो धन ·
पचीस ने पचास रे, परपंचमां गयां रे, दोहिला आव्या साठ वर्षना दन
सित्तेरने सुधी रे, कांई समज्यो नहीं रे, पछे चाल्यो साधन करवा मन :
आंखे न सूझे रे, गले बहुत नासिका रे, बोले ते तो समजाय नहीं करण :
माया तो न मूके रे, तूटे नहीं तृष्णा रे, ओलखाया नहीं अशरणशरण ·
हाथमां लाकडी रे, चरण चाले नहीं रे, तूटीने शिथिल थयुं छे तन ·
मुख माहीं दतरे एके दांते नहीं रे, तोय पापीयु उदर मागे अन्न
... .
नरसैयाना स्वामीने रे, सुखमां संभारजो रे, जो होय पेला भवनुं पुन्य।"
— 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८६, पद ५१।

के उसे प्रभु विमुख से ईश्वरोन्मुख करना भक्तो ने अपना परम कर्तव्य समझा है। सूर और नरसिंह भी अपने पदो मे इस कर्तव्य को पूरे उत्साह के साथ, भक्ति के पूरे आवेग के साथ पूरा करते हैं।

भक्त के लिए भगवान् ही एकमात्र आधार हैं। भक्त के इस दृढ विश्वास को हम सूर और नरसिंह दोनो के विनय सम्बन्धी पदो मे प्रचुर मात्रा मे देखते हैं। सूरदास एक पद म कहते हैं कि 'मुझे आपके नाम का भारी भरोसा है। प्रेम-पूर्वक नाम लेने से ही भक्त भगवान् की कृपा का अधिकारी हो जाता है'। एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'मुझे आपके नाम को छोड कर और बल या आधार ही कहाँ है[2] ? भगवान् को छोड कर उनके लिए ससार मे कोई नही है[3]। वे कहते है कि 'भक्त के लिए हरि के समान ठाकुर कोई नही हो सकता, जो सेवक के सुख का ध्यान रखता है[4]। वे भगवान् से कहते हैं कि 'यदि आपको छोड कर मेरा अपना इस ससार मे कोई होता तो मैं बार-बार विनय करके अपने दुख क्यो सुनाता[5] ?'

अपन सेवक की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखनेवाले मालिक के रूप मे भगवान् का चित्र खींचकर सूर ने सेव्य सेवक-भाव को भी आदर्श और प्रेममय रूप प्रदान किया है यह निश्चित है। भगवान के सिवा भक्त के लिए और कोई आधार नही होता, यह भक्तहृदय की तीव्रानुभूति भी यहाँ अपने यथार्थ रूप मे अभिव्यक्त हुई है। अनत ऐश्वर्यवान, अनत सामर्थ्यवान तथा असीम कृपानिधि भगवान् की कृपा का प्रेम-पूर्वक स्मरण करने से भक्त पूर्ण अधिकारी हो जाता है। ऐसा कह कर जहाँ सूर ने भगवान की दयालु प्रकृति की महिमा गाई है, वहाँ भक्त की सच्ची प्रेमानुभूतिमय भक्ति का भी समुचित मूल्याकन किया है।

नरसिंह मेहता के पदो मे भी इस प्रकार के उद्गार अपूर्व उमग एव उत्साह

---

१ "भरोसौ नाम को भारी।
प्रेम सौं जिन नाम लीन्हौ, भए अधिकारी।
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५७, पद १७६।

२ "तुम्हारो नाम तजि प्रभु जगदीसर, सु तो कहौ मेरे और कहा बल!"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६७, पद २०४।

३ "हरि बिन अपनो को ससार!" — 'सूरसागर', पृष्ठ २७, पद ८४

४ "हरि सौं ठाकुर और न जन कौ।
जिहिं जिहिं बिधि सेवक सुख पावै, तिहिं बिधि राखत मन कौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ३, पद ८।

५ "जो जग और बियो कोउ पाऊ।
तौ हौं बिनती बार बार करि, कत प्रभु तुमहिं सुनाऊं!"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६६, पद २०१।

उत्साह के साथ निकले हैं। वे कहते हैं कि 'हरि के बिना हमारी बाँह कौन थामेगा[1]?' उनसे भगवान भी कहते हैं कि 'मैं तुम्हारी प्रेम रूपी सौकल से बँधा हुआ हूँ क्योंकि तुम्हारे समान हमारे लिए और कोई नहीं है[2]।' एक पद में वे तुलसी के समान यह कहते हैं कि 'भगवान तुम्हारे बिना हमारी सहायता कौन करेगा? तुम्हारे तो करोड़ों भक्त होंगे, किन्तु हमारे लिए तो तुम्ही एक हो[3]।' तुम्हारे बिना मुझे हृदय से कौन लगायेगा[4]?' श्याम के बिना और किसकी शरण में हम जावें[5]?' तुम्हारे बिना मेरी सहायता करने के लिए कौन दौड़ेगा[6]?' 'तुम्हारे लिए तो अनेक नारियाँ हैं, किन्तु हमारे लिए आपको छोड़ कर और कोई नहीं है[7]।

नरसिंह के इन उद्‌गारों में सूर में न मिलने वाली एक विशेषता यह है कि वे भगवान से भी 'तुम्हारे समान हमारे लिए और कोई नहीं है', ऐसा कहलाते हैं। भक्त तो भगवान के सबंध में यह सदैव कहता आया है कि भगवान के समान हमारे

---

१ "हाथ ते हरि विना कोण ग्रहाये?"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८७, पद ४४।

२ "तमारा मेमनी सांकलीए बांध्यो, छोड्यो न छूटू
...
तमारे सम रे सजनी, बीजुं नव अमारे सम"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४७३, पद १०।

३ "तू विना कृष्ण कोण सार माहरी?
...
ताहरे कोटि छे सेवका, सामला!"
माहरि विट्ठिवानि (एक) ठाम ताहरी।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह,' पृष्ठ ४०, पद १०५।

४ "तु विना हृदय शु कोण भीडे — के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १३५, पद १०१।

५ "श्याम विना शरण कोने जइये" — के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १३८, पद ११३।

६ "तुम विना वाहरे ते कोण धाशे" —के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १४६, पद १३०।

७ "अनेक नारी नाथ तमारी, अमारे तम विना अवर नहीं कोये"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ २०२, पद १०७।

लिए कोई नही, किन्तु ऐसी भावना भगवान के हृदय मे भी भक्त के प्रति दिखलाना इस बात का प्रमाण है कि उन्होने भगवान को पूर्ण रूप से पहचाना था। शुद्ध भक्ति-भाव से, निष्काम भावना से कर्तव्य करते रहने वाले भक्तजन अपने आप ऐसा कहने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं कि 'आपके बिना किसकी शरण मे जायें ? आपके सिवा हमारी बाँह कौन थामेगा ?' इत्यादि। भगवान के भक्त तो असख्य होते हैं, किन्तु भक्त के लिए तो भगवान ही एक आधार हैं, ऐसा कह कर नरसिंह ने मीठा उलाहना दिया है, कि 'करोडो भक्त होने पर आपको मेरा ध्यान न हो यह सभव है किन्तु मैं आपके सिवा किसका ध्यान करूँ, किससे आशा करूँ ?' भक्त नरसिंह ने 'हारमाला' के अवसर पर इस प्रकार के उद्गार निकाले हैं इसलिए इनमे तीव्र भावावेग एव ऐसी मात्रा मे परिलक्षित होता है जो सूर मे उस परिमाण मे नही पाया जाता क्योकि उन्होंने भक्ति की परीक्षा के लिए किसी अवसर पर इस प्रकार के उद्गार नही निकाले हैं।

शान्त-रस के पद भी सूर और नरसिंह मे विनय के पदो के अन्तर्गत प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। *ससार और सासारिकता के प्रति उदासीनता, विरक्ति, अनासक्ति,* ग्लानि इत्यादि की भावना इस रस के मूल में निवास करती है। शान्त-रस का स्थायी भाव आचार्यों के अनुसार ससार के आकर्षणो के प्रति निर्वेद है। शान्त रस के अनुभावो मे ससार की अनित्यता, जीवन की क्षणभगुरता, प्रभुदर्शन की व्याकुलता, भगवान की अनत एव अपार महिमा तथा अपनी पामरता का अनुभव होना इत्यादि हैं। शान्त-रस के सचारी भावो के अन्तर्गत आत्म-ग्लानि, अमर्ष, हर्ष, धृति, वितर्क, स्मृति, विषाद आदि की परिगणना होती है। यह रस भगवान को आलबन एव भक्त को आश्रय के रूप मे प्रस्तुत करता है। शान्त-रस मे ससार की नि सारता, नश्वरता तथा दु खरूपता दिखला कर ससार और सासारिक विषयो के प्रति उदासीन भाव एव तटस्थ वृत्ति ग्रहण की जाती है। हर्ष और शोक, सुख और दु ख, मान और अपमान आदि किसी भी प्रकार की स्थिति म समभाव रखना, प्रभु-आश्रित रहकर फलाशा का परित्याग करके समर्पण भावना मे ईश्वर का आदेश अनुभव करके कर्मरत रहना इत्यादि की शान्त रस मे प्रमुखता होती है। भक्त का भगवद्विषयक रति ही शान्त-रस का प्राण है। सूर और नरसिंह के शान्त-रस के दो एक पदो का रसास्वादन किया जाय।

सूरदास शान्त रस के एक पद म कहते हैं 'अपने मन म इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि यह सारा ससार अपने सुख और अपने स्वार्थ से बँधा हुआ है, जिसमे कोई किसी का नही होता। सुख की स्थिति मे तो सब लोग आकर मिलते हैं, बैठते हैं और घेरे रहते हैं, किन्तु दु ख के दिनों मे सब साथ छोड देते हैं और पास तक नहीं फटकते। सदा साथ रहने वाली पत्नी, जिससे अत्यधिक प्रेम होता है वह भी शरीर से आत्मा के निकल जाने पर हमसे दूर भागती है। इसी प्रकार का ससार का

व्यवहार होता है, जिस संसार से हमें इतना प्रेम और मोह है। वास्तविकता तो यह है कि भगवन्-भजन बिना हम व्यर्थ ही जन्म गवाँ देते हैं[1]।

शान्त-रस का स्थायी-भाव निर्वेद यहाँ प्रभावोत्पादक रूप में निरूपित हुआ है। इस पद को पढ़ने पर संसार और सांसारिकता के प्रति उदासीनता का भाव अनुभव होता है। सांसारिक संबधों की निःसारता का प्रतिपादन इस पद में प्रभावपूर्ण ढंग से हुआ है।

नरसिंह मेहता इस प्रकार के अपने एक पद में संसार और सांसारिकता के साथ संसार के लोगों की निंदा से भी उदासीन हो कर कहते हैं कि 'हम ऐसे ही हैं, हाँ ऐसे ही हैं, जैसा आप कहते हैं। बिल्कुल वैसे ही हैं। भक्ति करने पर हमें भ्रष्ट कहोगे तो हम अपने दामोदर की सेवा करेंगे। जिसका मन जिसके साथ बँध जाता है, वह बाद में छूट कैसे सकता है? मेरा मन हरिरस में मदमाता रहता है जो घर-घर जा कर प्रभु-प्रेम के गीत गाता है। सभी लोगों में मैं बुरा हूँ, बुरों से भी बुरा हूँ, तुम्हारे जी में आये वह मुझे कहना, किन्तु मुझे हरि से बड़ा गहरा प्रेम हो गया है। कर्म धर्म की बड़ी बातें मुझे अच्छी नहीं लगती, वे सब मेरे भगवान के तुल्य हैं भी नहीं, जिनसे सभी कुछ प्राप्त होता है। मैं तो नीच कर्म करता हूँ और मुझे वैष्णव प्यारे हैं। भगवान के भक्तों से जो दूर रहेगा उसका तो जन्म लेना भी संसार का व्यर्थ चक्कर ही सिद्ध होगा[2]।'

---

१ "आतम जानि लेहु मन माहीं।
अपने सुख कौं सब जग बाँध्यौ, कोउ काहू कौ नाहीं।
सुख मैं आइ सबै मिलि बैठत, रहत चहूँ दिसि घेरे।
बिपति परी तब सब सँग छाँड़े, कोउ न आवै नेरे।
घर की नारि बहुत हित जासौं, रहति सदा सँग लागी।
जा छन हंस तजी यह काया, प्रेत प्रेत कह भागी।
या बिधि कौ ब्यौहार बन्यौ जग, तासौं नेह लगायौ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु, नाहक जनम गवायौ।
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६, पद ७८।

२ "एवा रे अमो एवा रे एवा, तमे कहो छो वली तेवा रे,
भक्ति करतां जो भ्रष्ट कहेशो तो, करशुं दामोदरनी सेवा रे।
जेनुं मन जे साथे बंधाणुं, पेहेलुं हतुं घर रानुं रे,
हवे थयुं छे हरिरस मातुं, घेर घेर हींडे छे गातुं रे।
सघला साथमां हुं एक भूंडो, भुंडाथी वली भुंडो रे,
तमारे मन माने ते कहेजो, स्नेह लाग्यो छे मने ऊंडो रे।
कर्मधर्मनी वात छे जेटली, ते मुजने नव भावे रे,
सघला पदारथ जे थकी पामे, मारा प्रभुनी तोले नावे रे,

नरसिंह मेहता के इस पद हमें भक्त की अपनी, अपने भगवान की या अपनी भक्ति की निंदा के प्रति उदासीन रहने की भावना का परिदर्शन होता है। "जो कहना हो सो कहो, गाली भी दो लेकिन मैं अपनी भक्ति-संपदा नहीं छोड़ता।" भक्त की ऐसी हठी प्रवृत्ति का चित्रण यहाँ अनूठे ढंग से हुआ है।

सूर और नरसिंह की भक्ति भावना के विवेचन के अन्तर्गत भक्त के लक्षणों पर विचार करना समीचीन होगा। भक्ति की शक्ति को ले कर चलने वाले भक्त में भगवद्भक्ति के अतिरिक्त परोपकार की भावना, निरभिमानता, समदृष्टि, जीवमात्र के प्रति दया, उदारता, सहृदयता, सहानुभूति इत्यादि गुण अवश्य होने चाहिए। तभी उसकी भक्ति धार्मिक महत्व के साथ सामाजिक महत्व भी प्राप्त कर सकती है। केवल परलोक का विचार करके सामाजिक कर्तव्यों के प्रति उदासीन या अकर्मण्य हो जाने से भक्त की भक्ति एकांगी हो जायगी, जो कि सर्वांगपूर्ण होनी चाहिए। सूर और नरसिंह ने भक्त के गुणों या लक्षणों का विशेष रूप से तथा विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। सूर कहते हैं कि 'भक्त को कर्मयोग करना चाहिए, वर्णाश्रम धर्म का पालन करना चाहिए और अधम कभी नहीं करना चाहिए'[1]। सुख दुःख को भक्त मन में नहीं लाता[2]। वह काम, क्रोध, लोभ आदि को त्याग करके द्वंद्व रहित रहता है[3]। वह नित्य साधु संग करता है और पाप कर्म का मन में भी विचार नहीं करता[4]। संसार में रह कर भी वह सांसारिकता से जल कमलवत् निर्लिप्त रहता है[5]। उसे माया-

---

हलवा कमनो हु नरसयो, मुजने तो वेष्णव वाहाला रे,
हरिजनथी ज अन्तर गणशे, तेना फोगट फेरा गला रे।"
— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४७१, पद ५।

१ " कर्मजोग की करै। बरन आश्रम धर बिस्तरै।
अरु अधम कबहु नहि करै। तेर नर याहि बिधि निस्तरै॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३७, पद ३६४।

२ " सुख दुख कछु मन नहीं ल्यावै।" — 'सूरसागर', पृष्ठ १३३, पद ३६४।

३ "काम, क्रोध, लोभहिं परिहरै। द्वंद्व रहित .. "
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३३, पद ३६४।

४ 'सन्त सो संगति नित करै पापकर्म मन तै परहरै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३४, पद ३६४।

५ "जीवन-मुक्त रहै या भाई। ज्यौं जल-कमल अलिप्त रहाई।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३५, पद ३६४।

मोह व्याप्त नहीं होता[1]। उसे देहाभिमान भी नहीं होता[2]। सूर ने आदर्श भक्त के लक्षणों की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या की है। ऐसा आदर्श भक्त ही भगवान की भक्ति करने का अधिकार पाता है तथा भक्ति का सुफल प्राप्त करता है।

नरसिंह मेहता ने सूर के बिखरे हुए रूप में मिलने वाले आदर्श भक्त के लक्षणों को कुछ और भी लक्षण दिखलाते हुए एक ही पद में प्रस्तुत किया है। नरसिंह का यह पद अत्यन्त प्रसिद्ध है और गांधी जी ने इसका प्रचार करके इसे एक प्रकार से राष्ट्रीय भजन का रूप प्राप्त कराया है। इस पद में नरसिंह कहते हैं कि "वैष्णवजन उसे कहते हैं जो पराया के दुखी को जानता है और उन्हें दुखी देखकर उपकार करता है, मन में कभी मिथ्या अभिमान नहीं करता, समग्र संसार में सबकी वन्दना करता है, किसी की निन्दा नहीं करता तथा मन-वचन और कर्म पवित्र रखता है। ऐसे भक्त की माता भी धन्य हैं। उसमें समदृष्टि होती है, तृष्णा का वह त्याग करता है, पर-स्त्री उसके लिए मातृ-तुल्य है। जिह्वा से वह कदापि असत्य नहीं बोलता, पराये धन को वह छूता भी नहीं, मोह माया उसे व्याप्त नहीं होती, वैराग्य-भावना उसके मन में दृढ़ रूप से स्थिर है, लोभ तथा कपट से वह रहित रहता है तथा काम-क्रोध का त्याग करता है। ऐसे भक्त के शरीर में सभी तीर्थों का निवास है और वह अपनी इकहत्तर पीढ़ियों को तार देता है[3]।"

नरसिंह मेहता ने इस एक ही पद में आदर्श भक्त के श्रेष्ठ लक्षणों का सन्निवेश करके भक्तों को उनके उत्तरदायित्व का, कर्तव्य का, भक्ति के अधिकारी होने के लिए

---

१ "ताकौं माया मोह न व्यापै।"

— 'सूरसागर', पृष्ठ १३३, पद ३६४।

२ "तन अभिमान जासु नसि जाइ।"

— 'सूरसागर', पृष्ठ १३२, पद ३६४।

३ 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराइ जाणे रे;
परदुःखे उपकार करे ने मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे;
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन्य धन्य जननी तेनी रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे;
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहि तेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे,
राम नाम शु ताली रे लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वणलोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे नरसैंयो तेनु दर्शन करता, कुल इकोतेर तार्या रे।"

— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १६३, पद १५८।

आवश्यक योग्यता का संक्षेप में ही, किन्तु बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से ज्ञान कराया है। इसमें बतलाई गई बातों का विरोध कोई भी धर्म या सम्प्रदाय नहीं कर सकता। ये बातें तो ऐसी हैं जो सभी धर्मों या सम्प्रदायों में मिलती हैं, जो भारतीय धर्म-परम्परा की एकता की घोषणा करती हैं और मानव-धर्म का ज्ञान कराती है। इसीलिए इस पद ने राष्ट्रीय भजन की ख्याति प्राप्त की है।

गुरु का महात्म्य भी भारतीय भक्ति-पद्धति में असाधारण है। गुरु ही अज्ञानांधकारपूर्ण जीवन-मार्ग में ज्ञान तथा कृपा के प्रकाश से हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। ईश्वर-प्राप्ति की योग्यता तथा अधिकार भी गुरु कृपा के बिना संभव नहीं है। भक्तितत्व को भी पूर्ण रूप से गुरु के अनुग्रह से ही ग्रहण किया जा सकता है। सभी सन्तों और भक्तों ने गुरु की महत्ता का वर्णन बराबर किया है। सूर और नरसिंह में भी यह वर्णन मिलता है। ये दोनों गुरु-महिमा का वर्णन किस प्रकार करते हैं इस पर विचार किया जाय। सूरदास कहते हैं कि 'गुरु के बिना हाथ में दीपक धारण करके हमें भवसागर में डूबने से कौन बचा सकता है'[1]?' यहाँ दीपक ज्ञान का प्रतीक है। 'कर्मयोग और ज्ञानोपासना के भ्रम को दूर करके वल्लभ गुरु ने तत्व सुना कर लीला-भेद समझाया[2]।" गुरु के ज्ञान और प्रताप के कारण सत्व को ग्रहण करके निःसार तत्व को तज देने की, घृत निकाल कर छाछ तज देने की योग्यता प्राप्त हुई है[3]।" कहा जाता है कि सूरदास से मृत्यु के पूर्व जब यह कहा गया कि 'भगवान के यश का तो तुमने बहुत वर्णन किया, पर अपने गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य का यशोगान ही नहीं किया' तब सूरदास ने उत्तर में यह कहा था कि "मैंने तो उन्हीं के यश का वर्णन किया है। भगवान में उन्हें कुछ न्यारा देखूं तो न्यारा वर्णित करूं।" इससे सिद्ध होता है कि सूरदास गुरु और भगवान में कोई अन्तर अनुभव नहीं करते थे। तब भी सब के आग्रह पर उन्होंने एक पद में यह गाया कि 'गुरु के चरणों का मुझे दृढ़ भरोसा है। वल्लभाचार्य जी के नख-चन्द्र की ज्योति के बिना मेरे लिए संसार अंधकारमय था।' इस पद की ये पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं कि,

---

१ 'गुरू बिनु ऐसी कौन करै।
भवसागर तैं बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १६०, पद ४१७।

२ "कर्मयोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्री वल्लभ गुरू तत्व सुनायौ लीला भेद बतायौ॥
— 'सूरसागरावली' ११०२।

३ "प्रबल प्रताप ज्ञान गुरू गम तैं दधि मथि घृत लै तज्यौ मह्यौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ११७, पद ३५१।

'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो ।
श्री वल्लभ नख चन्द छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो ।'

नरसिंह मेहता के गुरु का नाम नहीं मिलता है। किंवदंती के अनुसार भाई के घर से वन में भाग जाने पर महाराष्ट्र दक्षिण के किसी आचार्य से इनकी भेंट हुई थी, जिन्होंने इन्हें शिव-स्तुति करने को समझाया था और एक मंत्र भी दिया था। उसी गुरु की स्मृति के रूप में उन्होंने मराठी भाषा की छठी विभक्ति के 'चा' का प्रयोग अनेक स्थानों पर पद के अन्त में किया है। एक स्वतंत्र पद में उन्होंने गुरु की वंदना करके गुरु की महिमा का गान भी किया है। वे कहते हैं 'गुरु-चरणों की वंदना करने में अज्ञान बालक बुद्ध कहता हूँ। दयानिधि, मेरे अपराधों की ओर मत देखना, मेरी भूल-चूक माफ करना। भवसागर में मैं जीवन की नाव में बैठा था और गुरु की कृपा से मैं आसानी से किनारे लग गया। भव-समुद्र की भय-दुःखादि की उत्तुंग लहरों ने मुझे बिलकुल परेशान नहीं किया। क्योंकि सद्गुरु बड़े सतर्क खिवैया साथ में थे। मैंने हरि के नाम का व्यापार किया, जिसमें गुरु ने दलाल का काम किया और सस्ते में तथा आसानी से माल दिला दिया, जिससे कि मैं इसी भव में निहाल हो गया। गुरु की महिमा तो अपार है, जिसका पूर्ण वर्णन सरस्वती, वेद, शिव, सनकादि कोई नहीं कर सका है। गुरु तो गोविन्द से भी बड़े हैं, गुणों के समुद्र हैं तथा अधमों का उद्धार करने वाले हैं।'[1]

नरसिंह ने किसी गुरु-विशेष से दीक्षा नहीं पाई तब भी उस दक्षिण के आचार्य के कुछ क्षणों के परिचय को ही दीक्षाविधि मानकर अधिकांश पदों में छठी विभक्ति के 'चा' का प्रयोग करके गुरु की अप्रत्यक्ष रूप से वंदना करना तथा इस प्रकार के गुरु-वंदना के स्वतंत्र पद में गुरु की महिमा का गान करना उनकी गुरु-सम्बन्धी उच्च आदर-भावना का व्यंजक है। गुरु को भवसागर में चलने वाली नाव का खिवैया

---

१ "गुरुपद वंदी रे वाणी ओचरू रे, हु छुं बालक अनज्ञान।
अपराध सामु रे मा जोशो दयानिधी रे, बोल्यु अबोल्यु करजो प्रमाण ॥
भवसागर मा रे गुरू नावे हु चढ्यो रे, सहेजमा आव्या सागर पार।
होडाहिल्ला तो ते मुजने नव नड्या रे, सद्गुरू सावध हाकणार ॥
वेपार तो कीधो रे हरि नाम नो रे, कीधो गुरू रूपा दलाल।
माल होराव्यो रे सुगम सौंघो करी रे, आ भवमा कीधो न्याल ॥
गुरू महिमानो रे पार क्यम लहु रे, थाक्यो सरस्वती थाक्या वेद।
शिव सनकादि रे वरणी नव शक्या रे, एवो भारे गुरू गुण नो भेद ॥
गोविंद थी अदका रे, सद्गुरू गुणनिधी रे, अधम उधारण कहावे नाम ॥"
— इ० मू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४८०, पद ५३।

स्वामी की लीला का गान करेंगे[1]।' वे प्रेम की तीव्रानुभूति प्रकट करते हुए कहते हैं 'जो रस व्रज की गोपियाँ नित्य अनुभव करती हैं, सखीरूप से नरसिंह भी उसका पान करता है।' एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'मुझे मन की खोज से कोई मतलब नहीं। मैं तो प्रेम करूंगा और वे अवश्य ही प्रेम-पूर्वक प्रकट होंगे[2]।' वे ईश्वर को सर्वव्यापी बतलाकर कहते हैं कि सत प्रेम के तत्तु से उसे पकड़ लेता है[3]। नरसिंह के तो भगवान स्वयं भी यह घोषणा करते हैं कि 'मैं प्रेम की शृंखला से बँधा रहता हूँ।...नरसिंह जहाँ गान करते हैं वहाँ मैं प्रेमपूर्वक नाचता हूँ[4]।' 'हारमाला' के अपनी भक्ति की परीक्षा के अवसर पर विनय के रूप में गाए गए प्रथम पद में भी वे परब्रह्म परमात्मा को प्रेममय बतलाते है तथा कहते हैं कि 'भक्त और भगवान की परस्पर प्रीति का प्रमाण तो वेदों में भी मिलता है[5]।' 'हारमाला' के एक पद में वे गोपीस्वरूपा हो कर कहते हैं कि 'अरी, मुझे तो हरि को देखते रहने की आदत सी पड़ गई है। मैं अपने नाथ को एक क्षण के लिए भी दूर नहीं जाने देती। मेरा प्रेमविद्ध हृदय उनसे अलग नहीं रह सकता, इतनी तो मेरी हरि से दृढ़ प्रीति जुड़ गई

---

१ "भूतल भक्तारतु सफल छह, जो महारा वहालाशु धरीए स्नेह।

....

जप तप तीरथ देहर्डा न दमी ए, जो महारा वहालाशु रंग भरे रमीए
जनम जनमनी दासी था शु, नरसैंयाचा स्वामीनी लीला गाशु।"

— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४११, पद ५६।

२ "भणे नरसैंयो ए, मन तणी शोध ना, प्रीत करूं प्रेमथी प्रगट थाशे।"

— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८५, पद ४०।

३ "नरसैंयाचो स्वामी सकल व्यापी रह्यो, प्रेमना तंतमा संत झाले।"

— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८५, पद ३६।

४ "तमारा प्रेमनी सांकलीए बांध्यो
नरसैंयो ज्यां गान करे, त्यां प्रेमभरी नाचूं।"

— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४७३, पद १०।

५ "परब्रह्म प्रेमी परब्रह्म पुरुषोत्तमनि.......
जलचरां जल विना किम करी जीवशे? परस्पर प्रीत्य तो वेद बोले।"

— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ ३, पद १।

है[1]।' वे एक पद में कहते हैं कि 'प्रेम से जहाँ प्रेम होता है वहाँ परम आनंद होता है, जिसके कारण अन्य आनंद साधारण व गौण हो जाते हैं[2]।' वे भगवान को पति मान कर कहते हैं कि 'आपके लिए तो उनके नारियाँ हैं, किन्तु हमारे लिए तो आपको छोड़ कर और कोई नहीं है[3]।'

तुलना करने पर सूर से नरसिंह की प्रेमानुभूति अधिक तीव्र प्रतीत होती है। वे स्वयं भक्त मात्र न रह जा कर गोपीस्वरूप हो जाते हैं यही उनकी तीव्र प्रेमानुभूति का सबसे बड़ा प्रमाण है। जिस भगवान को दार्शनिक खोजते ही रहते हैं उन्हें भक्त-जन प्रेम के तंतु से पकड़ लेते हैं ऐसा कहकर उन्होंने प्रेम को ईश्वर-प्राप्ति का सर्व-श्रेष्ठ एवं एकमात्र मार्ग सिद्ध कर दिया है। प्रभु को पति के रूप में देखना, भक्त-रूपी अबला का एकमात्र आधार बतलाना इत्यादि कुछ ऐसे प्रेमपूलकित कर देने वाले वर्णन नरसिंह में बार बार मिलते हैं कि इनकी भक्ति भावना को सूर की भक्ति-भावना से अपेक्षाकृत अधिक प्रेम प्रभावित कहे बिना नहीं रहा जाता। नरसिंह ने सशरीर 'दिव्य द्वारिका' में जा कर रासलीला आदि का दृश्य देखा हो या न देखा हो, किन्तु मन तो उनका नित्य उसी अनन्त प्रेममय लीला में मग्न रहता है, जिसकी अनुभूति इतनी तीव्र हो जाती है कि वे अपना पुरुषत्व भूल कर गोपीरूप का अनुभव करते हुए हृदय का समग्र प्रेम अनंत को अर्पित करके अपूर्ण संतुष्टि का तथा अनन्य आनंद का अनुभव करते हैं। निर्धन नरसिंह के लिए यह संतुष्टि ही अमूल्य संपत्ति है, यह आनंद ही असीम ऐश्वर्य है।

---

१ "बाई! मुहुनि हरि जेवार्नी टेव पड़ी, माहरा नाथनि न मुक एक घड़ी,
वेधल् मन अलगु न रिहि (एहवो) हरजी शू प्रीत्य जडी।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह महता कृत हार समेना पद अने हारमाला'
पृष्ठ ३३, पद १।

२ "ज्यां प्रेम छे त्यां परम आनंद छे,
अन्य आनंद त्यां अन्य हाये।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला'
पृष्ठ १५७, पद १४८।

३ "अनेक नारी नाथ तमारा,
अमारे तम विना अवर नहीं कोये।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला'
पृष्ठ २०२, पद १०७।

तथा हरिनाम के व्यापार में नफा कराने वाला दलाल कहना कितना सांकेतिक है। अपनी सिद्धि का समग्र यश गुरु को देने की उनकी पवित्र भावना का हमें यहाँ परिचय मिलता है। गुरु को अधमों का उद्धार करने वाला वर्णन करना इस बात की स्पष्ट सूचना देता है कि नरसिंह की दृष्टि में गुरु और गोविन्द एक ही थे। इन्होंने जैसे गुरु को गोविन्द से भी बड़ा माना है वैसे सूर ने नहीं माना है, किन्तु सूर तो गुरु और गोविन्द में अंतर ही नहीं देखते थे।

सूर और नरसिंह की भक्ति में, लीलाओं के वर्णन में प्रस्तुत किए गए भगवान के प्रेममय रूप द्वारा, प्रेमतत्व की प्रधानता सर्वत्र पाई जाती है, जिसके आधार पर इनकी भक्ति प्रेमलक्षणा माधुर्य भक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त भी इन कवियों ने अपने विनय और भक्ति के पदों में प्रेममय भगवान के प्रति जो प्रेममय भक्ति अभिव्यक्ति की है उसका महत्व भी असाधारण है। सूरदास कहते हैं कि 'गोविंद सबकी प्रीति मानते हैं[1]।' वे मन को उपदेश देते हैं कि 'हे मन, हरि से सच्चा स्नेह करो[2]।' एक पद में वे कहते हैं कि 'अब तो मन ने यही निश्चय किया है कि श्याम-श्यामा की प्रेम-राजधानी वृन्दावन को कभी नहीं छोड़ना। मैं सभी दुःखदायी स्थानों पर भटक चुका हूं, जहां के आनंद क्षण-भंगुर हैं। भगवान् के प्रेममय रूप को देखना ही सर्वोपरि आनंद है, अखण्ड आनंद है इस मर्म को मैंने ग्रहण किया है[3]।' एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'गोपाल, मुझे आप ऐसा कब बनायेंगे जब कि मेरा चित्त निरंतर आपके चरणों में अनुरक्त रहेगा, मेरी रसना आपके सरस चरित्र को गायेगी, मेरे नेत्र भावावेग के कारण सजल हो जायेंगे, मेरा शरीर प्रेमपुलकित हो जायगा[4]।' इत्यादि। प्रीति के कारण ही भगवान ने कृष्ण का अवतार धारण करके अनेक लीलाएँ कीं ऐसा कहते हुए वे एक पद में कहते हैं

---

१ "गोविंद प्रीति सबनि की मानत।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५, पद १३।

२ "करि हरि सौं सनेह मन साचौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २७, पद ८३।

३ "अब तो यहै बात मन मानी।
छाँड़ौं नाहिं स्याम-स्यामा की वृंदावन रजधानी।
भ्रम्यौ बहुत लघु धाम विलोकत छन भंगुर दुखदानी।
सर्वोपरि आनंद अखंडित सूर मरम लपिटानी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २८, पद ८७।

४ "ऐसा कब करि हौ गोपाल .. ..
चरननि चित्त निरंतर अनुरत, रसना चरित रसाल।
लोचन सजल, प्रेमपुलकित तन . . . . ."
—'सूरसागर', पृष्ठ ६२, पद १७।

कि 'श्याम प्रीति के वश में है। रंक और राव का या पुरुष और नारी का भेद प्रीति के आगे अदृश्य हो जाता है[1]।' ज्ञान का उपदेश देने आए हुए उद्धव का गोपियों के प्रेम-भाव से पराजित होने का वर्णन प्रेम-भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करता है। उसी स्थान पर सूर ने प्रेम की परिभाषा दी है—'प्रेम की उत्पत्ति प्रेम से ही होती है। प्रेम से ही पार लग सकते है। प्रेम से ही संसार बँधा हुआ है और प्रेम से ही परमार्थ मोक्ष प्राप्त होता है। प्रेम का एक निश्चय ही सरस जीवन-मुक्ति है। इसी प्रेम से प्रेममय परमेश्वर प्राप्त होते हैं। भगवान् स्वयं भक्त के प्रेमाकर्षण से उसके पास खिंचते चले आते हैं[2]।' सूर भगवान् के 'प्रेम-परिपूरन' रूप से ही अपनी भक्ति-भावना प्रेमपूर्वक प्रकट करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि भगवान प्रीति का सच्चा निर्वाह करने वाले हैं[3]।' सूर ने प्रेमतत्व को, प्रेम के स्वरूप को, भगवान के प्रेम-मय रूप को, प्रेम के आर्द्र कर देने वाले प्रभाव को तथा प्रेम के भीतर सन्निहित रहने वाले विरह दुःख को बहुत अच्छी तरह पहचाना-समझा है। वे यह भलीभाँति जानते हैं कि प्रेम-पथ पर चलने वाले को सुख-दुःख का विचार नहीं करना चाहिए[4]। सूर के भगवान भी प्रेम से परिपूर्ण हैं और उनकी भक्ति भी प्रेम से परिपूरित है। सूर के पदों में प्रेम के विविध रूप-माधुर्य, वात्सल्य, सख्य आदि परिलक्षित होते हैं, जो अन्त में भगवद्विषयक रति में पर्यवसित होते हैं।

नरसिंह मेहता भी भगवान के प्रेममय आनन्दरूप का ध्यान विशेष उत्साह के साथ करते हैं। लीलावर्णनों में तो प्रेमलक्षणा माधुर्य भक्ति अपने मधुरतम रूप में अभिव्यक्त हुई ही है, अपितु अन्य पदों में भी भगवान् के प्रेममय रूप का तथा अपनी प्रेमस्वरूपा भक्ति का वर्णन इन्होंने प्रायः सर्वत्र किया है। एक पद में वे गोपीस्वरूपा हो कर कहते हैं कि 'मेरे प्रिय से प्रेम करने पर जन्म सफल हो जाता है।...जप तप तीर्थयात्रा आदि से देहदमन भी नहीं करना पड़ता, यदि प्रिय से प्रेम-पूर्वक रंगरलियाँ करें। प्रत्येक जन्म में भगवान की दासी हो कर

---

१ "प्रीति बस स्याम हैं, राव कै रंक कोउ, पुरुष कै नारी नहिं भेदकारी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६४२, पद २६२५।

२ "प्रेम प्रेम तैं होइ, प्रेम तैं पारहिं जइयै।
प्रेम बंध्यो संसार, प्रेम परमारथ लहियै॥
साचो निहचै प्रेम कौ, जीवनमुक्ति रसाल।
एक निहचै प्रेम कौ, जबै मिलै गोपाल॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १६२४, पद ४७१३।

३ "दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति निबाहक।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ७, पद १६।

४ "सूर गोपाल प्रेम पथ चलि करि क्यों दुख-सुखनि डरै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १५८८, पद ४६०४।

सूर और नरसिंह की विनय-भावना

सूरदास और नरसिंह मेहता की विनय-भावना में साम्य कम और विषमता अधिक है। सूर गोपियों के मुख से भगवान को खरी खोटी सुनाने में कुछ अक्खड़पन दिखा गए हों यह और बात है, किन्तु वैसे उनके विनय के पदों में प्रायः दैन्य का भाव ही अधिक है। आत्मनिवेदन एवं आत्मभर्त्सना भी पर्याप्त है, पापों का स्मरण और प्रायश्चित्त का भाव ही अधिक है। नरसिंह में इसके विपरीत दैन्य भाव नहीं के बराबर मिलता है, अक्खड़पन अत्यधिक मिलता है, आत्मभर्त्सना की अपेक्षा ईश्वर को अधिक उपालंभ दिए गए हैं, कहीं-कहीं भगवान को उनके निर्दयतापूर्ण अन्याय का ध्यान भी कराया गया है तथा भोलेभाले मुँहलगे भक्त के प्रेमपूर्ण अधिकार से कहीं मीठी कहीं कटु ऐसी गालियाँ भी दी गई हैं।

सूरदास ने आत्मभर्त्सना का भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि 'मेरा शरीर तो नखशिख पाप के जहाज के समान है। आप से विनय करते हुए मैं लज्जा से मर रहा हूँ[1]।' नरसिंह तो भगवान को ही 'निर्लज्ज'[2] कह कर यह धमकी देते हैं कि 'मुझे अपने दुःख की चिंता नहीं है, किंतु आपकी लाज-मर्यादा चली जायगी, यह निश्चित है[3]।'

कहाँ अपने पापों का स्मरण करके लज्जा से मरने वाले सूरदास और कहाँ भगवान को ही निर्लज्ज कह कर उनकी लाज चले जाने की धमकी देने वाले नरसिंह ? सूर में विनीत भक्त में पाई जाने वाली नम्रता का भाव है, जिसका नरसिंह में अभाव है। वे तो भक्त के प्रेमाधिकार से जो मन में आता है, सुना देते हैं।

सूरदास एक स्थान पर कहते हैं कि, 'भगवान्, मेरे जैसा पापी और कोई नहीं होगा। मन, वचन और कर्म से मैंने जितने पाप किए हैं उनकी संख्या भी अनगिनत है। पापों का लेख रखने वाले चित्रगुप्त ने जब यम-द्वार पर मुझे देखा और मेरे पापों को सुना तब उनके हाथ से मारे भय के कागज ही गिर गया। यम के आदेश

---

१ "विनती करत मरत हौं लाज।
नखसिख लौं मेरी यह देहा है पाप का जहाज।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ३०, पद ९६।

२ "निर्लज, शा काजे तुने लाज लगे ?"
—के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १४५, पद १३८।

३ "नरसिंआचा स्वामी ! माहरूं दुःख नहि।
मारता लाजशे जाशि ताहरी॥"
—के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला' पृष्ठ २३, पद १६।

पर और सबको तो ले जाने के लिए यमदूत दौड़ते है, किंतु 'मेरी अधमता और मेरे अपराधों को सुन कर तो मेरे पास तक कोई नही फटकता'।[1] यही वे कहते हैं कि 'मेरे जैसा खल, पापी और कामी अन्य कौन होगा[2] ?' वे अपने को पतितों का शिरोमणि[3] और पापियों का नायक[4] समझते हैं।

भक्त सदैव अपने राई के बराबर पापों को भी पहाड़ के समान समझता है। वह समझता है कि अपने पापों का, अपनी त्रुटियों का हमें निरंतर ध्यान होना चाहिए, अन्यथा मिथ्या अभिमान हमें गिरा देगा। सूर ने यहाँ अपनी भर्त्सना करके पापमय संसार में रहने वाले सभी मनुष्यों का, सभी भक्तों का प्रतिनिधित्व इस प्रकार के पदों में किया है। भगवान को 'पतितपावन' जान कर सूर अपने पापों को गिनाते हुए थकते नहीं हैं क्योंकि वे भगवान् से यह कहना चाहते हैं कि मेरे समान महा-पतित का उद्धार नहीं करने पर आपके 'पतितपावन' विरुद की सच्चाई पर कौन विश्वास करेगा ? वे यहाँ तक भक्त की अधिकारपूर्ण वाणी में कहते हैं या तो मेरा उद्धार करके अपने विरुद को निभाओ नहीं तो मेरे जैसे महापापी को तारने की अपनी अशक्ति को, अपनी पराजय को स्वीकार करो[5]।

नरसिंह मेहता दो-एक पदों में ही मनुष्यमात्र और भक्तमात्र का प्रतिनिधित्व करते हुए थोड़ी सी आत्मभर्त्सना करते हैं। वे कहते हैं कि 'मैंने ऐसे तो कैसे पाप किए होंगे भगवन्, जो तुम्हारा नाम लेते हुए भी नींद आती है। निद्रा, आलस्य और आहार में मैं रत रहता हूँ। निरर्थक बकबक करना भी मन को भाता

---

१ "हरि जू, मो सौ पतित न आन।
मन-क्रम-बचन पाप जे कीन्हे, तिनको नाहिं प्रमान।
चित्रगुप्त जमद्वार लिखत है, मेरे पातक भारि।
तिनहु त्राहि करि सुनि औगुन, कागद दीन्हे डारि।
और नि कौ जम कैं अनुसासन, किंकर कोटिक धावैं।"
सुनि मेरौ अपराध अधमई, कोऊ निकट न आवै।
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६५, पद १६७।

२ "मो सम कौन कुटिल, खल कामी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४६, पद १४८।

३ "हौं तो पतित-सिरोमनि, माधौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४५, पद १३६।

४ "हरि, हौं सब पतितनि को नायक।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४८, पद १४६

५ "तुम कब मौ सौं पतित उधारौ।
काहे कौं विरद बुलावत.. ......
तौ जानौं जौ मोहिं तारि हौ... ....."
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४४, पद १३२।

है। जीवन के दिन बीतते चले जाते हैं, किन्तु मैंने तो पाप के ही बड़े-बड़े टोकरे भरे हैं[1]।'

मनुष्य मे भक्ति की प्रवृत्ति की ओर जो एक विचित्र उदासीनता होती है उसका यहाँ बहुत अच्छा और स्वाभाविक प्रतिनिधित्व तथा चित्रण हुआ है।

पापो के लिए पश्चात्ताप करना भी भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए आवश्यक है। सूर ने परोक्ष रूप से मनुष्य मात्र को पापो के लिए पश्चात्ताप करने का उपदेश देते हुए अपने पश्चात्ताप का वर्णन किया है। सूर मे इस प्रकार के पश्चात्ताप की अभिव्यक्ति अनेक पदो मे हुई है। सूर एक पद मे कहते हैं कि 'ऐसे पाप करते-करते अनेक जन्म बीत गए, पर तब भी जी नहीं भरा, मन सन्तुष्ट नही हुआ। काम, क्रोध, मद और लोभ की अग्नि मे जलते रहने पर भी उसकी ज्वाला को बुझाने का प्रयत्न कभी नही किया। धन, दारा और सुत ने मिलकर इस ज्वाला को बढाया। मैं अज्ञानी इस ज्वाला को बुझाने के बदले विषयवासना के घृत से उसे बढ़ाता रहा। इस आग को ससार भर मे फैली देख कर मैं भटक-भटक कर अब हार गया हूँ। देखिए, तुम्हारी कृपा के बिना मैंने कैसे अपने आपको नष्ट किया है[2]।

भगवान की कृपा के बिना भक्त पापमय सृष्टि मे पापो की परम्परा बनाता चला जाता है ऐसे भक्त के भगवत्कृपा सम्बन्धी विश्वास की भी यहाँ पश्चात्ताप के भाव के साथ प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। सूर ने जहाँ पश्चात्ताप के भाव को प्रकट करने वाले ऐसे अनेक पद लिखे हैं वहाँ नरसिंह के पदो मे इस प्रकार के भाव को व्यक्त करने वाला पद ढूंढने पर भी नही मिलता। एक पद मे वे कुछ इस प्रकार की बात कहते भी हैं तो अत्यत सक्षेप मे और दार्शनिक दृष्टिकोण से। वे कहते हैं कि 'जीवन के मार्ग पर चलते चलते अनेक युग व्यतीत हो गए तब भी थोडा अन्तर रह ही गया। भगवान् के निकट रहते हुए भी भक्त और भगवान के मध्य

---

१ "बापजी, पाप में कवण कीधा हशे, नाम लेता नाथ निद्रा आवे,
उंघ आलस्य आहार में आदर्यां, लाभविना लव करवो कन आवे,
दिन पुठे दिन तो वहा जाय छे, दुरमतीना में भर्या रे डाला।"
— 'इ० सू० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह'
पृष्ठ ४७७, पद २' ।

२ "ऐसे करत अनेक जन्म गए, मन सतोष न पायौ।
काम क्रोध-मद-लोभ-अगिनिनैं, कबहूँ न जरत बुझायौ।
सुत-तनया बनिता बिनोद-रस, इहिं जुर जरनि जरायौ।
मैं अज्ञान अकुलाइ, अधिक लै, जरत मांझ घृत नायौ।
भ्रमि भ्रमि अब हार्‌यौ हित आपनैं, देखि अनल जग छायौ।
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, कैसैं जात नसायौ।"
— 'सूरसागर' पृष्ठ ५', पद १५४।

में अहंकार व्यवधान रूप होता है[1]।' इसमें पश्चात्ताप कम है, दार्शनिकता अधिक है।

अब नरसिंह और सूर के दैन्य भाव की विवेचना की जाय। नरसिंह में दैन्य भाव इसी रूप में और इसी हद तक मिलता है कि वे भगवान को दीनानाथ और अपने को दीन[2] कहते हैं या 'तुम्हारे बिना मेरा कोई नहीं है, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ[3]।' ऐसा भगवान से कहते हैं। वे भगवान के प्रति गोपी-भाव की तीव्र अनुभूति के कारण अपना अत्यधिक प्रेमाधिकार समझते हैं, इसलिए दैन्य कम प्रकट करते हैं। उनके गोपीभाव के फलस्वरूप जताये जाने वाले प्रेमाधिकार का परिचय एक पद में श्रेष्ठ रूप में मिलता है। वे हारमाला के, अपनी भक्ति की परीक्षा के अवसर पर भगवान से कहते हैं कि 'जब यशोदा आपको बाँधती थीं, तब मैं आपको छुड़ाता था इसे याद करके मुझे बचाओ[4]।' भक्त नरसिंह भगवान से कितना निकटतम सम्बन्ध स्थापित करके स्वयप्राप्त प्रेमाधिकार को अधिकारपूर्ण वाणी में प्रकट करते हैं यह देखते ही बनता है।

सूर का दैन्यभाव भक्त की दीन वाणी के रूप में प्रकट होता है, उसमें गोपी-भाव का अधिकार नहीं पाया जाता। कहीं वे भगवान से कहते हैं कि 'मैं तो दीन-दुखी और दुर्बल हूँ, तेरे द्वार पर नाम रटता पड़ा हूँ[5]।' तो कहीं वे कहते हैं कि 'इस दीन की विनती को ध्यान से सुनिए। . मेरे तो तुम ही पति और गति हो।

---

१ "अनेक जुग वीत्यारे, पथे चालता रे, तोये अन्तर रह्यो रे लगार।
प्रभुजी छे पासे रे, हरी नथी वेगला रे, आड़ो रे पड्यो छे अहंकार।।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८१, पद ३०।

२ "तू दयाशील, हूँ दीन, दामोदरा।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ ५, पद ३।

३ "श्री दामोदर हु शरण तमारे, तमो विना मारे नथी कोई जी।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता हारसमेना पद अने हारमाला', पृष्ठ ११५, पद ७३।

४ "जसोदाजी बाधतां ताणी, हु मूकावतो सारंगपाणि,
तमे ते दहाड़ा संभारो, एवु जाणीने उगारो।"
—के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हारसमेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १४८, पद १३६।

५ "हौं तो दीन, दुखित, अति दुरबल, द्वारैं रटत पर्यौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४४, पद १३३।

तुम्हारी कृपा के बिना मेरे दुखों को कौन मिटा सकता है[1] ?" एक पद में वे कहते हैं कि 'प्रभु, मैं तो अब आपके पीछे पीछे पीछा करता हुआ घूमूंगा। तुम दीनदयाल कहलाते हो तो मेरी सारी विपत्तियाँ दूर करो। मेरी यही प्रार्थना है कि अपने चरणों में मुझे डालो[2] ।' वे दीन हो कर विनय करते हैं कि 'पापी सूर के लिए कोई गति नहीं है, उसे अपनी शरण में ले लो भगवान[3] ।'

सूरदास अपने को पालनहार परमेश्वर के द्वार के श्वान के रूप में वर्णित करके प्रार्थना करते हैं कि 'अपने घर में मुझे बांधकर रखो[4] ।' वे अपनी निर्लज्जता का उल्लेख करके खिसियाने का भी वर्णन करते हैं जो दैन्य भाव का द्योतक है[5] ।

सूरदास में दैन्य भाव आत्मनिवेदन के रूप में भक्ति के उत्कर्ष के लिए आया है। यही दैन्यभाव भक्त और भगवान के मध्य में उत्पन्न होने वाले मिथ्याभिमान के व्यवधान को दूर करता है। दैन्य के द्वारा दीनानाथ की कृपा प्राप्त करने के लिए भक्त उत्सुक रहता है। सूर में यही उत्सुकता पाई जाती है। दैन्य के साथ साथ वे भगवान को उनके पतितपावन रूप की सामर्थ्य सिद्ध करने की चुनौती भी बार बार देते हैं। एक पद में वे कहते हैं कि ' भगवान यदि सामर्थ्य हो तो मुझे तारो क्योंकि मैं सभी पतितों में विख्यात पतित हूं और तुम्हारा नाम पतितपावन है। यदि मेरे लिए कोई उपाय नहीं सोच सकते तो व्यर्थ पतितपावन के विरुद का भार क्यों संभालते

---

१ "विनती सुनौ दीन की चित दै
मेरे तो तुम पति, तुमहिं गति, तुम समान को पावै ?
सूरदास प्रभु तुम्हारी कृपा बिनु, को मो दुख बिसरावै ? '
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६५, पद ४७ ।

२ "प्रभु, मैं पीछौ लियौ तुम्हारौ ।
तुम तौ दीनदयाल कहावत, सकल आपदा टारौ ।
सूर कूर की याही बिनती, लै चरननि मैं डारौ ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ७१, पद २१८ ।

३ ' सूर पतित कौं नाहिं कहूँ गति, राखि लेहु सरनाई ।'
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६१, पद १८७ ।

४ " धर अपनैं राखौ बाँध बिचारि ।
सूर स्वान के पालन हारै ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४६, पद १५० ।

५ " निपट निलज खिसियानौ ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६४, पद १६६ ।

हो ?"[१] सूर कृपालु भगवान की ढीठता प्रकट करते हुए प्रेमपूर्वक मीठी गालियाँ भी देते हैं कि आप कृपण[२] हैं, निष्ठुर हैं[३] अपनी कान घटाई मत होने देना[४] इत्यादि।

नरसिंह मेहता 'हारमाला' व अपनी भक्ति की परीक्षा के अवसर पर भगवान से पुष्पमाला स्वयं आकर पहनाने के लिए विनय करते-करते अधीर होकर भक्त के प्रेम-पूर्ण अधिकार से गालियों की बौछार-सी करने लगते हैं। भगवान को भी भक्त की मीठी गालियाँ मधुरतम लगती है, इसीलिए वे हार देने में विलम्ब करते हैं। नरसिंह की भक्तिभावना प्रेम प्रधान है। इसके फलस्वरूप भगवान के साथ उनका सम्बन्ध भी प्रेम का अमोघ एवं अभिन्न संबंध है। प्रेम के संबंधों में गालियाँ कहने सुनने में एक प्रकार के विलक्षण आनंद की अनुभूति होती है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। जब माता पुत्र को कभी हँसते मुस्कुराते हुए कभी बाहर से क्रोध करते हुए और भीतर से प्रेम बरसाते हुए गालियाँ देती है तब बालक के अंर्तमन में प्रायः जान बूझकर और खिझाखिझा कर मीठी गालियों के प्रेमानंद का अज्ञात रूप से पान करने की गुप्त प्रवृत्ति निहित रहती है। दाम्पत्य प्रेम में यही बात विशेष प्रबल रूप में देखी जाती है। गोपीरूप नरसिंह और प्रेमरूप परमेश्वर के प्रेम संबंध में नरसिंह के द्वारा गालियों की बौछार की जाती है तो उसमें भक्ति और प्रेम की वर्षा होने लगती है। बाह्य दृष्टि से देखने पर इसे नरसिंह की ढीठता कहा जा सकता है। नरसिंह भगवान को सूर के समान निष्ठुर[५] कृपण[६] इत्यादि तो कहते ही हैं अपितु

---

१ "नाथ सकौ तो मोहि उधारौ।
पतितनि मैं बिख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ।
सूर पतित कौ ठौर नहीं, तौ बहुत बिरद कत भारौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४३ ४४, पद १३१।

२ " कासौं कहैं कृपन इहिं काल।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४२, पद १२७।

३ "बेर सूर की निठुर भए "
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४४, पद ११३।

४ "सूरदास के प्रभु सो करियै, होइ न कान-कटाई।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६०, पद १८५।

५ "निरदे सदा हरि, दया तें तो नव धरा।"
—के० का० शास्त्री,
'नरसिंह महेता कृत हारसमेना पद अने हारमाला' पृष्ठ १७६, पद ३१।

६ "कृपण थयो रे तु कृष्ण काला।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता
कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १७६, पद ३१।

निर्लज्ज,[1] चोर,[2] क्रूर,[3] कृतघ्नी,[4] लपट,[5] धूर्त,[6] बधिर,[7] झूठ बोलनेवाला[8]

---

१ "भणे नरसैंयो सुनि हार आवो हरि,
निर्लज आ काजे तुने लाज लागे।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १४५, पद १२७।

२ "तू तो आव्य, चोरटा ! धाई ।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ ७०, पद ७०।

३ "क्रूर कां थई रह्यो, कृष्ण कामी !"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ २३, पद ११ ।

४ "नगुणा न थइये मारा नन्दलाला ।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला, पृष्ठ १४०, पद १३२।

५ "लपटा आज तारी लाज जाशे ।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १३९, पद १३०।

६ "धूतारो धरणीधर जाण्यो ।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला' पृष्ठ १४१, पद १३६।

७ "कानकूटा थया शामला श्री हरि"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत कृत हार समेनां पद अने हारमाला' पृष्ठ १४४, पद १३६।

८ "जेतां जूठो जदुनाथ रे"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १४१, पद १३६।

कपटी,[1] कुंभकर्ण,[2] कामी,[3] पापी,[4] लोभी,[5] स्वार्थी,[6] दुष्टनिवाज,[7] अभिमानी,[8] गूंगा,[9] कमजात[10] इत्यादि। गालियों की वर्षा करते हुए भी सकुचाते नहीं। कृष्ण

---

१ "आव्यने हार रे कपटी रे सुं कानडा।"
— के० का० शास्त्री,
'नरसिंहमेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला',
पृष्ठ १७५, पद २६।

२ "कुंभकर्ण..............
निद्रा अधिक तुने बाधी रे।"
— के० का० शास्त्री,
'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला',
पृष्ठ १५१, पद १३८।

३ 'कामी थ्यो, रे केशवा! मुनि प्रजवि पापी।
४ 'लोभी थ्यो लक्ष्मीवरा........'
५ — के० का० शास्त्री,
'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला',
पृष्ठ ६५, पद ४८।

६ "गरज माटे माय-बाप तिं वि कर्ता...........
...........काज ताहरूं सरूं,
वापडा मूक्या ते वन्य रोतो।'
— के० का० शास्त्री,
'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला',
पृष्ठ २२, पद १८।

७ "गरीब निवाज तुने कोण कहे शामला,
दुष्ट निवाज में आज जाण्यो।"
— के० का० शास्त्री,
'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद आने हारमाला',
पृष्ठ १७७, पद ३३।

८ "नरसैया साथे हारने काजे, आवडुं शुं अभिमान रे।"
— के० का० शास्त्री,
'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला',
पृष्ठ १४६, पद १३६।

९ "बोलतो शे नथी मुगो माटे।"
— के० का० शास्त्री,
'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला',
पृष्ठ १४०, पद ११६।

१० "तुम कमजात्य कुजात्य कहावो"
— के० का० शास्त्री,
'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला',
पृष्ठ ७०, पद ७०।

के साथ-साथ राधा को भी वे उपालम देते हुए कहते हैं कि 'अजीत को जीत कर तुम्हें गर्व हो गया है और तुम्हारी कृष्ण पर ज्यादा चलने लगी है। अहंकार का त्याग करके अब मेरे कृष्ण को यहाँ आने दो'।[1] इसमें भी गोपीभाव ही प्रबल रूप में दिखाई देता है कि कुछ प्रेम मुझे भी मिलने दो, राधा।

नरसिंह प्रेम की गालियाँ देकर बाद में कृष्ण को पुचकारते भी हैं कि 'अब मैं तुम्हें गालियाँ नहीं दूँगा मेरे नंदलाला। तुम्हें दुलार से लंपट कहना तथा औरों से भी ऐसा कहलवाना—इसी प्रकार का तो है हमारा प्रेम गान[2]।' प्रेम का यह रूप कितना अद्भुत है, जिसमें गालियाँ भी दी जाती हैं, बाद में पुचकारा भी जाता है तथा गालियों को ही प्रेम-गान सिद्ध किया जाता है।

नरसिंह को हारमाला के अवसर पर प्रातःकाल तक भगवान के आकर उन्हें पुष्पमाला न पहनाने पर फाँसी पर चढ़ाने की धमकी और चिनौती राजा रा माडलिक से मिली थी। नरसिंह भगवान से हार पाने के लिए विनय करते हुए भगवान को भी धमकियाँ देते हैं कि 'तुम्हारी हँसी होगी[3]। तुम्हारे भक्तों का विश्वास उठ जायगा,[4] मुझे मृत्यु का भय नहीं, किन्तु तुम्हारा भक्तवत्सल बिरुद चला जायेगा[5]।

---

१ "अजित तें जीतियो
चाल ताहरो घर मा वधु दाखियो
छोड्य आचल, रूनि गर्व नव कीजिए, जारो अहंकार ओना जोता,
थया नरसैंयो तु मूक्य मम नाथ ने"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ २०६, पद १२५।

२ "हवां गाल न देउ मारा लाला
तने लंपट कहा दुलावे, एवुं छे गान अमारू रे।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १५०, पद १३७।

३ "हादसा जो तु उपहास्य थारो।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ ६, पद ३।

४ "ताहरा दासनां चित्त चलशे।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १७, पद १३।

५ 'मृत्युने भये नरसैंयो बीतो नथी,
भक्तवत्सल ताहरू बिरद जाशे।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १३१, पद ११३।

तुम्हारी लाज चली जायगी' इत्यादि । ये बिलकुल ढीठ हो कर भगवान से यहाँ तक कहते हैं कि 'मुझे एक हार देने में तुम्हारे बाप का क्या जायेगा[2] ?' इनकी यह ढीठता 'हारमाला' के अवसर पर अन्य सन्यासियों से ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग संबंधी वाद-विवाद करते समय भी देखी जाती है, जहाँ ये उन सब को ढीठ होकर खरी-खरी सुना देते हैं। भगवान को निर्दय कह कर भगवान की निर्दयता के लिए अनेक प्रमाण भी ये देते है, जैसे पयपान कराने वाली पूतना के ही प्राण लिये, दान के मिस बलि की हत्या की[3] इत्यादि ।

अपनी भक्ति की परीक्षा हो रही थी, उसे चुनौती दी जा रही थी इसलिए नरसिंह की विनयभावना मे तीव्रता अधिक पाई जाती है, जिसके अन्तर्गत कही वे विरुदावली गाते है, कही प्रेमोपालभ देते हैं तो कही भगवान को धमकियाँ भी देते हैं कि मेरे साथ-साथ यह आपकी भक्तवत्सलता की भी परीक्षा है ।

भक्त सूरदास और भक्त नरसिंह मेहता अपने भक्ति और विनय के पदो मे अपने अपने ढग से अपनी भक्ति-भावना को अभिव्यक्त करते हुए भक्तो को भक्ति-विभोर कर देने वाली भक्ति की बातें अलकार-मुक्त, आडबरहीन शैली मे सीधी-सादी भक्तो की भोलीभाली भाषा मे कहकर कृत-कृत्यता अनुभव करते हैं। नरसिंह ने तथा सूर ने अपनी भक्ति-भावना को भगवान की आरती बनाकर उसके द्वारा भी प्रकट किया है । नरसिंह की "प्रभु-आरती'[4] कठस्थ रह सके तथा सदा गाई जा सके इतनी सरल, हृदय को प्रेमविभोर कर दे इतनी सरस तथा करुणो

---

१ "... लाज जाशे अल्पानारी वाहला ।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १३५ पद १०१ ।

२ "नरसिआनि एक हार आपता,
ताहरा बापनू शू रे जाय ?"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १६, पद १५ ।

३ "निरदे सदा हरि, दया तैं तो नव धरी,
पयपान करावा पूतना प्राण लीधा,
आपता दान पाताले बलि चांपियो ।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १४५ ४६, पद १२६ ।

४ "जय जय नटवर वेषा, आरती उतारूं जदुवर जगदीशा, जयदेव जयदेव ।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४६ – पद ३० ।

को पवित्र कर दे इतनी मधुर है। उन्होंने 'राधाकृष्ण की संयुक्त आरती'[१] भी बनाई है, जिसमें राधाकृष्ण के दिव्य शृंगार का ध्यान मधुर भाव से किया गया है। सूर ने अलंकारयुक्त शैली में एक अद्भुत रूपक की सृष्टि करके भगवान कृष्ण की विराट आरती का आयोजन किया है, जिसमें आरती के नीचे का आसन कच्छप है, आरती की डांडी शेषनाग है, पृथ्वी दीपक (सरवा) है, सातों समुद्र घृतरूप हैं और पर्वत बाती हैं। सूर्य और चन्द्र के रूप में इस आरती की दीप ज्योति चारों ओर प्रकाश कर रही है, जिससे तम दूर हो रहा है। काली घटाएँ इस आरती का काजल हैं तथा उडुगण इस ज्योति के फूल हैं। इस ज्योति के उदित होने पर नारदादि मुनि, सनकादि ऋषि, ब्रह्मा, देव, मानव, असुर इन सबका समुदाय आरती के आगे प्रेम में लीन हो, भक्तिभाव से विभोर हो अपनी अपनी गति में, अपने अपने ढंग से नाचने लगता है। इस प्रकार समस्त प्रकृति, निखिल ब्रह्माण्ड प्रभु की आरती उतार रहा है, उसके स्तवन में मग्न हो रहा है, धातुमय अर्थात ब्रह्ममय हो रहा है[२]। इस प्रकार की विराट आरती की विराट कल्पना कविवर सूर ही कर सकते हैं, जो स्वयं लोकोक्ति के अनुसार हिन्दी साहित्याकाश के विराट सूर्य हैं। जहाँ नरसिंह की आरती भोले-भाले भक्त की सहज प्रभु-आरती है, वहाँ सूर की आरती परम भक्त के साथ एक विराट कवि की विराट प्रभु आरती है। प्रभु-भक्ति के पदों में हम नरसिंह की भाषा को प्रायः एक भक्त की भाषा के रूप में ही अधिक पाते हैं, जब कि सूर भक्त की भाषा में गाते-गाते भी कवि की भाषा में गा बैठते हैं। भक्त सूर का कविरूप अवसर मिलते ही प्रबल हो जाता है अपितु प्रबल हुए बिना रह ही नहीं सकता।

---

१ "राधा माधवनी करू आरती, शोभा वही नव जाय रे,

हरि नृत्य करें वृन्दावनमां, संगे लटने राधा रे।"

— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४२७, पद ५४१।

२ "हरिजू की आरती बनी।
अति विचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी।
कच्छप अध आसन अनूप अति, डांडी सहसफनी।
मही सराव, सप्तसागरघृत, बाती सैल घनी।
रवि-ससि-ज्योति जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी।
उडत फूल उडगन नभ अन्तर, अंजन घटा घनी।
नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर असुर, अनी।
काल-कर्म गुन ओर अन्त नहिं, प्रभु इच्छा रचनी।
यह प्रताप दीपक सुनिरन्तर, लोक सकल भजनी।
सूर सब प्रगट ध्यान मैं अति विचित्र सजनी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२३, पद ३७१।

अध्याय ८

सूरदास और नरसिंह मेहता की दार्शनिकता

सूरदास और नरसिंह मेहता सामान्य कवि या साधारण भक्त नही थे, अपितु असामान्य प्रतिभा से विभूषित महाकवि और भक्ति की गहराइयो मे अवगाहन करने वाले असाधारण भक्त थे। ऐसे परम भक्तो और महाकवियो के हृदय से निकलने वाली वाणी भी गूढ सकेतो से परिपूर्ण हो, दार्शनिक दृष्टिकोण से वेष्ठित हो, साहित्यिक प्रतिभा और कौशल के बल पर विराट रूपको की योजनाओ से युक्त हो यह अत्यन्त स्वाभाविक है।

निर्गुण सगुण सम्बन्धी दृष्टिकोण

सूरदास और नरसिंह मेहता ईश्वर के निर्गुण और निराकार की अपेक्षा सगुण और साकार रूप की उपासना को महत्व क्यो देते हैं इसी पर सर्वप्रथम विचार किया। इन दोनो कवियो का इस सबध मे जो दार्शनिक दृष्टिकोण है वह स्पष्ट है। सूरदास तो निर्गुण और निराकार को मन और वाणी से अगम्य और अगोचर बतलाकर निरालब रूप से ब्रह्म की प्राप्ति के लिए दौडना निरर्थक समझते हैं और इसीलिए उसे सब प्रकार से अगम्य अनुभव करके सगुणलीला के पद गाते है[1]। सगुण-निर्गुण में निर्गुण की अगम्यता सिद्ध करके सगुणलीला का वर्णन करने वाले सूर के लिए निर्गुण और निराकार भी सिद्धान्त रूप मे ग्राह्य हैं। निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर मे वे कोई अन्तर नही देखते। वे कहते हैं कि वेद और उपनिषद जिसे निर्गुण बतलाते हैं वही सगुण हो कर नद के घर दाँवरी बँधाता है[2]। यद्यपि सच्चा भक्त निर्गुण और सगुण मे अन्तर

---

१ "अविगत-गति कछु कहत न आवै।

...

मन बानी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै।
रूप रेख-गुन-जाति-जुगुति बिनु निरालब किन धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातैं सूर सगुन-पद गावै।

२ "वेद उपनिषद, यश कहैं निर्गुणहि बतावै।
सोइ सगुण होइ नन्द की दावरी बधावै।"

—डा० मुंशीराम शर्मा द्वारा उद्धृत, 'भारतीय साधना और सूर साहित्य', पृष्ठ ८७।

देख ही नही सकता, तथापि सगुण का आकर्षण उसके लिए प्रबल रहता है यह तो निर्विवाद तथ्य है। नरसिंह मेहता भी सगुण और निराकार में अन्तर नही देखते। किन्तु वे सूर के समान, सगुणलीला के पद गाने के लिए कोई तर्क या सफाई भी नहीं देते। कहीं वे कहते हैं कि जो 'तारणतरण' पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान निराकार कहलाते हैं उसके साथ रगरलियाँ करने से जन्म-मृत्यु का चक्कर छूट जाता है[१]। तो कहीं कहते हैं कि वेद जिसे 'नेति' कहते हैं, नारद भी जिसे प्राप्त नहीं कर सकते वे ही हरि गोपियों से प्रेम करते हैं[२]। वे निर्गुण ब्रह्म का वर्णन भी करते हैं। वे कहते हैं कि "बाती और तेल के बिना अपूर्व अनल दीप की दिव्य ज्योति के समान वह है[३]।" सूर ने जिस प्रकार गोपियो के मुख से निर्गुण निराकार ब्रह्म का अनेक पदो में थोडा सा मजाक किया है कि "निर्गुण कौन देश को बासी ?" इत्यादि, उसी प्रकार नरसिंह मेहता ने स्वय 'हारमाला' के अवसर पर विश्वेश्वराश्रम नामक सन्यासी से 'सोऽहं ब्रह्म' एकान्त में मन मे गान के लिए कहे जाने पर कुछ मजाक के स्वर में उत्तर दिया कि "मन मे तो भगवान का नाम वही ले जो गूँगा हो, हम तो नाचते-गाते हुए हरिकीर्तन करेंगे। चोरी का माल समझता हो वही भगवान का नाम एकान्त मे जाकर ले, हम तो अपनी हरिभक्ति को चोरी का माल नही समझते जो कोने मे छिप कर उसके रस का पान करें। हम तो हरिरस का पान सब के मध्य मे स्वय भी करते हैं और सभी को कराते हैं[४]। वे 'हारमाला' में जब भगवान के प्रत्यक्ष आ कर अपनी

---

१ "तारण तरण पूरण पुरुषोत्तम, निराकार जे कहावे रे,
नरसैंयाचा स्वामी सगे रमतां, पुनरपि जन्म न आवे रे"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १४६, पद १३४।

२ "वेद नेति कहे नारद नव लहे,
ए हरि गोपिका पर प्रेम आवे"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १११, पद ६६।

३ "बत्ती विण तेल विण, सूत्र विण जो वली, अचल झलके सदा अनल दीवो।
नेत्र विण निरखवो, रूप विण परखवो, वण जिव्हाए रस सरस पीवो॥"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य समह', पृष्ठ ४८५, पद ३६।

४ 'मन मा ले हरिनु नाम जे होय जे मूंगणो रे,
नाची कूदी कीजे कीर्तन, लाजी केम जाइये रे।
चोरानो शु छे माल जे, खूणे बेसी खाइये रे,
अमे पीने हरिरस पान के परने पाइये रे।
आगल निसरवु सरियाम "
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १५२ ५३, पद १४२।

ग्रीवा मे स्वय पुष्पमाला अर्पित करने का वर्णन करते हैं तब कहते हैं कि वहाँ पर उपस्थित सभी ने भगवान को अपने-अपने भाव के अनुसार और अनुरूप देखा, जैसे नरसिंह ने छैल-छबीले रगीले कृष्ण के रूप में भगवान को देखा, ब्रह्माश्रम नाम के सन्यासी ने भगवान को ब्रह्म के रूप मे देखा, नरसिंहाश्रम ने नृसिंह रूप देखा, रघुनाथाश्रम ने रघुनाथ रूप देखा इत्यादि[१]। केवल निर्गुण और सगुण मे ही नही, अपितु सगुण के अन्तर्गत उपास्य अनेक देवताओ मे भी नरसिंह कोई अन्तर नही देखते यह इससे स्पष्ट हो जाता है। भक्त जानता है कि उपासना के सभी मार्ग अन्त मे उसी अनत तत्व के पास हमे ले जाते हैं। समन्वयवाद सच्चे भक्तो की भक्ति का प्राण होता है तथा साम्प्रदायिक सकीर्णता को वे सदा दूर करना चाहते हैं। यह और बात है कि अनन्य भक्ति का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए कहीं-कहीं वे अपने इष्टदेव को छोड कर अन्य किसी की शरण मे जाने को तैयार न हो।

समन्वयवादी दृष्टिकोण

यह समन्वयवाद सूर और नरसिंह दोनो मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है। समन्वयवाद के सबध मे इन दोनो भक्तकवियो का दृष्टिकोण एक ही प्रकार का है। यद्यपि प्रेमलक्षणा भक्ति मे कृष्ण को ही परब्रह्म माना जाता है, तब भी सूर और नरसिंह राम और कृष्ण मे या शिव और कृष्ण मे कोई अन्तर नही देखते। सूर और नरसिंह पर साम्प्रदायिकता का दोषारोपण करना सूर और नरसिंह को पूर्ण रूप से न समझने के अतिरिक्त और कुछ नही है। इन दोनो कवियो ने अपने विनय के पदो मे कृष्ण और राम के नाम को एक ही मान कर लिखा है तथा कृष्ण से विनय करते हुए कृष्ण की महिमा के साथ राम को महिमा को एक और अभिन्न मान कर गाया है। सूर ने तो इसके अतिरिक्त नवम स्कध मे रामावतार का भी पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन किया है। सूर ने,गोपियो द्वारा कृष्ण के अतिरिक्त शिव, सूर्य, देवी गौरी आदि की भी पूजा कराई है। भक्त का हृदय कभी भी सकीर्ण नही हो सकता, उसका दृष्टिकोण कभी भी सकुचित नही हो सकता। 'हारमाला' के अवसर पर भगवान के प्रत्यक्ष होने पर सभी का भगवान को अपनी भावना के अनुसार देखने का वर्णन कितना बडा समन्वयवाद है। सकुचित दृष्टिकोण रखने वाला कोई सकीर्ण

---

१ "ब्रह्माश्रमे ब्रह्मरूप दीठा,
.. ..
नरसैंये रंगीलो छबीलो दीठो।
रघुनाथाश्रमे रघुनाथ दीठा
नरसिंहाश्रम नृसिंह रूप रे।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १५२-५३, पद १४२।

हृदय का कवि होता तो वह यह वर्णन करता कि केवल मैंने भगवान को देखा, मैंने उनसे पुष्पमाला पाई, अन्य सब वादविवाद करने वाले या उपदेश देने वाले उस दर्शन-सुख से वंचित रह गए, नरसिंह के भाग्य को देखकर चकित रह गए। किन्तु सच्चे भक्त म ऐसी मनोवृत्ति सभव ही नही हो सकती।

अब रामकृष्ण समत्व की इन दोना कवियों म मिलनवाली प्रवृत्ति का समर्थन करने वाले कुछ अशो को देखा जाय। 'सूरसागर' म ऐसे अनेक पद मिलते हैं, जिनम कृष्ण की स्तुति करत हुए राम और कृष्ण दोनो को एक ही मान कर गुणकीर्तन किया गया है। एक पद म पतितो का उद्धार करने वाले 'नद-नदन-चरन' की वदना करते हुए सूर अहिल्या के उद्धार का तथा केवट के राम चरणो का धोन का उल्लेख करते हैं[1]। ऐसे रामकृष्ण समत्व के पद सूरसागर म पचासो मिलत हैं। कही वे मन को रामनाम का ग्राहक होने का उपदेश दे कर अन्त म कहत हैं कि श्याम का सौदा सच्चा सौदा है इस बात को मान लो क्योंकि और वाणिज्य म लाभ नहीं होता, बल्कि मूल म भी हानि होती है[2]। यहाँ राम और श्याम को एक ही माना गया है।

नरसिंह मेहता भी विनय के अनेक पदो म राम और कृष्ण को एक ही मान कर विरुदावली गाते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि शबरी के बेर तुम्हें स्वादिष्ट लगे और द्रौपदी की लाज रखने तुम द्वारिका से एक ही साँस म दौड आये[3]। यहाँ हम स्पष्ट रूप से राम और कृष्ण को एक ही रूप म वर्णित पात हैं।

---

१ "भजि मन नंद नंदन चरन।

जासु पद-रज परस गौतम-नारि गति उद्धरन।
जासु महिमा प्रगटि केवट, धोइ पग सिर धरन।
कृष्ण-पद-मकरंद पावन ..."
— 'सूरसागर', पृष्ठ १०१ २, पद ३०८।

२ 'होउ मन राम-नाम कौ गाहक।

और बनिज में नहीं लाहा, होति मूल में हानि।
सूर श्याम कौ सौदा साचौ, कह्यो हमारो मानि ॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १०२, पद ३११।

३ "शबरीना बारमा स्वाद भा को जट्यो,

द्रौपदी केरी लाज ने कारणे
द्वारकाथी धस्यो एक श्वासे
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १४८, पद १३३।

सूरदास ने अनेक पदों में स्वतन्त्र रूप से भी राम की महिमा का गान किया है। नरसिंह ने इस प्रकार केवल राम की महिमा का स्वतन्त्र रूप से गान नहीं किया है, वे मानो राम और कृष्ण का भिन्न मान ही नहीं सकते हैं। सूर एक पद में कहते हैं कि आनंदमग्न हो कर राम का गुणगान करने से सब प्रकार के दुःख-संताप दूर हो जाते हैं[1]। कहीं वे कहते हैं कि हमारे निर्धन के धन राम स्वयं हैं[2]। राम नाम की ओट को वे सबसे बड़ी ओट मानते हैं[3]। वे कलियुग में रामनाम को ही आधाररूप वर्णित करते हैं[4]। वे अपने मन रूपी सुक को भक्तिरूपी उस वन की ओर चलने को कहते हैं जिस वन में रामनाम के अमृतरस को श्रवणपात्र भर कर पिया जा सकता है।[5]

सूरदास ने कृष्ण और राम के एकत्व का एक स्थान पर बड़े ही सुन्दर और चमत्कारपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। एक पद में वे कहते हैं कि जब यशोदा कृष्ण को पालने में झुलाती हुई राम-कथा सुनाने लगी तो सीता-हरण प्रसंग आते ही कृष्ण की निद्रा भंग हो गई। वे चौंक कर उठ बैठे और लक्ष्मण का नाम लेकर धनुष-बाण माँगने लगे। यशोदा यह देखकर भ्रम और आश्चर्य में पड़ गई[6]। यहाँ तो सूर ने यह दिखाया कि भक्त तो राम और श्याम को एक मानते ही हैं, अपितु स्वयं कृष्ण भी अपने कृष्णरूप को भूल कर अपने को रामस्वरूप अनुभव करने लगे। इस प्रकार की सुन्दर एवं चमत्कारपूर्ण कल्पना सूर ही कर सकते हैं।

नरसिंह मेहता ने तो 'हारमाला' के अवसर पर और सन्यासियों से वादविवाद होने पर स्पष्ट रूप से यह कहा और समझाया है कि तुम मुझे रामनाम लेने को कहते हो, किन्तु तुमने तो रामनाम की उपासना में दंभ मिलाया है। राम के सेवक में तो

---

१ "आनंद मगन रामगुन गावै, दुख-संताप की काटि तनी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १४, पद ३६।

२ "हमारे निर्धन के धन राम।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २१, पद ६२।

३ "बड़ी है रामनाम की ओट।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ७६, पद २३२।

४ " कलि मैं राम नाम आधार"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १७२२, पद ४६३४।

५ "सुवा चलि ता बन कौ रस पीजै।
जा बन राम नाम अम्रित, स्रवन पात्र भरि लीजै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ११२, पद ३४०।

६ "रावण हरण करयौ सीता को सुनि करुणामय नींद बिसारी।
सूर स्याम कर उठे चाप कों, लछिमन देहु, जननि भ्रमभारी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ३२८, पद ८१६।

समदृष्टि होती है। वास्तव में राम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है[१]। हारमाला के अवसर पर अन्त में जब भगवान प्रत्यक्ष होते हैं और नरसिंह को पुष्पमाला अर्पित करते हैं तब भगवान को जिसने जिस रूप में भजा था उसने उन्हें उसी रूप में देखा, जैसे रघुनाथाश्रम ने राम के रूप में, नरसिंह ने कृष्ण के रूप में, नृसिंहाश्रम ने नृसिंह रूप में इत्यादि। यहाँ नरसिंह ने केवल रामकृष्ण के समत्व को ही नहीं दिखलाया है, अपितु अद्भुत समन्वयवाद का दर्शन प्रस्तुत किया है।'भावे हि विद्यते देव' इस महान सत्य को वे जानते थे। उनका हृदय साम्प्रदायिक संकीर्णता से वेष्टित कभी नहीं रहा। इसीलिए तो उन्होंने सभी को भगवान के दर्शन अपने-अपने इष्टदेव के रूप में ही कराये हैं।

नरसिंह ने शिव और कृष्ण का अभेद भी दिखलाया है। पहले नरसिंह शैव ही थे और शिव की स्तुति करने पर जब शिवजी इन पर प्रसन्न हुए, इन्हें दर्शन दिया तब बारबार वर माँगने के लिए भगवान का आग्रह होने पर नरसिंह ने अन्त में यही माँगा कि "आपको जो प्रिय हो, आपको भी जो दुर्लभ हो वह मुझे कृपा करके दीजिए[२]। शिव के हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में शिवजी विराजमान हैं। ऐसा उमापति और रमापति के सम्बन्ध में अभेद है इस महान रहस्य को नरसिंह भलीभाँति जानते थे। शिवजी ने ही इन्हें कृष्ण भक्ति के मार्ग की ओर अग्रसर किया ऐसा बारबार कहकर इन्होंने कृष्ण और शंकर का अभेद दिखलाया है और अपना समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। एक पद में वे यहाँ तक कहते हैं कि जो गंगाधर और गोकुलपति में भेद समझता है, वह वैष्णव नहीं बल्कि अधम से अधम जाति का है[३]।

सूरदास भी पहले शैव थे ऐसा डा० मुंशीराम शर्मा का मत है। शिव की पूजा

---

१ "अल्या तु कैसा रहे रामदासिया,
तें तो हमे राम उपासिया।
रामजीना सेवक होय समदृष्टि,
ने कोने नव बोलें माठु रे।
राम-कृष्णमा अंतर शानो ?"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ ६७, पद १६।

२ "तमने जे वल्लभ होय जे दुर्लभ, आपो रे प्रभुजी मुने दया रे आणी।"
— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ७४, पद १।

३ "गंगाधर मा ने गोकुल पतिमा, ने कोई जाणे भेद रे,
भणे नरसैंयो वैष्णव नहिते, अधम जान कहे वेद रे।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १७०, पद १४।

और स्तुति उन्होंने अपने कतिपय पदों में बराबर की है। शिव और श्याम का वे साथ ही साथ ध्यान करने का वर्णन करते हैं। शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने का समन्वयवादी दृष्टिकोण सूर में पूर्णरूपेण मिलता है वे एक पद में शिव और कृष्ण की एक ही छंद में उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा बड़ी ही सुन्दर स्तुति करते हैं। वे कहते हैं कि बालकृष्ण के बड़े बड़े सुन्दर केश मानो शिव की जटा है, बालकृष्ण के ललाट का केसरबिंदु मानो शिवजी का त्रिनेत्र है, बालकृष्ण के कंठ का नीलमणि से युक्त कठुला शिवजी की गरल युक्त नीली ग्रीवा है, बालकृष्ण के हृदय पर शोभा पाने वाली माला का टेढ़ा व्याघ्र नख माना शिवजी का मस्तक से उतारा हुआ द्वितीया का निष्कलंक चन्द्र है, बालकृष्ण की धूल धूसरित देह मानो शिवजी की विभूति से शोभित देह है[1] इत्यादि। कृष्ण में ही शिव के रूप का दर्शन करना सूर के समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचायक है।

इस प्रकार सूर और नरसिंह दोनों ही रामकृष्ण के समत्व का तथा कृष्ण और शिवजी के अभेद का वर्णन बराबर करते हैं। समन्वयवादी दृष्टिकोण इन दोनों महान भक्तकवियों में समान रूप से मिलता है।

जीव और ब्रह्म का एकत्व

अब जीव और ब्रह्म के एकत्व का, आत्मा और परमात्मा के अभेद का, अद्वैतवादी दार्शनिक दृष्टिकोण इन कवियों ने किस रूप में और किस प्रकार प्रस्तुत किया है इस पर विचार किया जाय। सूर और नरसिंह दोनों ने जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की है। जीव और ब्रह्म के एकत्व सम्बन्धी दार्शनिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में सूरदास की अपेक्षा नरसिंह मेहता अधिक प्रभावशाली हो गए हैं, क्योंकि ये

---

१ "बरनौं बाल भेष मुरारि।
थकित जित तित अमर मुनि-गन, नंदलाल निहारि।
केस सिर बिन पवन के चहु दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसुरूप कियौ त्रिपुरारि।
तिलक ललित ललाट केसरि बिंदु सोभाकारि।
रोष अरून तृतीय लोचन, रह्यौ जनु रिपु जारि।
कंठ कठुला नील मनि, अंभोज माल सवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहि भाइ भए मदनारि।
कुटिल हरि-नख हिऐं हरि कैं हरषि निरखति नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि।
सदन रज तन स्याम सोभित, सुभग इहिं अनुहारि।
मनहु अंग बिभूति-राजित संभु सो मधुहारि।"
— सूरसागर', पृष्ठ ३१७-१८, पद ७८७।

तत्वज्ञान की गूढ़तम बातें सरल भाषा में प्रभावोत्पादक ढंग से कह सके हैं। ब्रह्म और जीव के तादात्म्य सम्बन्ध का शुद्धाद्वैती दार्शनिक दृष्टिकोण इन दोनों भक्तों की *कृष्णभक्ति का रहस्य है। इन दोनों के लीलावर्णन में भी यही दृष्टिकोण कहीं स्पष्ट* रूप में, कहीं संकेत रूप में तो कहीं रहस्यरूप में सन्निहित है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं, कोई अन्तर नहीं, यही शुद्धाद्वैती दृष्टिकोण है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जीव और ब्रह्म एकरूप हैं। वास्तव में भिन्न प्रतीत होने वाले जीव और प्रकृति ईश्वर के ही चित और सत् रूप अंश हैं। जिस प्रकार पुष्प से सौरभ, जड़ से वृक्ष, अग्नि से स्फुल्लिंग और समुद्र से बूंद भिन्न नहीं है, उसी प्रकार जीव और प्रकृति सत्य प्रतीत होते हुए भी उस परम और अनंत तत्व के ही अंश हैं। जीव और ब्रह्म में अविभाज्य अभेदत्व है यही शुद्धाद्वैत का बुनियादी सिद्धान्त है। अनेक गोपियों के हृदय में कृष्ण का निवास असंख्य जीवों में ब्रह्मत्व की विद्यमानता के अतिरिक्त और क्या है ?

नरसिंह और सूर ने जो लीलावर्णन किया है उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि का विवेचन पहले किया जाय और उसके बाद स्पष्ट रूप में आए हुए शुद्धाद्वैती दार्शनिक विचारों की विवेचना की जाय। एक स्थान पर सूरदास कहते हैं कि अभिमान का त्याग करके भगवल्लीला का दर्शन करने वाला कृष्णरूप हो जाता है[1]। नरसिंह मेहता भी कहीं यह कहते हैं कि दिव्य द्वारिका की रासलीला देखते-देखते मेरा पुरुषत्व (जो अभिमान का प्रतीक है) खो गया और मैं स्त्री रूप गोपी-स्वरूप हो गया[2]। तो कहीं अपने को राधा की दूती के रूप में वर्णित करते हैं[3]। कृष्णमय हो जाना और कृष्णमय गोपीरूप हो जाना विशेष अन्तर नहीं रखता। नरसिंह ने अपने को गोपी

---

१ "तजि अभिमान कृष्ण जो पावै सोई मुक्ति कहावै।

•

सूरदास हरि की लीला लखि कृष्ण रूप ह्वै जावै।"

— श्री द्वारिका प्रसाद परीख तथा प्रभुदयाल मीतल द्वारा उद्धृत, 'सूर निर्णय', पृष्ठ १२३।

२ "नरसैंयानु पुरुषपणु गयुं नयुं जेनी नेला रे।"

— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ३३।

३ 'कमल करे लखी, जेइ नरसैं-सखी, पत्रिका लई ह्वे तुरत जाए,

. ...

लई विध्वित पत्र, जानी तु रे तत्र, गोप-गोपेश ज्यो थाय मेला।'

— इ० सु० देसाई, नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',

पृष्ठ ९७, ११-१२।

के रूप मे और राम की वहू के रूप मे भी वर्णित किया है[1]। यहाँ वे रहस्यवादी हो जाते है। एक स्थान पर उन्होने 'कृष्ण-कृष्ण' कहने से कृष्णरूप हो जाने का भी वर्णन किया है[2]। इन दोनो कवियो ने भगवान की लीलाओं को स्वत स्वरूप से ही आनदमय अनुभव किया है और भगवान के आनन्दरूप की ही इन दोनों ने उपासना की है, अत लीलाओ का वर्णन आनन्दरूप ईश्वर की आनन्दमयी प्रवृत्ति के वर्णन के रूप मे है। कृष्ण ब्रह्म है तथा राधा तथा गोपियाँ जीव है, जो प्रेमाधिक्य मे एकरूप हो जाते हैं। कृष्ण ईश्वर है और ये सब उनकी शक्तियाँ हैं जिनका इनसे पृथक अस्तित्व नही हो सकता। कृष्ण आत्मा हैं और ये सब आत्मा की वृत्तियाँ हैं। चीरहरण लीला का दार्शनिक रहस्य यही है कि मोह-माया के सासारिक आवरणों से मुक्त हो कर, पूर्ण नग्न अर्थात परम पवित्र रूप मे, भक्ति की सरिता से सद्य-स्नाता के रूप मे निकलकर आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार करे। भक्त और भगवान के बीच मे, जीव और ब्रह्म के मध्य कोई पर्दा या अन्तर हो ही नही सकता। इसीलिए अभिसारिका के रूप मे नरसिंह और सूर की राधा गले का हार निकाल देती है[3] क्योकि पूर्ण-मिलन मे वह बाधास्वरूप है, अन्तराय रूप है। जीव को पूर्ण मिलन मे अन्तराय रूप सभी वस्तुओ का त्याग करना पडता है। दोनो कवियों का सभोगवर्णन भी शुद्धाद्वैत का प्रतीक मात्र है। मानलीला भक्त के अभिमान के प्रतीक के अतिरिक्त और कुछ नही है। दानलीला मे भगवान को सब कुछ समर्पित कर देने का भाव है। माखनचोरी भगवान के द्वारा भक्तो के सुकृत्यो का सग्रहमात्र है ताकि

---

१ (अ) "सुदरी श्रीहरि। सहस्र घिरि ताहरे,
नेमाहि हु एक दासी ताहरी।"
— कै० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता
कृत हार ममेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १६, पद ११।

(ब) "नानकडी वहू राम भणवा लागी रे, मेती वहूने वारो रे।"
— वही, पृष्ठ ८१, पद १।

२ "कृष्णजी कृष्णजी कहतों, कृष्ण सराखा थाशो।"
— इ० सु० देसाई, नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ६१३, पद १११।

३ (अ) "उतारत हैं कठिन तें हार।
हरिहिय मिलत होत है अतर, यह मन कियौ विचार।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५०१, पद १३०५।

(ब) "पिउजी कारण हु तो हार न धरती, जाणु रखे अतर थाये।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ५७८, पद १०१।

भक्त को अभिमान न हो जाय कि मेरे सुकृत्यों की गिनती भी नहीं की जा सकती। चुम्बन, आलिंगन आदि भगवान के द्वारा भक्त के हृदय की सुषुप्तभक्ति को जाग्रत करने के प्रेम सकेत के रूप मे है, जो अन्त में पूर्ण मिलन अर्थात् अद्वैत की ओर ले जाता है। विपरीत रति भगवान का भक्त के साथ का भक्तिपूर्ण खिलवाड है, जिसमे वह कभी-कभी भक्त को यह अनुभव कराता है कि उसका महत्व भगवान से भी बडा है। बच्चों को हम कधो पर उठा कर कहते हैं कि देखो तुम हमसे भी बडे हो गए। भगवान भी भक्तरूपी बालक का इसी प्रकार मनोरजन करता है। विपरीत रति का यही रहस्य है।

ब्रह्म और जीव दो नेत्रो के समान हैं जो दो होते हुए भी दृष्टि तो एक ही रखते हैं। शरीर और छाया के समान दो होते हुए भी एक होते हैं। सूर मे कृष्ण स्वय कई बार अनेक स्थानो पर राधा से शुद्धाद्वैती दृष्टिकोण की बातें प्रेम की आधारभूमि पर करते है। एक पद मे सूर के कृष्ण राधा से कहते हैं कि प्रकृति और पुरुष मे कोई अन्तर नही होता, केवल बातों का भेद होता है। जल और थल, जहाँ भी मैं निवास करता हूँ, तुम्हारे साथ ही रहता हूँ, तुमसे पृथक होकर नहीं। हमारे तुम्हारे शरीर दो हैं, पर जीव एक ही है। हम तुम दोनों ही ब्रह्मरूप है[1]।

नरसिंह मेहता ने भी जीव और ब्रह्म की एकता का वर्णन बार-बार किया है। 'हारमाल' के अवसर पर भगवान स्वय नरसिंह से कहते हैं कि "तू पुरुषत्व भुलाकर सखीरूप हो गया और लोक-लाज की चिन्ता छोडकर प्रेम से नाचता रहा। तू धन्य है, तू ही मेरा सच्चा भक्त है। तुझमे और मुझमे भेद क्या है, कुछ भी नही। मेरी इस वेद वाणी को मान लो। मेरी तुम्हारी प्रीति तो प्रथम से बँधी हुई है, बहुत पुरानी है। तेरा और मेरा एक ही रूप है[2]।" यहाँ पुरुषत्व को भुलाना अभिमान के त्याग का प्रतीक है। प्रथम से बँधी हुई और पुरानी प्रीति से तात्पर्य है

---

१ "प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ।
जलथल जहाँ रहौ तुम बिनु नहिं वेदउपनिषद गायौ।
द्वै-तन जीव-एक हम दोउ, सुख-कारन उपजायौ।
ब्रह्म रूप द्वितिया नहिं कोउ, तब मन तिया जनायौ।
सूर स्याम-मुख देखि अलप हसि, आनन्द पुंज बढायौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ८४१, पद २३०५।

२ "धन्य त, धन्य तू, राम कहि श्रीहरि,
नरसिंया। भक्त तू माहरू साचो।
मेहल्य पुरुषपणू थै सखी रूप रह्यू,
लोक आचार तिज्य प्रेमि नाच्यो।
तुहमा-मुहमा भेज किस्यु, नागर!

भक्त और भगवान के, ब्रह्म और जीव के शाश्वत प्रेम-सबध से, जिसके कारण वे दो होते हुए भी एक हैं। सूर के कृष्ण भी राधा को ऐसा ही अनुभव कराते हुए कहते हैं कि 'राधा, मेरी बात सुनो। इस पुरातन-शाश्वत प्रेम को छिपाकर रखो। मैं और तुम दो नही, एक ही हैं'।" एक स्थान पर सूर कहते हैं कि जैसे छाया शरीर के साथ रहती है, वैसे ही श्रीकृष्ण राधा के साथ रहते है[2]। सूर ने प्रतीक के रूप में ब्रह्म और जीव के तादात्म्य सम्बन्ध का इस प्रकार का वर्णन अनेक बार किया है। सूर कहीं-कहीं तो स्पष्ट रूप से शुद्धाद्वैत का वर्णन करते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि सच्चे और परमभक्त का यही लक्षण है कि वह द्वैरंग का (द्वैत के भ्रम का) त्याग कर दे।[3]

नरसिंह मेहता ने अपने भक्ति और ज्ञान के पदो मे ब्रह्म और जीव के एकत्व सम्बन्धी बडे ही तात्विक एव दार्शनिक विचार प्रस्तुत किए है। एक पद मे वे कहते है कि "(अज्ञान की) नींद से जागने पर मैंने देखा तो मुझे ससार दीखा ही नही, केवल (अज्ञान की) निद्रा मे ही विविध प्रकार के भोग आदि का आभास मुझे होता रहा। वास्तविकता यह है कि चित चैतन्य-विलास के तद्रूप है और ब्रह्म स्वय ब्रह्म के सम्मुख खेल करता रहता है। परब्रह्म से ही पच महाभूतो की सृष्टि हुई है और अपरिमित अणुओ मे रहते हुए भी, अणु-अणु मे उसके व्याप्त रहने के कारण, अणु-अणु उस परम तत्व से आवेष्टित होता रहता है और इसीलिए आपस मे सबद्ध रहता है। फूल और फल वृक्ष मे भिन्न नहीं होते और शाखा तने से अलग नही होती। स्वर्ण और

मान्य प माहरी वेदवाणी,
प्रथमथी मीन्य छे आपणी बाधली,
....
तारुरू माहरू एक रूप।"
—के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ २७ २८, पद २४।

१ "सुनि वृषभानुसुता मेरी बानी प्रीति पुरातन राखहु गोई।
सूरस्याम नागरिहि सुनावत, मैं तुम एक नाहिं है दोइ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ८४३, पद २३०६।

२ "...ज्यौं तनु मे बस छाया।"
—वही, पृष्ठ १७८, पद २७५६।

३ "सूर जो द्वै रग त्यागै, यहै भक्त सुभाइ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ २४, पद ७०।

स्वर्ण से बने हुए कुण्डल में कोई भेद नहीं होता[1]।

नरसिंह का यह प्रसिद्ध प्रभाती तत्त्वज्ञान के, ब्रह्म और जीव के तादात्म्य-संबंध के, भिन्न प्रतीत होने पर भी इनके अभिन्न और अविभाज्य होने के कवि के ज्ञान का पूर्ण परिचायक है। जीवन और प्रकृति ईश्वर से भिन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु यह तो ब्रह्म का अपने ही साथ खेलना है[2]। इस कथन में कवि का गूढ़तम दार्शनिक दृष्टिकोण अत्यन्त सरल एवं प्रभावोत्पादक रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। भिन्न प्रतीत होते हुए भी फूल-फल का वृक्ष से तथा शाखाओं का तने से जैसा अभिन्न संबंध होता है वैसा ही जीव और ब्रह्म का पृथक प्रतीत होते हुए भी तादात्म्य संबंध होता है। इस प्रकार का गूढ़ संकेत कितने सरल एवं हृदयस्पर्शी रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्वर्ण और स्वर्ण के आभूषण में बाह्य रूप से अन्तर प्रतीत होते हुए भी वास्तविक अन्तर बिल्कुल नहीं होता ऐसा हृदय और बुद्धि दोनों को स्पर्श करने वाला उदाहरण देकर आत्मा और परमात्मा की बाहर से भिन्न प्रतीत होने वाली सत्ता की एकता का ज्ञान कराने का इनका ढंग अपना निजी और विशिष्ट है। एक और स्थान पर वे ब्रह्म और जीव का संबंध बिम्ब-प्रतिबिंब रूप वर्णित करते हैं[3]।

सूर ने भी ब्रह्मतत्व को मूलतत्व के रूप में वर्णित करके उसे विविध रूपों में प्रकट होने वाला बतलाया है[4]। वे जीव और ब्रह्म का संबंध जलबिंदु और समुद्र

---

१ "जागीने जोउ तो जगत दीसे नहीं, उंघमा अटपटा भोग भासे,
चित्त चैतन्य विलास तद्रूप छे, ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे।
पंच महाभूत परिब्रह्म विषे उपन्या, अणु माहि रह्यां रे वलगी,
फूल ने फल ते तो वृक्षनां जाणवा, थडथकी डाल ते नहि रे अलगी।
वेद तो एम वेद, श्रुति स्मृति शाख दे, कनक कुंडल विषे भेद नोये,
घाट घडयो पछी, नाम रूप जूजवा अंत तो हेमनूं हेम होये।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८६, पद ४२।

२ "लटका करे' का शाब्दिक अर्थ तो होगा 'नखरे करना' किन्तु इस से अच्छा अर्थ 'खेलना' ही होगा।

३ "मकर प्रतिबिंब मा बालक जेम रमे,
तेम रमे गोविंद साथ गोपी।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हार समेनां पद अने हारमाला', पृष्ठ १६६, पद ६।

४ "पहले हौं ही हो तब एक।
....
सो मैं एक अनेक भांति करि, सोभित नाना भेष।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२७, पद ३८१।

के सदृश वर्णित करते हैं[1]। राधा और कृष्ण के दो शरीर होते हुए भी दोनो मे भेद नही किया जा सकता क्योंकि दोनो के प्राण एक हैं[2]। ऐसा कहकर वे ब्रह्म और जीव की बाह्य रूप से भिन्न प्रतीत होने वाली सत्ता की एकता का ही प्रतिपादन करते है।

यद्यपि जीव और ब्रह्म मे जो स्वरूपगत अभेदत्व है उसे सूरदास और नरसिंह मेहता दोनो ने प्रस्तुत एव प्रतिपादित किया है इसमे कोई सन्देह नही, तथापि नरसिंह मे तत्वज्ञान की गहराई तथा दार्शनिक गूढता विशेष रूप मे पाई जाती है जो सरल भाषा मे अभिव्यक्त होने के कारण विशेष प्रभावोत्पादक भी अनुभव होती है।

माया

भक्तो ने माया को इस मिथ्या ससार का मूल माना है। माया ही हमे भ्रम मे डालती है, अभिमान कराती है, अधकार मे रखती है, मोह-पाश मे आबद्ध रखती है, मिथ्या ममत्व का आभास कराती है, स्वार्थो के गर्त मे ढकेलती है, श्रेय पथ से मार्गभ्रष्ट करके प्रेय-पथ पर भटकाती है, मन मे पापो की उत्पत्ति कराती है, ईश्वरोन्मुखता के बदले हरि-विमुखता की ओर अग्रसर कराती है और सक्षेप मे हमे सासारिकता के पक मे फँसाये रखती है। यह सृष्टि स्वय माया है, जो उस मायावी के खेल के अतिरिक्त और कुछ नही ऐसा भी भक्तो का विश्वास होता है।

सूरदास और नरसिंह मेहता दोनो ने माया-निर्मित मायामय सृष्टि की नाना दृश्यावली का तथा मायाप्रधान प्रपच-प्रसार अपने मोहक, मादक एव भ्रमोत्पादक रूप द्वारा जीवात्मा को सासारिकता के पाश मे कैसे बद्ध रखता है इसका अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। सूरदास माया को एक ऐसी गाँठ मानते हैं जो झटका देने पर भी, प्रयत्न करने पर भी टूटती नही[3]। वे इसे एक ऐसी जहरीली नागिन समझते हैं जिसका विष गुरु गारुडी के कृष्णमत्र पढने पर और ज्ञान की औषधि

---

१ "सूर सिंधु की बूद भई मिली मति-गति-दृष्टि हमारी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६२, पद ७०६।

२ "... .. भेद करै सो को है।
सूर स्याम नागर, यह नागरि एक प्रान तन दो है।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६१०, पद २५२१।

३ "कठिन जो गाठि परी माया की, तोरी न जात झटकै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६७, पद २९२।

खाने पर ही उतरता है[1]। नरसिंह ने भी माया को साँपिन के रूप में वर्णित करके गारुडी गोविन्द को ही बतलाया है[2]। सारे संसार पर अपना व्यापक प्रभाव डालने वाली माया को वे महाप्रबल महाशक्तिशालिनी कहते हैं[3]। भगवान से वे कहते हैं कि आपकी सबल माया ही मुझे भ्रम में डालती है[4] और मेरे मन को अपने वश रखती है[5]।

माया का बंधन छूटता नहीं, माया का विष उतरता नहीं, माया की शक्ति प्रबल होती है और वह मन को अपने वश रखती है—ये सब वर्णन माया के प्रभाव का, उसकी व्यापक सत्ता का यथार्थ चित्रण करते हैं। माया-नागिन, गुरु-गारुडी, कृष्णमंत्र तथा ज्ञान-औषधि का रूपक भी अद्भुत प्रभाव उत्पन्न करता है। वे माया को एक नर्तकी के रूप में भी वर्णित करते हैं जो हाथ में लकड़ी लेकर मनुष्य को अनेक प्रकार के नाच नाचती है। उसमें लोभ, कपट और पाप कराती है, उसकी बुद्धि को भ्रमित कराती है, उसके मन में आशाएँ उत्पन्न कराती है और मिथ्या निशा को जगाती है, निद्रा में स्वप्न के समान क्षणभंगुर और मिथ्या सुख-सम्पत्ति का आभास कराती है मन में मिथ्याभिमान उत्पन्न कराती है और जैसे कोई दूती परकीया को फाँस कर पर-पुरुष दिखलाती है वैसे ही यह महामोहिनी माया आत्मा को मोह कर उसे मार्गभ्रष्ट कराती है, कुमार्ग की ओर अग्रसर कराती है[6]। पातिव्रत धर्म को विचलित करने

---

१ "माया विषम भुजंगिनि कौ विष, उतर्यौ नाहिं न तोहि।
कृष्ण सुमन्त्र जियावन मूरी, जिन जिन मरन जिवायौ।
बारबार निकट स्रवननि कै ह्वै, गुरू-गारुडी सुनायौ।
. ... .
सूर मिटै अज्ञान-मूरछा, ज्ञान-सुभेषज खाए।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२५, पद ३७५।

२ "राख राख गोविंद गारूडी, मुने विषम सापेण्य आभडी"
— के० का० शास्त्री 'नरसिंह मेहता कृत हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ ८८ पद ६५।

३ "तुम्हरी माया महाप्रबल, जिहिं सब जग बस कीन्हौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १५, पद ४४।

४ "सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहिं भुलाई।"—'सूरसागर', पृष्ठ १६, पद ४५।

५ "माधौ जू, मन माया बस कीन्हौ।"

६ "माया नटी लकुटी कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै।
दर दर लोभ लागि लिए डोलति, नाना स्वाग बनावै।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष तरंगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै।

वाली दूती के समान हमारी ईश्वरोन्मुखता को विचलित कराने की शक्ति इसमें है, यह तुलना हृदय पर माया के प्रभाव का अत्यन्त कलुषित चित्र अंकित करती है और माया-नर्तकी के हाथ मे नाचना हमारी माया की वश्यता का चित्र खींचता है। माया, ही हमारी दुर्गति का कारण है। इसका पूर्ण ज्ञान भक्तकवि सूर ने हमे इस एक ही पद मे करा दिया है।

सूर कही मन का माया के हाथ में बिक जाने का उल्लेख करते हैं,[1] तो कहीं वे माया के मद मे मन के मत्त होने का वर्णन करते है[2]। माया को सूर ने तृष्णा और अविद्या भी कहा है। एक पद मे उन्होंने माया को भगवान की एक ऐसी गाय के रूप मे वर्णित किया है जो दिन-रात भटकती रहती है और पकड मे नही आती, जो इतनी भूखी रहती है कि वेदवृक्षों के पत्तो को खाकर भी अतृप्त रह जाती है, षट्दर्शन रूपी षट्रस भोजन की तो उसे गध भी नही सुहाती, किन्तु ऐसे अहितकर अभक्ष्य पदार्थों का यह भक्षण करती है, जिनका वर्णन भी नही हो सकता। जल, थल और आकाश आदि सभी स्थानो मे बिना डरे धृष्ट होकर निष्ठुर रूप धारण करके यह भटकती रहती है, किन्तु इसे सन्तोष नही होता। इसके तमोगुणरूपी नीले खुर है, रजोगुणरूपी आरक्त नेत्र हैं, सतोगुणरूपी श्वेत सीग हैं। नारद शुकदेव आदि बडे-बडे मुनि भी जिस चौदहो भुवनो मे उद्दण्ड होकर भटकने वाली इस गाय का उपाय न कर सके उसे मैं कैसे वश मे रख कर चरा सकता हूँ[3]?

सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाई बौरावै।
महामोहिनी मोहि आतमा, अपमारग हिं लगावै।
ज्यौं दूती पर-वधू भोरि कै, लै पर पुरुष दिखावै।" 'सूरसागर', पृष्ठ १५, पद ४२।

१ "नंद-नदन-पद-कमल छाडि कै माया हाथ बिकानो।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २१, पद ६३।

२ "माया मद में भयौ मत्त"... — 'सूरसागर', पृष्ठ २१, पद ६३।

३ "माधौ, नेकुं हटकौ गाइ।
भ्रमत निसि वासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ।
छुधित अति न अघाति कबहूं, निगम-द्रुम दलि खाइ।
अष्ट-दस-घट नीर अंचवति, तृषा तउ न बुझाइ।
छहौं रस जौ धरौ आगैं, तउ न गंध सुहाइ।
और अहित अभच्छ भच्छति, कला बरनि न जाइ।
व्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ।
नील खुर, अरु अरुन लोचन, सेत सींग सुहाइ।
भुवन चौदह खुरनि खूंदति, सु धौं कहा समाइ।
ढीठ निठुर न डरति काहूं, त्रिगुन ह्वै समुहाइ।......
नारदादि सुकादि मुनिजन थके करत उपाइ।
ताहि कहु कैसैं कृपानिधि, सकत सूर चराइ"— 'सूरसागर', पृष्ठ १९, पद ५६।

माया का यह अद्भुत रूपक जहाँ एक ओर कवि की उच्च एवं सूक्ष्म कल्पना-शक्ति का परिचायक है, वहाँ माया के स्वरूप और उसकी व्यापकता का भी भयानक चित्र हमारे सम्मुख खड़ा करता है। यह माया इससे निर्मित मोह-ममता का हमारा संसार पूर्ण रूप से असत् होते हुए भी सत्य का भ्रम कराता रहता है और सत्-स्वरूप ब्रह्म को असत्य अनुभव कराता है। सूर ने यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि माया मिथ्या होते हुए भी सत्य प्रतीत होती है और इस माया के कारण ही सत्य को भी हम भ्रमवश मिथ्या समझते हैं[१]। माया-संबंधी सूरदास का दार्शनिक दृष्टिकोण विस्तृत एवं विशद रूप में उनके पदों में प्रकट हुआ है इसमें कोई सन्देह नहीं।

नरसिंह मेहता ने भी माया के स्वरूप का और उसके व्यापक प्रभाव का वर्णन अवश्य किया है, किन्तु वह इतने विस्तृत, विशद एवं रूपकों के द्वारा प्रभावोत्पादक रूप में नहीं हुआ है, प्रत्युत अत्यंत संक्षेप में हुआ है। माया को उन्होंने भयानक कहा है, स्वप्न के समान बतलाया है और एक फाँसनेवाली मोह उत्पन्न करानेवाली जाल के रूप में वर्णित किया है[२]। कहीं वे माया के हाथों मनुष्य के लुट जाने का वर्णन करते हैं,[३] तो कहीं सच्चे वैष्णव को मोह माया में व्याप्त न होने का उपदेश देते हैं[४] वे मोह-पाश में हमें बाँधकर रखने वाली माया को पटक देने का भी उपदेश देते हैं[५]। वे कहते हैं कि मनुष्य जन्म लेते ही माया के पाश में बँध जाता है[६]।

---

१ "सत मिथ्या, मिथ्या सत लागत, मम माया सो जानि।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२७, पद ३८१।

२ " ... कारमा माया जाइ का रे हरखो।
स्वप्नी वार्तामा शु रे राचा रह्यो, में मइ्टे करी हरी नरखो।

.

मायानी जालमा मोह पामी रह्यो।"
— इ० सू० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४८३, पद ७७।

३ "लूटाणो रे लोभिया, मायानों वलुध्यो।"
— इ० सू० देसाई

४ "मोह-माया व्यापे नहिं तेने ।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत
हार समेना पद अने हारमाला', पृष्ठ १६३, पद १५८।

५ "पटक माया-परी, अटक चरणे हरी।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४८१, पद ३१।

६ "अवतरी पाश वधायो माया तणे।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४८७, पद ४४।

यहाँ हम स्पष्ट देखते हैं कि नरसिंह ने सूर की अपेक्षा माया संबंधी वर्णन अत्यत सक्षेप मे कर दिया है। माया को वे परी कहते हैं इसलिए कदाचित् भक्त नरसिंह का यह विश्वास हो कि माया के सबध मे अधिक सोचने से भी माया-परी के मोह-पाश मे हम बँध जायें। जो भी हो, माया का वर्णन नरसिंह ने चलते हुए ढग से अनायास ही किया है निश्चित योजना के साथ विचारपूर्वक, विस्तारपूर्वक एव विशदरूप मे प्रभावोत्पादक रूपकों की सहायता से बिल्कुल नही किया है।

कर्मवाद और प्रारब्धवाद

भारतीय दर्शन कर्मवाद और भाग्यवाद को सदैव प्राधान्य देता आया है। हमारी इस जन्म की प्रवृत्तियाँ पूर्वजन्मो के कर्मानुसार बनती है ऐसा हमें विश्वास कराया जाता है। इस जन्म मे चाहते हुए भी हम सत्कर्म नही कर सकते, यदि पूर्व-जन्म मे हमारे कर्म अच्छे नही रहे। यही विश्वास भाग्यवाद को और भगवान की इच्छा के अनुसार ही सब कुछ होता है, हो सकता है, इस सिद्धान्त को जन्म देता है। भगवान की कृपा से हम सत्कर्म करने की प्रेरणा भी प्राप्त कर सकते हैं, अपना भाग्योदय भी कर सकते है ऐसा दृढ विश्वास भक्तो के हृदय मे पाया जाता है। सूरदास और नरसिंह मेहता मे यह विश्वास अपने दृढतम रूप मे पाया जाता है। वे सब कुछ भगवान की इच्छा के अधीन समझते हैं। भाग्यवाद को समझाकर सन्तुष्ट रहने का तथा हरिभक्ति करके सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होने का उपदेश देते है। भगवान की शरण मे जाने पर पूर्वजन्म के कर्मो का फल भी परिवर्तित हो सकता है, भाग्य भी परिवर्तित हो सकता है तथा निश्चित रूप से हमारा उद्धार हो सकता है ऐसा भक्तो का दृढ विश्वास सूरदास और नरसिंह मेहता मे पूर्ण और प्रबल रूप मे पाया जाता है।

सूरदास एक स्थान पर कहते है कि भगवान का लिखा हुआ कोई मिटा नही सकता[1]। एक पद मे वे कहते हैं कि प्रभु हम जैसे रखें वैसे ही रहना, व्यर्थ सोच करके क्यों मरें, क्यो परेशान हों[2]? कही वे कहते है कि मनुष्य के करने से कुछ नही होता, कर्ता हर्ता करतार स्वय है[3]। भगवान जैसा कहते है, जैसा चाहते है वैसा ही होता है[4]। यह सूर का विश्वास है। उनका मत है कि अपने पुरुषार्थ से

१ "जो कछु लिखि राखि नदनदन, मेटि सकै नहिं कोइ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ८४, पद २६२।

२ "सूरदास प्रभु रची सुन्हैहै, को करि सोच मरे।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ८५, पद २६४।

३ "नर के किए कछु नहिं होइ। करता हरता आपुहिं सोइ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ८४ पद २६१।

४ "श्रीगुपाल तुम कहौ सो होइ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १७११, पद ४६१७।

कुछ होता है ऐसा मानना मिथ्या है[1]। कोटि प्रयत्न करने पर भी कृष्ण भक्ति के बिना मुक्ति प्राप्त नही हो सकती। यह प्रारब्धवाद और भगवान की इच्छा से ही सब कुछ होने का प्रगाढ विश्वास मनुष्य के शोक और असन्तोष का मिटाता है तथा उसे आश्वासन और सान्त्वना देता है। भगवान का दिया हुआ दुख भी सुखपूर्वक सहन कर लेने की शक्ति इस प्रकार के विचारो से मिलती है। इसमे एक ओर सुख-दुख, हर्ष शोक, मान-अपमान आदि के द्वद्व से ऊपर उठने का बल मिलता है तो दूसरी ओर 'अहं' का, सब कुछ मुझसे होता है, इस मिथ्याभिमान का भी नाश होता है।

नरसिंह ने सूर की अपेक्षा कुछ विस्तार से, अपने भक्ति और ज्ञान के पदो मे इस प्रारब्धवाद और भगवान की इच्छा से ही सब कुछ होने के विश्वास को, समझाया है। इस प्रकार के इनके प्रभाती बडे प्रसिद्ध हुए हैं क्योकि निर्बल मनुष्य को इनसे आश्वासन मिलता है, सान्त्वना प्राप्त होती है, कुछ बल भी मिलता है। आज भी ये प्रभाती प्रात काल मे सौराष्ट्र और गुजरात के घर-घर म गाए जाते हैं। एक प्रभाती मे वे कहते हैं कि पूर्वजन्म के कुकर्मों का कुप्रभाव यदि हरिभक्ति से नही टलेगा तो उससे और क्या काम हो सकता है[2] ? अर्थात् हरिभक्ति से निश्चित ही पूर्वजन्म के कुकर्मों का कुप्रभाव नष्ट हो जाता है। इस उक्ति से पूर्वजन्म के कुकर्मो की भयानक कल्पनाएँ करता हुआ खिन्न और निराश रहने वाला मन कितना बल प्राप्त करता है ? इसी के साथ वे इस जन्म मे सत्कर्म करने का, पुण्य कर्म करने का उपदेश बराबर देते है। इस दार्शनिक विचारधारा की पृष्ठभूमि कितनी मनोवैज्ञानिक है इस पर विचार करते है तो चकित रह जाते हैं। अनायास अपराध कर बैठने वाले बालक से हम कहते हैं कि तुमसे गलती हो गई तो कोई बात नहीं। किन्तु अब से ऐसा न करना। ससार म से अपराधो की सख्या कम करने के लिए बडे बडे अपराधियों के साथ भी ऐसा ही सहानुभूतिपूर्ण एव उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ऐसा मनोवैज्ञानिको का आग्रह है। नरसिंह पूर्वजन्म के अपराधियो को एक ओर सान्त्वना देते हैं तो दूसरी ओर इस जन्म मे सुकृत्य करने के लिए प्रेरणा एव प्रोत्साहन प्रदान करते हैं। वे कहते हैं कि पुण्य से ही ऋद्धि है, पुण्य से ही सिद्धि है, अतएव तुम पुण्य करो जिससे तुम्हें परमपद की प्राप्ति हो सकेगी[3]। एक प्रभाती मे वे कहते हैं कि जगद्गुरु

---

१ 'जो अपनो पुरुषारथ मानत अति झूठौ है सोइ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ८४, पद २६२।

२ "पूर्वना कर्म जो हरि भजे नव टले, तो कहो कोण ते काम करशे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ४८८, पद ४२।

३ "पुण्यथी रिद्धि छे, पुण्य थी सिद्धि छे .
भणे नरसैंयो तु पुण्य, कर प्राणिया, पुण्यथी पामशो पदवी मोटी।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ०८२, पद ३४।

जगदीश की इच्छा से हमारे जीवन में जो भी होता है उसका शोक कभी नहीं करना। हमारी इच्छा से, हमारे चिंता करने से कुछ नहीं होता, केवल उद्वेग की प्राप्ति होती है। 'मैं करता हूँ', यह भी एक बहुत बड़ा अज्ञान तथा भ्रम है, जैसे श्वान शकट के नीचे चलने पर भ्रमवश समझने लगता है कि सारा बोझ उसी पर है।... जिसके भाग्य में जिस समय जितना लिखा रहता है, उसको उस समय उतना ही प्राप्त होता है[1]।

एक पद में वे उपदेश देते हैं कि सुख दुख का विचार करके उद्विग्न नहीं रहना चाहिए क्योंकि ये शरीर के सदा नित्यरूप में स्वयं भगवान् के द्वारा निर्मित हुए हैं, हमारे साथ जड़े गए हैं। अतएव टालने पर भी नहीं टल सकते। भाग्य में लिखे हुए दुख से राजा नल को, धार्मिक पांडवों को, सती सीता को तथा सत्यवादी हरिश्चन्द्र को भी मुक्ति नहीं मिल सकी तो हमें दुखों के आ पड़ने पर दुखी न हो कर उन्हें सहन ही कर लेना चाहिए[2]। प्रसिद्ध उदाहरणों के द्वारा दुखों को अटल सिद्ध करके उन्हें सहन करने का उपदेश देने का इनका ढंग अत्यंत प्रभावशाली है।

---

१ "जे गमे जगतगुरुदेव जगदीशने, ते तणो खरखरो फोक करवो,
आपणो चितव्यो अर्थ कांइ नव सरे, उगरे एक उद्वेग धरवो।
हुं करूं, हुं करूं, ए ज अज्ञानता, शकटनो भार ज्येम श्वान ताणे,
जेहना भाग्यमां जे समे जे लख्युं, तेहने ते समे ते ज पोहोंचे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४८१, पद २६।

२ "सुखदुख मनमां न आणीए, घट साथे रे घडीयां,
टाळ्यां ते कोइना नव टळे, रघुनाथनां जडियां।
नल राजा सरखो नर नहीं, जेनी दमयंती राणी,
अर्धे वस्त्रे वनमां भम्यां, न मळ्यां अन्न ने पाणी,
पांच पांडव सरखा बांधवा, जेने द्रौपदी राणी,
बार वरस वन भोगव्यां, नयणे निद्रा न आणी।
सीता सरखी सती नहीं, जेना रामजी स्वामी,
रावण तेने हरी गयो, सती महादुख पामी
हरिश्चन्द्र सतवादियो, तारालोचनि राणी,
तेने विपत्ति बहु पडी, भर्यां नीच घेर पाणी"।
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४६४ ६५, पद ६५।

शास्त्रों और धार्मिक बाह्याडंबर की निन्दा

शास्त्र-ग्रन्थों के ज्ञान के अभिमान निरर्थक है और धार्मिक बाह्याचार का आडंबर मिथ्या है इस बात को भक्तों ने सदा ऊँचे स्वर में गाया है। भक्ति और प्रेम के आगे शास्त्रों का ज्ञान अनावश्यक और निरर्थक सिद्ध होता है। धार्मिक बाह्याचार और साम्प्रदायिक आडंबर हमें दांभिक बनाते हैं और ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में सहायक न होकर बाधक साबित होते हैं। सच्ची भक्ति शास्त्र-ज्ञान के गर्व से तथा धार्मिक बाह्याडंबर के दंभ से मुक्त होती है। सूरदास और नरसिंह मेहता की रचनाओं में शास्त्र-ज्ञान के गर्व को मिथ्या सिद्ध करने वाले अनेक पद मिलते हैं। धार्मिक बाह्याडंबर की निन्दा करने वाले पद सूर में अपेक्षाकृत अत्यल्प परिमाण में मिलते हैं।

सूरदास के अनुसार राम के आनन्द के सामने वेद भी नहीं ठहरता[१]। ईश्वर की कृपा वेद के लिए भी अगम्य है[२]। भक्त के लिए भगवान वेदाज्ञा को भी बाजू पर रख देते हैं[३]। रास-रस के अपूर्व आनन्द को समझना वेद की पहुँच से भी बाहर है[४]। एक स्थान पर वे कहते हैं कि शास्त्रों को पढ़ने से क्या होना है? केवल राम नाम लेने से ही धर्म की साधना पूर्ण हो जाती है[५]।

यहाँ हम देखते हैं कि भक्ति के आगे वेद और शास्त्र कुछ भी नहीं हैं। भक्ति की सच्ची और तीव्र अनुभूति के सम्मुख वेद और शास्त्र का ज्ञान निरर्थक सिद्ध होता है। एक स्थान पर सूर ने योग, यज्ञ, व्रत, तीर्थ-स्नान, भस्म रमाना, जटा रखना, अट्ठारह पुराणों को पढ़ना, प्राणायाम करना इत्यादि धार्मिक बाह्याडंबर की निन्दा

---

१ "जो रस रासरंग हरि कीन्हे, वेद नहीं ठहरान्यौं।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६६०, पद १७०१।

२ "निगम तैं अगम हरि कृपा न्यारी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ८४२, पद २६३८।

३ "सत सकल्प वेद की आज्ञा, जन के काज प्रभु दूरि धर्यौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ८६, पद २६८।

४ "रासरसरीति नहिं बरनि आवै।
जो कहौं कौन मानै, निगम अगम
हरि कृपा बिनु नहिं या रसहि पावै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६०८, पद १६२४।

५ "जब तैं रसना राम कह्यौ।
मानौ धर्म साधि सब बैठ्यौ, पढिबे मैं धौं कहा रह्यौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ११७, पद ३५१।

की हैं[1]। धार्मिक बाह्याडम्बर तो दंभ मात्र है, आंतरिक शुद्धता, आत्मज्ञान, भक्ति की एका-ग्रता ये ही सब ईश्वर प्राप्ति के मार्ग की ओर हमें अग्रसर कराने वाले परमतत्व हैं।

नरसिंह ने भी अनेक पदों में इस प्रकार के विचार प्रकट किए हैं। एक पद में वे कहते हैं कि जब तक आत्म तत्व को तुमने नहीं पहचाना तब तक सब प्रकार की बाह्य साधनाएँ व्यर्थ हैं। तीर्थ स्नान, पूजा, सेवा, दान, जटा धारण करना या केश लुंचित करना, तप करना, तीर्थयात्रा करना माला फेरना, तिलक लगाना, तुलसी माला धारण करना, गंगाजल का पान करना, वेदों का पढ़ना, षटदर्शन का अध्ययन करना इत्यादि सब कुछ व्यर्थ और निरर्थक है[2]। धार्मिक बाह्याचार के आडंबर और दंभ का और भी अनेक पदों में नरसिंह ने घोर खण्डन किया है। एक पद में वे योगमार्ग का अव-लम्बन करने वालों को कहते हैं कि 'अपने ॐकार का प्रचार बनाओ। प्रेम-भक्ति और वैराग्य को समझे बिना स्त्री के मरने पर या जीवन निर्वाह न होने पर सन्यासी हो कर भगवा धारण करने वालो, अपने बधिर कर्णों में मंत्र फुँकवाने से क्या होता है? किस सन्यासी को ईश्वर प्राप्ति हुई है यह तो बताओ[3]? एक और स्थान पर वे कबीर की शैली में कहते हैं कि "हम भोगी हैं, हाँ, हम भोगी हैं—सौ बार भोगी हैं। जिसने पाप किए हों वही जोगी हो, हम तो डंके की चोट पर भोगी हैं। यदि जटा

---

१ "तौ कहा जोग जग्य व्रत कीन्हें, बिनु बूझे तुस की कूटे।
कहा सनान कीयें तीरथ के, अंग भस्म जट-जूटे?
कहा पुरान जु पढ़े अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूँटे।
करनी और, कहै कछु औरै, मन दसहु दिसि टूटे।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२०, पद ३६२।

२ "ज्यां लगी आतमा तत्व चिन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व जूठी,

शुं थयुं स्नान सेवा ने पूजा थकी, शुं थयुं घेर रही दान दीधे।
शुं थयुं धरि जटा भस्मलेपन कीधे, शुं थयुं वाललोचन कीधे।
शुं थयुं तप ने तीर्थ कीधा थकी, शुं थयुं माल ग्रही नाम लीधे।
शुं थयुं वेद व्याकरण वाणी वदे
शुं थयुं षट्दर्शन सेवा थकी "
— इ० सू० देसाई,
'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८६, पद ४३।

३ "कोई आ सन्यासी शरण ज पाम्या, दंड भैरव जटाधारी रे,

कां स्त्री मरे के खावा टले त्यारे, मुंडमुंडावी भगुवा पेहेरो रे,
प्रेमभक्ति वैराग्य विना रे, फुंकावो कान बेहेरो।
तारा ॐकार नुं करने प्रयाण "
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ११, पद २४।

धारण करने से ही भगवान मिलते तो सभी वटवृक्ष वैकुंठ जाते। यदि दंड धारण करने से ही प्रभु-प्राप्ति होती तो सब दंडधारी अंधों की मुक्ति हो जाती। यदि भस्म का लेप करने से ईश्वर-प्राप्ति सभव होती तो गर्दभ तो सदा धूल मे लोटता है। यदि दण्डवत प्रणाम करने से ही विश्वनाथ के दर्शन सम्भव होते तो नाग को तो ब्रह्म-दर्शन अवश्य होता। यदि वन मे जाकर रहने से ही मुक्ति मिलती तो सब वन्य पशु-पक्षी मोक्ष प्राप्त कर लेते। वास्तव मे मिथ्या वाद-विवाद का त्याग करके प्रेम से प्रभु को प्राप्त किया जा सकता है[1]। एक स्थान पर वे कहते है कि "सब शास्त्रो को बाँध कर समुद्र मे फेंक दो[2]।" एक पद मे वे कहते हैं कि जिसे वेद के ज्ञान से भी प्राप्त नही किया जा सकता उसे हमने भजन से प्राप्त कर लिया[3]। वेद-ज्ञान से भी भगवद्‌भजन को अधिक महत्व प्रदान करने वाले नरसिंह की शास्त्रो को समुद्र मे फेंक देने की, ॐकार का प्रचार बनाने की तथा धार्मिक बाह्याडंबर की निरर्थकता सिद्ध करने वाली बातें अत्यन्त प्रभावोत्पादक शैली मे कही गई हैं। सूर ने इतने स्पष्ट एवं प्रभाव पूर्ण ढंग से इस प्रकार की बातें नही कही हैं इसे स्वीकार करना पडता है। इन दोनो कवियो का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जो कथितव्य है वह यही है कि शास्त्रज्ञान के मिथ्या चक्कर मे या धार्मिक बाह्याचार के दंभ मे न पड कर भक्ति का अवलंबन करना चाहिए, ईश्वर-प्रेम की अनुभूति को तीव्रतम स्वरूप प्रदान करना चाहिए, जिससे कि ईश्वर-प्राप्ति सरल और सुगम हो जाय।

ब्रह्म और सृष्टि

ब्रह्म और जीव के समान ब्रह्म और सृष्टि मे भी कोई भेद नही होता है। यह सृष्टि ईश्वर की माया के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। यह त्रिगुणात्मक सृष्टि ब्रह्म के प्रतिबिंब-स्वरूप है। इसीलिए ब्रह्म और सृष्टि मे द्वित्व नही होता,

---

१ "भोगी रे भोगी, अल्या अमे भोगी रे भोगी,
जेना पाप होय ते थाय जोगी, अल्या अम भोगी रे भोगी।
जटा धरे जगदीश मले तो, वड वैकुंठ चाले रे,
दंडधरे दीनानाथ मले तो, गर्धव द्वारमा लोटे रे,
दण्डवते दयाळ मले तो, ओरिंग नम्हने मेटे।
वनमा वसे ब्रजनाथ मले तो, वनचर मुक्ति पामे रे,... . ...
भणे नरसैंयो तमे प्रेमपेर न जाणो, मिथ्या वढवु मूको।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ १८, पद ४८।

२ "शास्त्र बांधी सागरमा नाख तु,....."
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ९३, पद ६१।

३ "लही भजन भीमडा, वेद सुधी नव लहे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह' पृष्ठ ५४०, पद ६।

अद्वैत होता है। 'मेरे-तेरे-पन' का भाव मन को इस सृष्टि के मोह-ममतापूर्ण पाश में बाँधकर रखता है। यह सृष्टि जड़स्वरूप है, मिथ्या है, नाशवत है और ब्रह्म ही चैतन्यरूप है, सत्य है, और शाश्वत है, इस प्रकार की दार्शनिक-दृष्टिकोण युक्त तात्त्विक विचारधारा सूर और नरसिंह दोनों में मिलती है। सूर सृष्टि को माया स्वरूप और त्रिगुणात्मक वर्णित करके उसे जड़ कहते हैं और सृष्टिकर्ता को चैतन्य कहते हैं[1]। वे ब्रह्म और सृष्टि को बिंब-प्रतिबिंब स्वरूप वर्णित करते हैं[2]। सूर कहते हैं कि सृष्टि की रचना करके ईश्वर आप में आप समा गए और अपने विराट रूप में तीनों लोक को समन्वित कर लिया[3]। इस विनश्वर मिथ्या सृष्टि को सत्य मानने वाला मार्ग-भ्रष्ट हो जाता है, प्रतिबिंब को ही सत्य मानने वाला, जिस ईश्वर का प्रतिबिंब होता है, उसी से विमुख हो जाता है।

नरसिंह मेहता ने भी मायावी सृष्टि का ईश्वर से अभिन्न ही वर्णित किया है। वे कहते हैं कि अखिल ब्रह्माण्ड में एक ही अनंत ईश्वर है, जिसके विविध रूप सृष्टि में दृष्टिगोचर होते हैं। ईश्वरतत्व ठोस स्वर्ण है और यह सृष्टि उसी स्वर्ण के आभूषणों के सदृश है। स्वर्ण और स्वर्ण के आभूषणों में कोई अन्तर नहीं होता। ईश्वर और सृष्टि का सम्बन्ध बीज और वृक्ष के समान है[4]। सर्वव्यापी ईश्वर विश्व से भिन्न ही है[5]। भगवान सर्व सृष्टि के मध्य में रह कर सर्व से अलग हैं[6]। वे

१ "माया को त्रिगुणात्म जानो। सत,-रज, तम, ताको गुण मानो।

....

आदि पुरुष चैतन्य कौ कहन। जो है तिहु गुनन ते रहित।

जड़स्वरूप सब माया जानो। ऐसो ज्ञान हृदय में आनो।"

— 'सूरसागर', पृष्ठ १३४, पद ३६४।

२ "जो हरि करै सो होइ कर्ता नाम हरी।

ज्यौं दर्पण प्रतिबिंब त्यौं सब सृष्टि करी।"— 'सूरसागर', पृष्ठ १२५, पद ३७१।

३ "पुनि सबको रचि अरु आपमें आप समाये।

तीन लोक निज देह में राखे करि विस्तार।"

४ "अखिल ब्रह्माण्डमा एक तु श्रीहरी, जूजवे रूपे अनंत भासे,

देहमा ..

वेद तो एम वेद, श्रुतिस्मृति शाख दे, कनक कुंडल विषे भेद नो होय।

घाट घडिया पछी नाम रूप जूजवा, अन्ते तो हेम नु हेम होय।

वृक्षमा बीज तु, बीजमा वृक्ष तु, जोउँ पटतरो एज पासे।"

— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८५, पद ४०।

५ "द नथी एकला विश्वथी वेगलो, सर्वव्यापक छे शक्ति स्तुत्य जेन।",

— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८६, पद ४६।

६ "अलगो छे सर्व थी, सर्व मध्ये सदा।"

— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ १५, पद ३८।

भगवान से कहते हैं कि "आदि, मध्य और अंत में तू ही तू है, इस सृष्टि में भी तू ही है[१]। यहाँ हम देखते हैं कि सूर के समान नरसिंह भी ब्रह्म और सृष्टि में द्वित्व बिल्कुल अनुभव नहीं करते, प्रत्युत दोनों के अद्वैत सम्बन्ध को ही प्रभावोत्पादक उदाहरणों के माध्यम से प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं। नरसिंह ने भी ब्रह्म और सृष्टि के लिए बिंब प्रतिबिंब का उदाहरण दिया है। वे भी 'मेरे-तेर पन' के भाव को नष्ट करने के लिए कहते हैं क्योंकि तब तक जीव, सृष्टि और ब्रह्म के अभेद को समझा ही नहीं जा सकता और ईश्वर-प्राप्ति संभव ही नहीं होती[२]। यह सृष्टि ब्रह्म के खिलवाड के अतिरिक्त और कुछ नहीं है[३]। उसी की इच्छा से जीवात्मा की सृष्टि हुई, सृष्टि का निर्माण हुआ और चौदह लोक बने[४]। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर और नरसिंह के ब्रह्म और सृष्टि सम्बन्धी विचारों में पर्याप्त साम्य पाया जाता है।

जीवन की नश्वरता

भक्तों और संतों ने सदैव जीवन की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता की ओर संकेत किए हैं। इस प्रकार के संकेतों का उद्देश्य यही होता है कि मनुष्य जीवन के मोह से मुक्त रह सके, सांसारिक सुखों को क्षणिक अनुभव करे तथा जीवन के प्रति एक उदासीनता का दृष्टिकोण अपना सके। मनुष्य को अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ गँवाने के बदले उसका सदुपयोग करके ईश्वरोन्मुखता की ओर अग्रसर कराने की प्रवृत्ति भक्तों में प्रबल रूप में होना स्वाभाविक है। सूर और नरसिंह ने अपने पदों में इस प्रकार के जीवन को नाशवंत बतलाने वाले संकेत अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से किए हैं।

सूरदास एक पद में कहते हैं कि कालरूपी सर्प के मुख से कौन बच सकता है?

१　"(देवा) माद्य तु, मध्य तु, अत्य तु त्रिकमा, एक तु एक तु एक पोते।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८८, पद ४६।

२　"जीव ने सृष्टि ने ब्रह्मना भेद मा, सत्य वस्तु नहि एच जडशे,
हु अने तुपणु तजीश नरसैंया तो प्रभु तने हर्दथी पास लेशे।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८८, पद ४६।

३　"ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासें।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८६, पद ४२।

४　"नाथ ने सृष्टि तो आप इच्छाए थया, रची परपंच चौद लोक कीधा।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४८६, पद ४२।

शक्तिशाली काल के आगे तो सारी सृष्टि काँपती है[1]। काल की अनेक स्थानों पर वे सर्प के साथ तुलना करके काल की भयानकता की ओर संकेत करते हैं। जिस प्रकार सर्प सब को खा जाता है और भयानक होता है, उसी प्रकार काल के जबड़ा में सब समा जाते हैं, सभी उससे भयभीत रहते हैं। काल की तुलना वे भयानक अग्नि-ज्वाला के साथ भी करते हैं जो प्रज्वलित ही रहती है और बढ़ती भी रहती है। वे एक स्थान पर मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं कि "अब भी चेतो, चारों दिशाओं में काल रूपी अग्नि की ज्वालाएँ फैल रही हैं[2]।" वे यह भी कहते हैं कि "कालरूपी आग सारे जग का जला रही है, तो तुम कैसे सदा जीवित रहने का विचार करते हो[3]?" मनुष्य सोचता है कि वह आगे, बाद में रामनाम लेगा, किन्तु बीच में कुछ का कुछ हो जाता है और कालदेवता से काम पड़ता है, जिससे छुटकारा नहीं मिल सकता[4]। मनुष्य को प्रभुमय जीवन बिताना चाहिए, ताकि यम का त्रास, मृत्यु का दुःख अनुभव न हो, शांति के साथ प्राण निकल सकें[5]। इस जन्म में तो जीवन का अन्त भगवद्भक्ति के फलस्वरूप शान्ति के साथ होता है और मृत्यु दुःखमय नहीं होती। इतना ही नहीं, प्रत्युत यही भक्ति जन्म-मृत्यु के चक्कर से हमें मुक्ति दिला कर भविष्य में भी सदा के लिए मृत्यु के भय से हमें मुक्ति दिलाती है। वैसे काल की फाँसी से कोई नहीं बच सकता और मरने पर घर के बाहर निकाल कर इस शरीर को जलाया जाता है तथा मस्तक पर लकड़ी ठोंक कर कपाल क्रिया की जाती है[6]। पूर्व जन्म के सुकृत्यों के फलस्वरूप यह जो सुन्दर और अमूल्य मानवशरीर मिला है, इससे इस जन्म में भी सुकृत्य करने चाहिए नहीं तो मृत्यु दुःखमय ही रहेगी। वे उपदेश देते हुए

---

१ 'काल बली तैं सब जग काप्यौ।'
— 'सूरसागर', पृष्ठ १८, पद ५२।

२ "अजहूँ चेति मूढ़, चहुँ दिसि तैं उपजी काल अगिनि झर झरहरि।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १०३, पद ३१२।

३ "काल अगनि सबहि जग जारत, तुम कैसे कै जिअन विचारत?"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ९१, पद २८४।

४ "कहत है, आगैं जपिहैं राम।
बीचहि भई और की और। परयौ काल सौं काम।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १६, पद ४७।

५ रे मन गोविंद के है रहियै।
इह संसार अपार विरत है, जम की त्रास न सहियै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २१, पद ६२।

६ "लै देही ते घर बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरा।
सूरदास तैं कछु सरी नहिं, परी काल फसरी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २४, पद ७१।

कहते हैं कि अब भी चेतो, हरि-भजन करो क्योंकि काल-चक्र तो सिर पर भारी हो कर फिरता रहता है[1]। मृत्यु होने पर सदा सग रहने वाली सुन्दर पत्नी भी मृत देह को प्रेत-प्रेत कह कर भागेगी[2]। ऐसी पत्नी का मोह क्यों हो? सदा साथ निभाने वाली हरि की ही भक्ति करो। जिस दिन आत्मा उड जायगी, उस दिन तन रुपी तरुवर के सभी पत्ते झड जायेंगे। तब आज जिनसे हम स्नेह करते हैं वे ही हमसे घृणा करेंगे और जल्दी हमे बाहर निकालेंगे। जिस पुत्र से आज इतना प्रेम है, जिसके लिए मनौतियाँ करते रहे वही बाँस से खोपडी फोड कर हमारी कपाल-क्रिया करेगा[3]। इसीलिए किसी से मोह-ममता न रख कर भगवद्भजन से इस जन्म को सार्थक करना चाहिए।

मृत्यु की अटल सत्यता और जीवन की अमोघ नश्वरता के चित्र खींच कर भक्तकवियो ने मनुष्य को सत्कर्म की ओर प्रवृत्त करना चाहा है। सूर मे हम यही प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा मे पाते हैं। नरसिंह मेहता मे भी इस प्रकार की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। वे भी जीवन को क्षणभगुर तथा नाशवत बतलाकर मृत्यु की भयानकता के भयावह चित्र खीचते हैं। वे कहते हैं कि जीवन का क्या विश्वास है? श्वास का भी विश्वास नही किया जा सकता, एक क्षण का भी भरोसा नही किया जा सकता। अधूरी आशाओं के साथ ही मरना पडता है[4]। इसीलिए सत्कर्म करना या भगवद्-भक्ति करना आगे पर कभी नही छोडना चाहिए। पता भी नही चलेगा और काल-

---

१ "अजहूँ चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६, पद ८० ।

२ "घर की नारि बहुत हित जासौं, रहित सदा सग लागी।
जा छन हस तजी यह काया, प्रेत प्रेत कहनि भागी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २६, पद ७९ ।

३ "जा दिन मन-पछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।
. ...
जिन लोगनि सों नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं।
घर के बाहर सवारे काढो, भूत होइ धरि खैहैं।
जिनु पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैं।
तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं।
....
सूरदास भगवत भजन बिनु बृथा सु जनम गवैहैं।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ २८, पद ८६ ।

४ "श्वासनो शो विश्वास, नहि निमिष नो, आश अधूरी ने एम मरवु।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४८०, पद २८ ।

देवता आ पहुँचेंगे, जिनकी हमारे मुख पर खूब मार पड़ेगी[1]। जब यम के दूतों की मार पड़ेगी, तब कोई बचाने नहीं आएगा[2]। जीवन और सृष्टि की माया यम की फाँसी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है[3]। मृत्यु को विवाह के रूप में वर्णित करके मानव को चार हरे बाँसों की पालकी पर सुला कर, चार 'रामनाम' कहने वाले कहारों से उठवा कर, बारातियों के साथ श्मशान-ग्राम में ले जाकर चिताकुंवरी से उसका विधिवत् विवाह कराया जाता है। घर को श्मशान रूपी ससुराल में छोड़ कर बराती घर लौटते हैं। शरीर के भीतर के जीव को यम के दूत ले जाते हैं। भगवद्-भक्ति करने वाले के जीवन का अन्त सुखमय और शान्तिमय हो सकता है, अन्य सब का तो बुरा हाल होता है[4]। नरसिंह उपदेश देते हुए कहते हैं कि माया का त्याग करके सत्य को ज्ञानपूर्वक समझो। भगवान ही सच्चे साथी हैं, दुनिया तो दीवानी और स्वार्थी है। तुम्हारी कंचन जैसी काया मरने पर जला दी जायगी और यम के

---

१ "एमने एम करतां रे, काल रावी पहोंचशे रे, पछे तारा मुखमा पडशे मार।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६०, पद ५२।

२ "जमकिंकरना मार ज पडशे, त्यारे आडे कोई नहि आवे रे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६०, पद ५४।

३ "......अवर माया जम-फास दिया।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६२, पद ५८।

४ "काला रे करनी पालखी, जोता वनिताने थाय उलास।
....
लीला ते वासनी पालखी रे, तेना उचकनारा चार,
माथे ते बाध्या भीना पोतिया रे, मोढे रामनाम पोकार।
.. ..
..... मसाणा गामनु नाम,
लालबाईनी दीकरी रे, चिताकुवरी जेनु नाम,
जमाई तो रह्या सासरे रे, जानइया आव्या घेर।
....
जीवने जमडा लई गया रे, देहीनो कोधो प हवाल,
नरसैंयाना स्वामी मल्यो रे, ते तो उतरिआ भवपार।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६३, पद ६०।

दूत घुयनाप जीव को धनीट कर ले जाएँगे[१]। वे एक स्थान पर जीवन और आयु की तुलना नदी से करते हैं, जिसका नीर बहना चला जाता है और उसे रोका नहीं जा सकता[२]। आयु भी क्षीण होती जाती है, उसे रोका नहीं जा सकता। जीवन का अन्त होने पर यम को हिसाब देना पड़ेगा। इसलिए भगवद्भक्ति और सत्कार्य में आलस्य मत करो[३]। एक पद में वे कबीर से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं, जिसमें वे केश का घास के समान तथा हड्डियों का लकड़ी के समान जलने का, माता के जन्म भर रोने का, बहन के बारह महीने तक रोने का तथा स्त्री के तेरह दिन तक रोने का वर्णन करते हैं। वे अन्त में उपदेश देते हैं कि 'मेरा मन' सब मिथ्या समझो क्योंकि और संसार के व्यवहार को असत्य जानो। भगवद्भक्ति को जीवन का अंग बना लो क्योंकि उसी से भवसागर पार होगा[४]।

मृत्यु का भयावह चित्र खींचने में सूर से भी नरसिंह कुछ आगे हैं। जीवन की नश्वरता सिद्ध करके इन दोनों कवियों ने कल का तो क्या, अगले क्षण का भी भरोसा न कर, इसी क्षण से भगवद्भक्ति तथा सत्कर्म करने का उपदेश अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

---

१ "हरिना भजन विना तारी जाय छे जुवानी।
काया तारी कचन जेवी, भानी जेवा पाणी।
सुवा केडे बाली मुकरो, उडी जाशे कानी।
जातो रे शे जुवानी ने, पछी थाशे हानी।
खाना माना नमडा आवशे, लेई जाशे ताणी।
माटे तमे माया तनी, थाओने शानी।
नरसैंयानो स्वामी साचो, दुनिया दीवानी॥"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह' पृष्ठ ४६४, पद ६४।

२ "नदी तणु नीर नीरख, जोनी जाय छे वहेतु,
आयुष ओछु थाय छे, राख्यु नाथ रहेतु।"
— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६११, पद १०६।

३ "यमने लेखु आपवु, आलसमा शु सुतो।"—इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६११, पद १०६।

४ "हाड जले जेम लाकडा, केश जले जेम घासजी,
कचनवरणी काया जलशे, कोइ न आवे पास।

माता तारी जनम रोशे, बेनी बारे मासजी।
तेर दिवस तारी त्रिया रोशे, जाशे घरनी बहार।

मारू मारू मिथ्या जाणो, जूठो जगवहेवारजी,
नरसैंयाना नाथने भजी ले, उतारे भवपार।"
—ह०व० दवेदिया, 'नरसिंह महेताना भजनो', पृष्ठ ६०, पद १८०।

समदृष्टि

न तो भगवान् और न ही भगवान् के भक्त, ऊँच और नीच, स्त्री और पुरुष, ब्राह्मण और शूद्र तथा राजा और रंक में किसी प्रकार का भेद देख सकते हैं। जाति-पाँति की अभेदता सच्ची एवं सात्विक भक्ति का प्रधान लक्षण है। सभी मनुष्य भगवद्-भक्ति करने तथा कर्म करने में स्वतंत्र हैं। सूर तथा नरसिंह के पदों में जाति-पाँति की अभेदता तथा उच्च-नीच की संकीर्णता के भाव का परिहार पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। सभी के प्रति समदृष्टि का भाव रखना भक्ति का मुख्य अंग है, जो इन दोनों महाकवियों में पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होता है।

सूरदास स्पष्ट रूप से कहते हैं कि भगवान् तो भक्त वत्सल हैं। वे अपनी शरण में आने वाले सभी भक्तों का उद्धार करते हैं—चाहे वे किसी भी जाति, गोत्र, कुल और नाम के हों और चाहे वे निर्धन हों या राजा हों[1]। भगवान के दरबार में जाति-पाँति कोई पूछता नहीं[2]। भगवान किसी की जाति और किसी के कुल का विचार नहीं करते। अविगत की गति समझ में नहीं आती। वे व्याध और अजामिल का उद्धार करते हैं। विदुर कोई उच्च जाति के नहीं थे, किन्तु भगवान ने राज-सम्मान को ठुकरा कर उनके यहाँ माँग कर भोजन किया है। ऐसे जन्म-कर्म के ओछे और छोटे लोगों से भगवान का व्यवहार विशेष स्नेहपूर्ण रहता है। वे अपने भक्तवत्सल विरुद को निभाते हैं[3]। 'खेलत में को का गुसैंया' में भी, तथा होली के वर्णनों में भी समानता का भाव घोषित किया गया है।

सूरदास के अनुसार भक्ति पारसमणि के समान है जिससे लोहा भी स्वर्ण बन जाता है, नीच भी उच्च कर्मों का करने वाला हो जाता है[4]। भगवान की दृष्टि में

---

१ "राम भक्तवत्सल निज बानौं।
जाति, गोत, कुल, नाम, गनत नहिं, रंक होइ कै रानौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४, पद १२।

२ "जातिपाति कोउ पूछत नाहीं श्रीपति के दरबार"—'सूरसागर', पृष्ठ ७५ पद २३१।

३ "काहू के कुल तन न विचारत।
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध अजामिल तारत।
कौन जाति अरू पाति विदुर की, ताही कैं पग धारत।
भोजन करत मागि घर उनकैं, राज-मान-मद टारत
ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ ब्यौहारत।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त बछल पन पारत।
—'सूरसागर', पृ० ४-५ पद १२।

४ "जैसे लोहा कंचन होई। स्याम भई मेरा गति सोइ॥
दासी सुत ते नारद भयो। दुःख दासपन कौ मिटि गयौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ७५, पद २३०।

नीच और ऊँच एक समान हैं[1]। जो भगवान की भक्ति करता है वह भगवत्कृपा से नीच से ऊँच हो जाता है[2]। भगवान पुरुष और स्त्री में या कुलीन और अकुलीन में कोई भेद नहीं देखते[3]। दासी कुब्जा का और गणिका का भी भगवान ने उद्धार किया है। चाण्डाल भी यदि ईश्वर का भक्त है तो वह उस ब्राह्मण से श्रेष्ठतर है जो यज्ञ व्रत वादविवाद आदि में अपना जीवन व्यर्थ व्यतीत करता है और जो ईश्वर-भक्ति से शून्य है[4]। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास ने अपनी भक्ति भावना के अंतर्गत समदृष्टि और सामाजिक उदारता का दार्शनिक दृष्टिकोण पूर्णरूप से अपना लिया था, जो मानवमात्र की समानता की घोषणा करता है, सबको समानरूप से भक्ति का अधिकारी घोषित करता है और सबको सत्कर्म करने के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करता है।

नरसिंह मेहता में भी यह समदृष्टि का भाव अपने पूर्णतम रूप में मिलता है। एक पद में वे कहते हैं कि सभी को समदृष्टि से देखने वाला ही सच्चा वैरागी है[5]। उनकी कविता में ही नहीं, बल्कि उनके जीवन में भी यह दृष्टिकोण स्वाभाविक रूप से समन्वित हो गया था। वे उच्च जाति के ब्राह्मण होकर भी ढेढ़ भंगियों और चमारों के यहाँ जाकर भोजन करते थे और रात रात भर भजन गाते थे। सच्चे वैष्णव में 'समदृष्टि' तो परमावश्यक तत्व है इसे उन्होंने समझा था, जीवन में उतारा था और अपने पदों में ऊँचे स्वर में बराबर गाया है। "वैष्णव जन तो तेने रे कहिए" के उनके प्रसिद्ध भजन में भी 'समदृष्टि' का उन्होंने उल्लेख किया है[6]। भगवान के राज्य

---

१ "नीच ऊँच हरि कैं इकसार।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १६८, पद ४२७।

२ "हरि की भक्ति करै जो कोइ। सूर नीच सौं ऊँच सो होइ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १६६, पद ४२७।

३ "पुरुष औ नारि कौ भेद भेदा नहीं, कुलिन अकुलिन अवतर्यौ काकै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३२०, पद ३७१६।

४ "स्वपचहु स्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गुपाल द्विज-जनम न भावै।
बाद बिवाद, जज्ञ व्रत साधन, कितहूँ जाइ, जनम डहकावै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ७६, पद २३३।

५ "सर्वे भूत समदृष्टे पेखे, तेने वेरागी कहिए।"
— इ०सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ १२, पद २८।

६ "समदृष्टि ने तृष्णा रे त्यागी परस्त्री जेने मात रे।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ५५, पद १४८।

मे पक्षापक्षी नही है, वहाँ तो समदृष्टि है, सभी समान हैं। ढेढ जाति के लोगो के निवेदन पर उनके घर जा कर रात भर भजन करने का वर्णन नरसिंह ने स्वय किया है। लोगो के हँसी-मजाक करने पर तथा जाति-पाँति का विचार किए बिना ढेढो के यहाँ जाने के अविवेक के लिए उन्हे कोसने पर वे बोले कि ऐसा करने के लिए मेरे पास तो वैष्णव धर्म का आधार है[1]। इसका मतलब है कि वे वैष्णवधर्म को पूर्णरूप से समझ कर औरो को भी उस धर्म के उदार सामाजिक दृष्टिकोण को समझाने की चेष्टा करते थे। इस पद मे वे कहते हैं कि उनके रात भर ढेढो के यहाँ भजन करने से वे सभी वैष्णव सतुष्ट हुए। यहाँ वे उन ढेढो को वैष्णव ही कहते हैं। नरसिंह के उदार दृष्टिकोण और सच्ची समदृष्टि का यहाँ हमे पूर्ण दर्शन होता है। ढेढ भगियो के लिए गाधी जी ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग भी नरसिंह के पदो से ही प्रेरणा पाकर प्रारभ किया था, जो अब चल पडा है। एक स्थान पर नरसिंह स्पष्ट रूप से कहते है कि "मैं लोगो की दृष्टि मे नीच और अनुचित कमो का करने वाला हूँ, किन्तु मुझे तो वैष्णव प्यारे है और जो भी हरिजन से भेद रखेगा उसका ससार मे जन्म लेना ही व्यर्थ सिद्ध होगा[2]। नरसिंह मेहता "भगवान की तो सब पर समान रूप से कृपा होती है," इसके लिए शबरी, अजामिल, व्याध, गणिका इत्यादि सभी परम्परा-प्रसिद्ध उदाहरणो का तो बार-बार उल्लेख करते हैं। वे यहाँ तक कहते हैं कि भगवान ने भक्ति देखकर म्लेच्छ कबीर का भी उद्धार किया[3]। नारी के लिए सूर ने तो कही निन्दा का भाव भी अभिव्यक्त किया है कि "नारी नागिन एक सुभाव[4]।" किन्तु नरसिंह तो कहते हैं कि "स्त्री का अवतार तो सार का भी सार है, जिससे श्रीकृष्ण रीझते हैं[5]। एक स्थान पर वे गोपी-मुख से कहलाते हैं (और अपने गोपी-भाव को भी प्रकट करते हुए

---

१ "पक्षापक्षी त्या नहि परमेश्वर, समदृष्टि ने सर्व समान, ...
भोरथया लगि भजन कीधु, सतोष पाम्या सउ वैष्णव . ...
जाग्या लोक नर नारी पूछे, मेहेताजी तमे एवा शु ?
नात न जाणोने जात न जाणो, न जाणो काइ विवेकसार,
कर जोडी ने कहे नरसैंयो, वैष्णव तणो छे मन छे आधार।"
— इ०मू०देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४७०-७१, पद ४।

२ "हलवा कर्म नो हु नरसैंयो, मुजने तो वैष्णव वाहाला रे,
हरिजन थी जे अंतर गणशे, तेना फोगट फेरा ठाला रे।"
— इ० मू० देसाई, नरसिंह मेहता कृत काव्यसग्रह', पृष्ठ ४७१, पद ५।

३ "म्लेच्छ (जन) मार्टि ते कबीरनें ऊधर्यो।"—के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हारसमेना पद अने हारमाला, पृष्ठ १५, पद १०।

४ 'सूरसागर', पृष्ठ १८०, पद ४४६।

५ "सार मां सार अवतार अबला तणो, जे बले बलिभद्र-वीर रीझे।"
—इ०मू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृ० ४७७, पद २३।

कहते हैं कि) कि "किन पुण्यों के परिणाम स्वरूप मैं नारी के रूप में अवतरित हुई[1] ?" इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से देखते है कि नरसिंह का काव्य और जीवन समदृष्टि के भाव का पूर्ण प्रचारक रहा। एक स्थान पर वे कहते हैं कि ऊँच और नीच को भगवान नहीं देखते। भक्त के प्रेम को देखते हैं[2]। सूरदास और नरसिंह मेहता के इस प्रकार के समदृष्टि के भाव का सामाजिक महत्व असाधारण है क्योंकि इससे सामाजिक असमानता दूर होने में कुछ सहायता अवश्यमेव पहुँची होगी और धार्मिक समानता ही सामाजिक समानता को जन्म दे सकती है, इसलिए इन कवियों की ऐसी वाणी का प्रभाव भी गहरा पड़ा होगा।

लक्ष्य

भक्तों की भक्ति का भक्ति के अतिरिक्त और कोई लक्ष्य नहीं होता, स्वर्ग, मोक्ष, मुक्ति इत्यादि की उन्हें कोई कामना नहीं होती। वे प्रत्येक जन्म में भगवान की भक्ति ही मिले ऐसी भक्तिमयी पवित्र भावना रखते हैं। तब भी कभी वे आत्मा को इहलोक से दिव्यलोक की ओर चलने के लिए कहते हैं। यह दिव्यलोक भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से परमभक्तों की मन स्थिति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। नरसिंह की 'दिव्यद्वारिका' मन की भक्तिपूर्ण तन्मयता एवं एकाग्रता का ही मानसिक चित्र है। सूर का प्रेम के वियोग से मुक्त कराने वाला प्रभु-चरण सरोवर भी भक्ति की परम मन स्थिति का ही वर्णन है। सूर कहते हैं कि "हे आत्मारूपी चक्रवाकी, तू प्रभु-चरणों के सरोवर पर चल, जहाँ प्रेम वियोग कभी नहीं होता और जहाँ भ्रम की रात्रि कभी नहीं होती[3]। भक्ति की परम पवित्र अवस्था यही होती है कि भक्त अपने को सदा प्रभु-चरणों में शरण पाया हुआ देखता है, कभी अपने को प्रभु-प्रियतम से वियुक्त अनुभव नहीं करता और भ्रम तथा अज्ञान की अंधकारमय रात होने ही नहीं देता। तब भी सूर के जन्म मृत्यु के चक्कर से छुटकारा पाने की और प्रभु के चरणों में ही सदा रहने की भावना बराबर प्रकट की है[4]। यहाँ हम यह अनुभव

१ "काण पुन्ये करा, नार हु अवतरी "—इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ २०७, पद १४८।

२ "नीच्नन, ऊंचनु त्यां नथी पारखु, प्रेम दीठो तेने रह्यो रे झाला।"
—वही, पृष्ठ २८७, पद ४२८।

३ "चकई री चलि चरण सरोवर जहा न प्रेम वियोग।
जह भ्रम निशा होत नहि कबहूँ वह सायर सुख जोग॥"
—'सूरसागर', पृष्ठ १११, पद ३३७।

४ "चलि सखि तिहि सरोवर जाहिं।
जिहि सरोवर कमलकमला रवि बिना विकसाहिं।
....
सूर क्यों नहिं चलै उडि तह बहुरि उड़िबौ नाहिं।
— 'सूरसागर', पृष्ठ ११२, पद ३३८।

करते है कि सूरदास मुक्ति की कामना करते है, किंतु यह मुक्ति भी सायुज्य मुक्ति है, जिस स्थिति मे इष्टदेव का सान्निध्य, सामीप्य बराबर बना रहता है। वे कहते है कि निष्कामी भक्त वैकुठ सिधारता है, जहाँ पहुँच कर वह जन्म मृत्यु से मुक्ति प्राप्त कर लेता है[1]। वे भक्ति को ईश्वर प्राप्ति के सर्व साधना मे सर्वोपरि स्थान दे कर आवागमन की चक्की मे पिसने से बचना चाहते है, अपुनरावृत्ति की विमुक्त अवस्था प्राप्त करना चाहते है। इनकी भक्ति का दार्शनिक लक्ष्य सायुज्य मुक्ति ही है, किन्तु नरसिंह 'जन्म मृत्यु के चक्र से छुटकारा पाने की बात बारबार कह कर भी इस जीवन के भक्ति के आनद को इतना दिव्य, अद्वितीय एव परम मधुर अनुभव करते हैं कि वे भक्ति के आगे मुक्ति को कुछ भी नही समझते। वे स्पष्ट रूप से बारबार भगवान से प्रत्येक जन्म मे भगवान की भक्ति ही भक्ति माँगते हैं[2]। प्रत्येक जन्म मे वे गोपीभाव से, भगवान की दासी हो कर, उनकी लीला गाना चाहते है[3]। वे औरो को तो उपदेश देते हैं कि कृष्ण की भक्ति करने से वैकुण्ठ मिलेगा, जन्म मृत्यु के से सदा के लिए मुक्ति मिलेगी इत्यादि, किन्तु अपने लिए तो दोनों हाथ जोड कर प्रत्येक जन्म मे हरि की ही, अर्थात हरि भक्ति की ही याचना करते हैं[4]। इस प्रकार का परमपवित्र लक्ष्य अपने सम्मुख रखकर ही भगवान के गुण का, भगवान की लीला का तथा अपने को जीवन मे पग-पग पर प्राप्त होने वाली प्रभु कृपा का वर्णन करने वाले नरसिंह का कविरूप जितना सुन्दर और मार्मिक है, उनका भक्त-रूप भी उतना ही पवित्र और हृदयस्पर्शी है और उनका दार्शनिक रूप तो अत्यत गभीर और प्रभावोत्पादक है इसमे कोई सन्देह नहीं। सूरदास के पदो मे दार्शनिकता का तत्व नरसिंह से अपेक्षाकृत कम ही है। डा० रामकुमार वर्मा ने भी यथार्थ ही लिखा है कि सूरदास की रचनाओ मे विशेष दार्शनिक तत्व नही है[5]।

---

१ "निष्कामी बैकुंठ सिधावै। जन्म मरन तिहि बहुरि न आवै।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३७, पद ३६४।

२ "अवान नरसिंयो वाह याचे नहीं,
जनम जनमे तोरी भक्ति याचे।" — के० का० शास्त्री, 'नरसिंह मेहता कृत हारसमनां पद अने हारमाला', पृष्ठ ३०, पद २६।

३ "जनम जनमनी हरीदासी थाउं, नरसैंयाना स्वामीनी लीला गाउं।"
— इ० मु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४६१, पद ५६।

४ "जुगल कर जोडी करा, नरसैंयो एम कहे, जन्म प्रतिजन्म हरिने ज जाचु।"
— इ० मु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४८?, पद २६।

५ डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास',
पृष्ठ ५४२।

अध्याय ९

सूरदास और नरसिंह मेहता के साहित्य का कलापक्ष

यद्यपि काव्य मे भावपक्ष ही प्रधान होता है, तथापि कलापक्ष भावपक्ष को अधिक सुन्दर, प्रभावोत्पादक तथा पूर्ण बनाने मे सहायक सिद्ध होता है इसलिए उसका स्थान भी गौण नही है। सूरदास और नरसिंह के साहित्य में भावपक्ष के उत्कर्ष को बढाने वाला कलापक्ष भी भावपक्ष के समान ही सुन्दर और हृदयस्पर्शी है। इन दोनो कवियो द्वारा अपनाई गई गीतिकाव्य की शैली, सगीत के समन्वय के कारण वर्णित भावो की मधुरता एव मार्मिकता को मधुरतम तथा मार्मिकतम रूप मे प्रस्तुत करती है। इन दोनो महाकवियो की काव्यकौमुदी सगीत-सौंदर्य से जगमगा उठी है। नरसिंह द्वारा आविष्कृत 'केदारा' राग का सूर ने भी प्रयोग किया है, जो नरसिंह के सगीत की सीमा तक के, सूर पर के प्रभाव का सूचक है। इन दोनो कवियो के सुन्दर और मधुर पदो मे प्रयुक्त हो कर धन्यता का अनुभव करने प्राय सभी राग-रागिनियाँ मानो प्रतिस्पर्धा करती हुई आ गई हैं। गीतिकाव्य की शैली इन्हे जयदेव और विद्यापति से परपरा के रूप मे मिली थी इसमें कोई सन्देह नहीं, तथापि इन्होंने इस शैली को स्वाभाविकता, सजीवता तथा चित्रमयता का पुट दे कर और भी परिमार्जित किया है इसे तो स्वीकार करना ही पडेगा। इन दोनो लोकप्रिय कवियो के पद प्रधान रूप से प्रसाद-गुण-सपन्न एव माधुर्य-भाव-मडित हैं, तथापि उसमे ओज भी पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है क्योकि सूर और नरसिंह दोनो ने शृगार के अन्तर्गत वीररस का वर्णन बडे उत्साह के साथ किया है। दोनो की भाषा सरल, सजीव, स्वाभाविक, चित्रमय, ध्वन्यात्मक शब्दो, मुहावरो तथा लोकोक्तियो से युक्त तथा प्रवाहमयी है। सूर के समान नरसिंह के पदो मे भी फारसी शब्द आए हैं। नरसिंह पर मराठी का भी कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है। सूर पर अवधी तथा हिन्दी की अन्य प्रादेशिक भाषाओ का प्रभाव अवश्य पडा है। इन दोनो कवियो के अधिकाश वर्णन अभिधापरक हैं, कुछ लाक्षणिक हैं और पर्याप्त व्यजना-परक हैं। इन दोनो ने वात्सल्य रस, शृगार-रस तथा शान्तरस के अतिरिक्त हास्यरस, वीररस, करुण रस इत्यादि का भी गौणरूप से वर्णन किया है। भाव तथा विभाव के वर्णनो मे इन कवियों ने अपना पूर्ण काव्य-कौशल दिखलाया है। नायिका भेद, नखशिख आदि का वर्णन भी पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। केवल दृष्टिकूट की शैली सूर की अपनी विशेषता है, जो नरसिंह मे बिलकुल नही मिलती।

अलंकार

अलकार काव्य के सौन्दर्य को वढा कर, सजा कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। भाव के उत्कर्षार्थ ही अलकारो का प्रयोग होता है। यद्यपि सूर और नरसिंह ने अपना अलकार-प्रयोग-कौशल दिखलाया है, तथापि निश्चित ही सूर के अलकार अधिक सुन्दर, विशेष कल्पनापूर्ण तथा अत्यत हृदयस्पर्शी सूक्ष्मता सयुक्त जान पडते हैं। नरसिंह का कविरूप मौलिक प्रसगो की योजना मे तो प्रबल हो जाता है, किन्तु अलकारो के प्रयोग मे सूर के समान प्रबल और प्रखर नही हो पाता। सूर ने कही-कही पाडित्य प्रदर्शन और चमत्कार उत्पन्न करने के लिए भी अलकारो के प्रयोग किए हैं, जैसे दृष्टिकूट की शैली मे। ऐसा अलकार-प्रयोग-कौशल हृदय को नही, बुद्धि को ही प्रभावित करता है। नरसिंह मे यह प्रवृत्ति बिल्कुल नही पाई जाती। सूर के इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण ऊहात्मक अलकार प्रयोग के दो-एक उदाहरणो को देखें —

'अद्भुत एक अनुपम बाग।
युगल कमल पर गजवर क्रीडत, ता पर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृग-मद काग।
खजन, धनुष, चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर एक मनिधर नाग॥
अग-अग प्रति और और-और छवि, उपमा ताकौं करत न त्याग।'[1]

रूपकातिशयोक्ति का यह दृष्टिकूटरूप अत्यन्त चमत्कारपूर्ण एव केवल ऊहात्मक है, जिसमे चरणो, जघाओ, कटि, नाभि, हृदय, स्तन, ग्रीवा, मुँह, ओष्ठ, नासिका, भृकुटी, नेत्र, मुख, केश आदि का अति कल्पनामय वर्णन किया गया है।

'कहत कत परदेसी की बात।
मन्दिर अरध अवधि बदि हम सौ, हरि अहारे चलि जात॥
ससि रिपु बरष, सूर रिपु जुग बर, हरि-रिपु कीन्हौ घात।
मघपचक लै गयौ सावरी, तातै अति अकुलात॥
नखत, वेद, ग्रह, जोरि अर्घ करि, सोइ बनत अब खात।
सूरदास बस भई बिरह के, कर मीजै पछितात।'[2]

उक्तिवैचित्र्यप्रधान ऐसे दृष्टिकूट पदो मे शब्दार्थ की जो खीचतान होती है वह ध्यान देने योग्य है।

---

१ 'सूरसागर', पृष्ठ ६६६, पद २७२८।
२ 'सूरसागर', पृष्ठ १५८५, पद ४५६४।

'दूरि करहि बीना कर धारिबौ ।
रथ थाक्यौ, मानौ मृग मोहे, नाहिन होत चन्द्र को ढरिबौ ।'[1]

ऐसे चमत्कार-प्रधान ऊहात्मक पद अस्वाभाविक जान पड़ते हैं । परन्तु ऐसे पद, उस समय की परम्परा के अनुसार ही सूर ने लिखे होंगे । और अनेक पदों में पाये जाने वाले सूर के द्वारा प्रयुक्त अलंकार स्वाभाविक, सजीव एवं रसमय हैं, जो काव्य के भाव-लालित्य एवं रस-माधुर्य को अनेक गुना बढ़ाते हैं । नरसिंह में अलंकार *प्रयोग की प्रवृत्ति के प्रति विशेष उत्साह नहीं है और जहाँ अलंकार आए भी हैं वहाँ* वे सूर के अलंकारों के समान सूक्ष्म और कल्पनामय नहीं प्रतीत होते । कहीं-कहीं उनके अलंकार असाधारण प्रभाव उत्पन्न करते हैं और अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं, किन्तु ऐसे स्थल सूर के अलंकार-प्रयोग की तुलना में कम ही हैं ।

शब्दालंकार

शब्दालंकार कविता के श्रुति-माधुर्य को बढ़ाते हैं । सूर और नरसिंह में श्रुति-माधुर्य की वर्धमान करने वाले शब्दालंकार पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं । अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि नरसिंह की अपेक्षा सूर में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । अब कुछ उदाहरणों के आधार पर इन दोनों कवियों के शब्दालंकारों की तुलना की जाय ।

सूर के पदों में अनुप्रास का चमत्कार स्वाभाविक रूप से आ गया है, यथा—
'आजु सर्वरी सबं बिहानी, तोहिं मनावत राधा रानी ।'[2]
'चपला अति चमचमात, ब्रजजन सब अति डरात ।'[3]
'सुनत करुना बैन, उठ हरि बल-एन, नैन की सैन गिरितन निहारयौ ।'[4]
'विलसत विपिन विलास विविध वर वारिज वदन विकच सचुपाये ।'[5]
'नवल निकुंज नवल नवला मिलि, नवल निकेतन रुचिर बनाए ।'[6]
'कमल नयन के कमल बदन पर वारिज वारिज वारि ।'[7]

इन उद्धृत अंशों में एक स्वाभाविक प्रवाह पाया जाता है, जिससे सिद्ध होता है कि चमत्कारपूर्ण शब्दावली स्वयं कवि के शासन में भाव के साथ चिपटी चली आई है ।

---

१ 'सूरसागर', पृष्ठ १३६७, पद ३७८५ ।
२ 'सूरसागर', पृष्ठ ११७६, पद ३४१७ ।
३ 'सूरसागर', पृष्ठ ५५८, पद १४७५ ।
४ 'सूरसागर', पृष्ठ ५६२, पद १४८८ ।
५ 'सूरसागर', पृष्ठ ६३४, पद २६०५ ।
६ 'सूरसागर', पृष्ठ ६३४, पद २६०५ ।
७ 'सूरसागर', पृष्ठ ८८१, पद २४३४ ।

नरसिंह के पदो मे भी अनुप्रास की खूबी स्वाभाविक रूप से आ गई है, जैसे—

'मधराते मोहनजी मोह्या, माननी साथ रे ।'[1]

'प्रेमदा प्रेमम् अधर चुम्बन करें ।'[2]

वनमा विलसता रे विलसता, वहालो वनिता वेश रे ।'[3]

'चुआ चदन कलश कनकनो, भरीए केशर गोली रे ।'[4]

'वसतरा मोरमा, विहगम सोरमा, स्वामिनी चाली मधुपूर वाटे ।'[5]

'त्रिभुवन मोहिनी, आभ्रण सोहिनी, दस सखी राखी छे दाण माटे ।'

'चमकती चाले रे चतुरा, झाझरनो झमकार रे,

कामनी काम भरी भुज भीडे, सगम नन्दकुमार रे ।'[6]

नरसिंह मे अनुप्रास के आधार पर चमत्कार और प्रभाव उत्पन्न करने की प्रवृत्ति अधिक है, किन्तु इससे पदो की सरसता और मधुरता मे वृद्धि होती है और रसोत्कर्ष मे यह प्रवृत्ति बाधक नही अपितु साधक सिद्ध होती है ।

सूर मे यमक अलङ्कार का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे मिलता है । सूर ने यमक का प्रयोग अत्यत सुन्दर, स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी ढग से किया है, यथा—

'ऊधो जोग जोग हम नाही ।'[7]

'सारग बिनय करति सारग सौं सारग दुख बिसरावहु ।'[8]

लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम-स्यामजी की पाती ।'[9]

चमत्कारमूलक यमक के ये प्रयोग हृदय और बुद्धि दोनो को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखते हैं । नरसिंह मे यमक का प्रयोग नही के बराबर है । इतने स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक ढग से बहुत कम आया है ।

'एम रगतरग करे घणा, रमानाथ विण केम रीझए ।'[10]

'जीव जाय तो जाय भले पण जीवण न जावा दइये ।'[11]

श्लेप का प्रयोग सूर मे पर्याप्त मात्रा मे मिलता है, नरसिंह मे नही के बराबर

---

१ इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ २०६, पद १४५ ।
२ " " " पृष्ठ २१८, पद १८३ ।
३ " " " पृष्ठ २३८, पद ४४ ।
४ " " " पृष्ठ २३७, पद ३६ ।
५ " " " पृष्ठ ६४, पद ३ ।
६ " " " पृष्ठ १७०, पद २७ ।
७ 'सूरसागर', पृष्ठ १५६६, पद ४५४२ ।
८ " पृष्ठ ६६५, पद २७१५ ।
९ " पृष्ठ १४३५, पद ४१०५ ।
१० इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ५८, पद ३ ।
११ " " " पृष्ठ ६१, पद २४ ।

मिलता है।

'निरखत अंक स्याम सुन्दर के, बार बार लावत लै छाती।'[1]

'ऊधौ, हरि गुन हम चकडारे।
गुन सौं ज्यौं भावै त्यो फेरौ, यहै बात की ग्रौर॥
....
सूर सहज गुन ग्रथि हमारे, दई स्याम उर माँहि।
हरि के हाथ परें तौ छूटैं, ग्रौर जतन कछु नाहिं।[2]

सूर ने इन उद्धृत अंशो में 'अंक' और 'गुण'—इन द्विअर्थी शब्दो से श्लेष का सुन्दर चमत्कार उत्पन्न किया है। 'गोरस' शब्द पर भी बार-बार श्लेष का चमत्कार मिलता है। नरसिंह भी 'गोरस' शब्द पर ही श्लेष करते हैं—

'आज तारुं गोरस चाखवुं मारे, मन इच्छे मारु रे।'[3]

पुनरुक्तिप्रकाश उक्ति के प्रभाव को बढाने के लिए प्रयुक्त होता है। सूर में यह अलकार पर्याप्त परिमाण मे मिलता है।

'नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुवरि वृषभानु-किसोरी।
नयौ पिताम्बर, नई चूनरी, नई-नई बूदनि भीजति गोरी।'[4]
'नव नेह नव पिया नयो नयो दरस।'[5]

नरसिंह के पदो मे भी पुनरुक्तिप्रकाश अलकार प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध होता है।

'आज दिन रूडो रे रूडो रे, रूडु गोकुल गाम रे,
रूडी रामा रगे रमती, रूडा सुन्दरश्याम रे।
रूडी वाट सोहे रगे राती, रूडा जमना तीर रे,
रूडु वन वृद्रावन फुल्यु, रूडा हलधर वीर रे।
रूडो रस आव्यो नरसैया ने, पीता तृप्त न थाय रे।
रूडु रूडु तो मले जो, पूजीए जादवराय रे।'[6]
'धन धन धरती रे धरती रे, ज्या सुदिर वर नाचे रे,
धन धन गोपी प्रेमे कुजमा, रामा रसमा रोचे रे।
धन धन चुवा चदन चतुरा, अबील गुलाल उछाले रे,
धन धन केशर करदम, मदभरी माननी महाले रे।

---

१ 'सूरसागर', पृष्ठ १४३५, पद ४१०५।
२ " पृष्ठ १४५२, पद ४१६२।
३ इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ४१३, पद ५०३।
४ " " " पृष्ठ ५०१, पद १३०३।
५ 'सूरसागर', पृष्ठ ५०२, पद १३०६।
६ इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ २४५, पद ६८।

धन धन जोवन युवति केरू', जीवन अबला सोहे रे,
भरणे नरसैयो धन धन लीला, जोता सुरिनर मोहे रे।"[1]

वक्रोक्ति अलकार सूर के पदो मे, विशेषतः भ्रमरगीत प्रसग मे प्रचुर परिमाण मे मिलता है, किन्तु नरसिंह मे इस अलकार का चमत्कार सौंदर्य नही के बराबर मिलता है। सूर के पदो मे वक्रोक्ति का चमत्कार सौदर्य सहज रूप से आ गया है, यथा—

'साच कहौ तुमकौं अपनी सौं, बूझति बात निदाने।
सूर स्याम जब तुमहिं पठायो, तब नैकहु मुसुकाने।'[2]
'ऊधौ, और कुछ कहिबे, कौ ?
मन माने सोऊ कहि डारौ, हम सब सुनि सहिबै कौं।
....
सूर जोग-धन राखि मधुपुरी, कुबिजा के घर गाडि।'[3]

नरसिंह मे वक्रोक्ति का चमत्कार कही-कही अपवादरूप किंचित मात्रा मे मिलता है, जैसे—

'काली और कूबडी कुब्जा क्या सुन्दर नखरे करती होगी ? जो चतुर हो वह तो समझ सकता है। मूर्ख को भी क्या चस्का है ?'[4]
'काले कृष्ण और काली कुब्जा की जोडी बहुत अच्छी बनी है।'[5]

शब्दालकार मे सूर श्लेष, यमक, वक्रोक्ति आदि अलकारो का स्वाभाविक रूप से और प्रचुर मात्रा मे प्रयोग करके नरसिंह से अधिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं इसमे कोई सन्देह नही। अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश आदि मे सूर और नरसिंह का प्रभाव प्राय. समान सा ही है। सूर और नरसिंह के पदो में तुक भी बडे मधुर और हृदय को छूने वाले है। इन दोनो के पदो मे भाव यदि आत्मा हैं तो गेयता और सगीत प्राण के समान हैं।

अर्थालंकार

अर्थालकार का सौंदर्य और चमत्कार स्थायी प्रभाव उत्पन्न करता है और

---

१ इ० मु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ २४४, पद ६६।
२ 'सूरसागर', पृष्ठ १४४५, पद ४१३८।
३ 'सूरसागर', पृष्ठ १४४४, पद ४१३६।
४ "कुबजा काली ने अगे कुबडी, सुदर करती हशे लटको रे।
चतुर होय ते चित्तमां चेते, मुरखने शो चटको रे।"
—इ० मु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ३१३, पद १६५।
५ "कालो कहानो काली कुबजा, सरखे मली छे जोडी रे।"
—वही पृष्ठ २-- पद ६०।

कवि की उच्च कल्पनाशक्ति का परिचय देता है। सूरदास और नरसिंह मेहता, दोनों ही भावुक तथा कल्पनाशील कवि के नाते अर्थालंकारों का, भावों के अनुरूप तथा रसों के अनुकूल, स्वाभाविक रूप से सर्वत्र प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं इन कवियों ने परंपरा में मिले हुए अलंकारों का प्रयोग भी किया है। अनेक स्थलों पर अपनी मौलिक प्रतिभा तथा नवोन्मेषशालिनी कल्पनाशक्ति का भी दोनों ने सुन्दर परिचय दिया है। सूरदास में नरसिंह मेहता की तुलना में कुछ विशेष अलंकारप्रियता पाई जाती है।

उपमा

सूर और नरसिंह की उपमाओं में परंपरास्वरूप अपनाए गए अलंकारों के कारण कुछ साम्य भी मिलता है। नेत्रों को कमल, मीन, खंजन आदि के समान, मुख को कमल और चन्द्र के समान, नासिका को कीर के समान, दन्त-पंक्ति को दाडिम के दानों या विद्युत् के समान, कृष्ण के नीलवर्ण को मेघ के समान, उनके पीताम्बर को विद्युत् के समान वर्णित करने की प्रवृत्ति दोनों में पाई जाती है। ये और ऐसे अनेक उपमान इन कवियों ने कवि-परंपरा से लिये हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। नील-वर्ण कृष्ण और गौरवर्ण राधा के आलिंगन की तुलना दोनों कवि नीलमणि जड़ित स्वर्ण से करते हैं।[1]

नरसिंह एक पद में राधा के सौंदर्य रस का पान करने वाले कृष्ण की तुलना कमल के मकरंद का पान करने वाले भौंरे से करते हैं।[2] एक और स्थान पर वे रास-रस में निमग्न गोपियों तथा चन्द्र को वे चंद्रिका से वेष्टित चन्द्र की उपमा देते हैं।[3] इस प्रकार की उपमाओं के प्रयोग में हमें उनकी कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है। वे कृष्ण गोपी की तुलना प्रतिबिंब से खेलने वाले बालक के साथ करते हैं।[4] यह उपमा ब्रह्म और जीव के तादात्म्य-संबंध की सूचक है।

---

१ (अ) "यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५०२, पद १३०६।
(ब) "प्रेम धरीने उर पर लीधो जेम कुंदन हीरो जड़ियो रे।"
— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ३५०, पद २६४।

२ "भृंग अरविंद ने, चूचे मकरंद ने, हरि हरिवद नीने तेम ताणे।"
— वही, पृष्ठ ११२, पद ५७।

३ "ज्यम शशी फरतमा वींटयो चांदणी, त्यम हरि वींट्यो गोपी।"
—वही, पृष्ठ १८९, पद ८३।

४ "मकर प्रतिबिंबमां बालक जेम रमे, तेम रमे गोविंद साथ गोपी।"
—वही, पृष्ठ ५४०, पद ६।

सूर ने भी उपमा अलंकार का प्रयोग बड़े मौलिक स्वाभाविक और प्रभावशाली ढंग से किया है, यथा

'हरि-दरसन की साध मुई ।
उड़िये उड़ी फिरति नैननि संग पर फूटे ज्यों आंक रुई ।'[1]
'स्याम भए राधावस ऐसे ।
नाद कुरंग, मीन जल की गति, ज्यौं तनु कै बस छाया ।'[2]
'उनको पटतर तुमको दीजै, तुम पटतर वे पावैं ।'[3]
'जैसे उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पर आवै ।'[4]
'पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस ज्यौं जल मैं काची गागरि गरि ।'[5]

ऐसी सुन्दर, कल्पनापूर्ण और हृदयस्पर्शी उपमाओं का सूर में अक्षय भण्डार मिलता है ।

कच्ची गागर के जल में घुल-मिल जाने के समान राधा के श्याममय हो जाने की उपमा कितनी मौलिक, स्वाभाविक एवं हृदय को छूने वाली है । अनन्य कृष्णभक्ति के लिए जहाज के पक्षी की उपमा हमें तो अत्यन्त प्रिय प्रतीत होती ही है, प्रत्युत सूर को भी अत्यन्त प्रिय है क्योंकि अपने पदों में एक से अधिक बार वे इसी उपमा का प्रयोग करते हैं । एक दूसरे से ही कृष्ण और राधा की उपमा देने में कितनी सहजता और सरसता है ।

सूरदास और नरसिंह मेहता में अनन्वय अलंकार का प्रयोग भी स्वाभाविक रूप से आया है । सूरदास कहते हैं—

'तुम सी तुम ही राधा, स्यामहिं मन भाइ ।'[6]

नरसिंह भी गोपियों से राधा के लिए इसी प्रकार की बात कहलवाते हैं । गोपियाँ कहती हैं कि 'तुम धन्य हो, तुम्हारी तुलना तुम्हीं हो ।'[7]

---

१ 'सूरसागर', पृष्ठ ८६५, पद २४७३ ।
२ " पृष्ठ ६७१, पद २७५६ ।
३ " पृष्ठ ६५७, पद २६८४ ।
४ " पृष्ठ ५५, पद १६८ ,
५ " पृष्ठ ३०२, पद ७३८ ।
६ " पृष्ठ ६३३, पद १६६४ ।
७ "सर्वे मली ओपियो, धन्य कहे गोपियो, तुलना ताहरी तु रे तरूणी ।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १०६, पद ३८ ।

रूपक अलंकार का प्रयोग सूर और नरसिंह ने बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। इन दोनों कवियों की भक्ति-भावना के एक-एक भव्य और रमणीय रूपक उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं :—

'हरि जू की आरती बनी।
अति विचित्र रचना रचि राखी परनि न गिरा गनी।
कच्छप अध आसन अनूप अति, डाडी शेष फनी।
मही सराव, सप्त सागर घृत, बाती सैल घनी।
रवि ससि ज्योति जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी।
उड़त फूल उड्गन नभ अंतर अजन घटा घनी।
नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर, नर, असुर अनी।
जाके उदित नचत नाना विधि गति अवनी अपनी।
काल कर्म गुन और अन्त नहिं, प्रभु इच्छा रचनी।
यह प्रताप दीपक सुनिरंतर, लोक सकल भजनी।'[1]

समस्त प्रकृति, निखिल ब्रह्माड, समग्र लोकलोकान्तर का अपने सृष्टा विश्व नियंता की विराट आरती उतारने का यह रूपक कितना सुन्दर, भव्य और दिव्य है। हरिजन के राज्य के रूपक,[2] माया रूपी किसी के वश में न रहने वाली गाय का रूपक,[3] कायानगर का रूपक,[4] विरह में योग-दशा का रूपक[5] इत्यादि अनेकानेक प्रभावोत्पादक रूपक सूर के पदों में प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। रूपक सूरदास का प्रिय अलंकार है।

नरसिंह मेहता ने भी कहीं कहीं मनोहर तथा विराट रूपकों की योजना की है। वे वसंत वर्णन के अन्तर्गत भगवान् कृष्ण के लिए आम्रवृक्ष के रूपक की योजना प्रस्तुत करते हैं। गोपियां कहती हैं कि 'चलो गोकुल में एक आम्रवृक्ष मंजरित होने लगा है, उसे देखने चलें। इस आम्रवृक्ष को वसुदेव ने बोया है और वह नन्द के घर में अंकुरित हो रहा है। इसे अपने स्तन्य के जल से यशोदा ने अभिसिंचित किया है। अब यह आम्रवृक्ष फलने भी लगा है। सोलह सहस्र गोपियाँ इस आम्रवृक्ष के आश्रय में रहने वाली कोकिलाएं हैं और इस आम्रवृक्ष की छाया तीनों भुवन में फैली हुई

---

१ 'सूरसागर', पृष्ठ १२३, पद ३७'।
२ " पृष्ठ १४, पद ४०।
३ " पृष्ठ १६, पद ५६।
४ " पृष्ठ २१-२२, पद ६४।
५ " पृष्ठ १४६६-१५००, पद ४३१२।

हैं।" एक और स्थान पर इसी रूपक को वे कुछ अन्य रूप मे प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि 'यह आम्रवृक्ष गुणवान व्यक्तियो के लिए आसानी से फल तोड़े जा सकें इतना नीचा है। इस वृक्ष का विस्तार अत्यत व्यापक है—चौदहो भुवन मे इसके शाखा-पत्र फैले हुए हैं, जिन पर शिव सनकादि पक्षी बैठे हुए है।'[२] यह रूपक नरसिंह मेहता की मौलिक प्रतिभा का द्योतक है और उनकी उच्च कल्पनाशक्ति का सूचक है। इसमे कोई सदेह नही। कही व रामनाम के व्यापार[३] का रूपक प्रस्तुत करते हैं, तो कही मृत्यु को भी विवाह के रूपक द्वारा वर्णित करते हैं। अपने लिए रामनाम लेने वाली बहू के रूपक की भी वे योजना करते हैं जहाँ सास के रूप मे है निन्दा करने वाली दुनिया, जो देखती ही रह जाती है और नरसिंह-बहू वैकुण्ठ की ओर प्रस्थान कर जाती है।[४] समग्र कृष्णलीला के लिए भी वे एक दार्शनिक रूपक प्रस्तुत करते है। सर्व देवता गोप हैं, देवियाँ गोपियाँ हैं, ऋषिपत्नियाँ और ऋषि वेल और वृक्ष हैं, भक्ति राधिका है, मुक्ति यशोदा है, वेद वसुदेवजी हैं, व्रज वैकुण्ठ है, गायें वेद की ऋचाएँ है, ब्रह्मा लकडी है, शिवजी वेणु हैं इत्यादि।[५]

---

१ 'चालो जोवा जइए गोकुलमा, गुणवत आवो मोरे,
जादव कुले वसुदेवे वाव्यो, फूट्यो नदने घेर अकोरे।
पय पान जशोदाजीए सींच्यु, ते आवो सफ्ले फलियो।
सोल सहस्र कोकिला कलेवर, त्रिभोवन छाय धरी रहियो।"
— इ० स० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४६७, पद ५।

२ "श्री गोकुलमां आवो मोर्यो रे जोवा जइये रे,
गुणवंत ने अति नीचो रे।
श्री नदानदजीए सुकृत वाव्यो, जशोदाजीए सींच्यो रे।
साख रे पत्रनो पार ना लावे, चौद भुवन वींटीयो रे।
शिव सनकादिक परवो बैठा, ते तो वेद न जाये वर्ण्यो रे।
— वही, पृष्ठ ४२८, पद ५३७।

३ "सतो हमे रे वेपारिया श्री रामनामना।",—वही पृष्ठ ४७४, पद १३।

४ "सासू बेठा टगमग जुए, वहू ते वैकुठ चाली रे।"
— के० का० शास्त्री, 'नरसिंह महता कृत हार समेना पद अने
हारमाला', पृष्ठ ८७, पद १।

५ "अमर आहीर, अरधाग गोपागना, वचवेली सर्वे ऋषिराणी,
भक्ति ते राधिका, मुक्ति जशोमति, व्रज वैकुठ ते वेदवाणी।
निगम वसुदेवजी, गाय गोपी ऋचा, देवकी ब्रह्मविचार कहावे,
ब्रह्मा कर लाकडी, वेणु महादेवजी, पच वदन करी गान गावे।"
— इ० स० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४८३, पद ३५।

सूरदास ने अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग अपने पदों में पर्याप्त रूप में किया है। प्रभाव की वृद्धि और चमत्कार के सृजन के लिए ही इस अलंकार का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि सूर ने कहीं-कहीं इस अलंकार का अस्वाभाविक ढंग से भी प्रयोग किया है तथापि स्वाभाविकता की प्रायः रक्षा की गई है।

'सखी री सुन्दरता कौ रंग।
छिन छिन माँहि परति छवि औरें, कमल नयन के अंग।
सूरदास कछु कहत न आवै, भई गिरा अति पंग।'[1]
'इन नैनन के नीर सखी री सेज भई घर नाउ।
चाहति हौ ताही पै चढ़िकै हरिजू कै ढिग जाउ।'[2]
'अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीडत ता पर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।'[3]
'सखि कर धनु लै चंदहि मारु।.........
उठि हरबराइ जाइ मन्दिर चढ़ि, ससि सनमुख दरपन बिस्तारि।
ऐसी भाँति बुलाइ मुकुट मैं, अति बल खंड-खंड करि डारि।'[4]

नरसिंह मेहता ने भी अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग अवश्य किया है, किंतु सूर के समान वे कल्पना के उच्च उड्डयन में उत्साह नहीं दिखलाते। कहीं वे कहते हैं कि नेत्रों के अश्रु पोंछते-पोंछते गोपियों की पलकें झड़ गईं।[5] *प्रतीक्षा करते-करते* गोपियों की आँखें फूट गईं।[6] गोविन्द के मथुरागमन के पूर्व की रात्रि को जागती रहने वाली राधा मध्यरात्रि में ही कृष्णचरित्र के प्रभाती गाने लगी तो पशु-पक्षी जाग गए, जलचरों के जागने से स्थिर यमुना चंचल हो उठी, सूर्यदेवता दौड़ आए तथा कमल खिल उठे।[7] *नरसिंह मेहता ने सूरदास की तुलना में अतिशयोक्ति अलंकार*

१　'सूरसागर', पृष्ठ ४८७, पद १२५८।
२　"　पृष्ठ १३७२, पद ३८६३।
३　"　पृष्ठ ६६६, पद २७२८।
४　"　पृष्ठ १३६५, पद ३७६१।
५　"पापणीओ खरी गई छे रे, आसुडा लोहीने।'
　　　— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
　　　पृष्ठ ४२३, पद ३५१।
६　"..... ...फूटी जोइ जोइ आखडी रे।"— वही, पृष्ठ २५५, पद ६५।
७　"आ विधे कृष्ण चरित्रना, गाय मधराते प्रभात,
　　...... . ...
　　जागतां मार्यां उठे पंखीडा, राधास्वरनी शी वात।

का प्रयोग कम किया है। इसका प्रयोग इन्होंने सहज रूप से किया है, कहीं भी वे अधिक ऊहात्मक कल्पनाओं का आश्रय नहीं लेते हैं, जैसा कहीं कहीं हम सूर की अतिशयोक्तियों में देखते हैं।

उत्प्रेक्षा सूरदास का सबसे प्रिय अलंकार है। सैकड़ों बार वे इस अलंकार का अद्भुत स्वाभाविक एवं हृदयस्पर्शी ढंग से प्रयोग करके हमें प्रभावित करते हैं।

'सूरदास मनु चली सुरसरी, श्री गुपाल सागर सुख संगा।'[1]

यहाँ पवित्र प्रेम की प्रतिमूर्ति राधा गंगा जी हैं, जो अनंत सौंदर्य के सागर कृष्ण से मिलने चली हैं। कवि के दिव्य शृंगार वर्णन की उदात्त भावना उनके मन में कैसा पुनीत चित्र अंकित कराके उसे कैसे अलौकिक रूप में अभिव्यक्त कराती है यह देखने योग्य है।

'लपटे अंग सो सब अंग।
सुरसरी मनु कियो संगम, तरनि-तनया संग।'[2]

राधा-कृष्ण के उदात्त संभोग वर्णन को गंगा और यमुना के पवित्र संगम के समान बतलाकर, सूर ने अलौकिकत्व की रक्षा की है। इससे संभोग शृंगार की मलिनता धुल जाती है और वह दृश्य एक पुनीत एवं दिव्य चित्र के रूप में हृदय पर अंकित हो जाता है।

'अरुन असित सित झलक पलक प्रति को बरने उपमाय।
मनो सरसुति गंग जमुन मिलि आगम कीन्हो आय।'[3]

यहाँ कृष्ण के नेत्रों के श्वेत, श्याम तथा लाल रंग के लिए त्रिवेणी संगम की उत्प्रेक्षा अत्यन्त अलौकिक एवं परम पवित्र चित्र प्रस्तुत करती है।

'अधर अरुन अनूप नासा निरखि जन सुखदाइ।
मनो सुकफल बिंब कारन लेन बैठ्यो आइ।'[4]

वृंदावन ना विहंगम विलासिया, नित कृष्ण सुणता चरित्र
ते शब्द सुणी केम शांत रेहे, थयेगा अंग सर्व पवित्र।
पखी मात्र नहीं पुरा पण नागिया, सुणी स्वामिनी मुखवाण,
त्या स्थिर जमुना लागी डालवा, स्वर थयो जलचरने जाण।
स्वर सुणियो सूरज देवता, पाला थाय करवा प्रकाश।
स्वर सुणी रे कमल खीलिया

— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह महता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६०, पद ६।

१ 'सूरसागर', पृष्ठ १०७३, पद ३०७२।
२ " पृष्ठ ६७६, पद २७४६।
३ " पृष्ठ ८८१, पद २४३१।
४ " पृष्ठ ३४०, पद ८५२।

उत्प्रेक्षा अलकार की सूरदास के पदो मे प्रधानता है इसमे कोई सन्देह नहीं। नरसिंह मेहता मे उत्प्रेक्षा अलकार बहुत कम मिलता है। वे उपमा और रूपक का ही अधिक प्रयोग करते हैं। वे एक पद मे कहते है कि 'दोनो की जोडी को स्वर्ण औ मणि या चन्द्र और चन्द्रिका के समान जानो।'[1] प्रेम-मद से युक्त राधा पलाश के फूल तथा आरक्त वर्ण दुकूल से भी मानो अधिक लाल थी।[2] झूलने वाले राध और कृष्ण के नीलाम्बर और पीताम्बर ऐसे लगते हैं मानो मेघ और विद्युत हो।[3] भगवान के नाम मे विश्वास न रखकर गूढ ज्ञान की खोज मे रहने वाले मानो गगा की पवित्र लहरो का त्याग करके कूप खोदने वाले हैं।[4] राधा के मुख सौंदर्य का वर्णन करते हुए वे कहते है कि उसका मुख मानो चन्द्र है।[5] सूर ने भी इस प्रकार का वर्णन किया है। सूरदास के समान नरसिंह मेहता के पदो म उत्प्रेक्षा अलकार का अक्षय भडार नहीं मिलता।

प्रदीप अलकार का प्रयोग सूर और नरसिंह मे अन्य अलकारो की तुलना मे कम मिलता है।

'राधे तेरो वदन विराजत नीको।
जब तू इत उत चक बिलोकति होत निसापति फीको।'[6]
'उपमा हरि तन दखि लजानी।'[7]

---

१ "ए जोडी जुगल तणी जाणो कुदने मणि, चन्द्र अने चन्द्रिकावत दीसे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ६७, पद १०।

२ "पलाशनु फूल शु, रातु दुकूल शु, जाणो अधिक एथी मदे राती बाली।"
— इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ६७, पद ११।

३ "हींडोले हींचता वहाला सगे, श्याम साहेतो रे,
निलाम्बर पिताम्बर झलके, जाणे घन दामनी ओती रे।"
— वही, पृष्ठ ४५५, पद ४१।

४ "नाम तणो विश्वास न आवे, उडु उडु शोधे रे,
जान्हवी केरा तरग तजीने, तटमा जाणे कूप खादे रे।"
— वही, पृष्ठ ६१३, पद ११०।

५ . मुखडु ते जाणे मयक।"— वही, पृष्ठ १४३, पद ५।

६ 'सूरसागर', पृष्ठ ८४६, पद २३११।

७ " पृष्ठ ६६३, पद २३७५।

नरसिंह मेहता भी राधा के मुखचन्द्र को देख कर चन्द्र के निष्प्रभ होने का वर्णन करते हैं।[1]

व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग सूर मे कहीं-कहीं मिलता है, नरसिंह मे बिल्कुल नहीं मिलता। सूरदास कृष्ण के नेत्र सौंदर्य के लिए व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग इस प्रकार करते है —

'देखि री हरि के चचल नैन।
राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहि वै विकसित, ये विकसित दिनराति।'[2]

सन्देह अलंकार का प्रयोग सूर मे पर्याप्त मात्रा मे और सुन्दर, स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक रूप में हुआ है। सूर के सन्देह अलंकार के चमत्कार को निम्न उदाहरण मे देखिए —

'कधरकी धर-मेरु सखी री।
की वग-पगति की सुक सीपज, मोर कि पीड पखी री।
की सुरचाप किधौं वनमाला, तडित किधौं पटपीत।
किधौं मद गरजनि जलधर, की पग नुपुर रव नीत॥
की जलधर की स्याम सुभग तनु, यहै भोर तें सोचति।
सूर स्याम रस भरी राधिका, उमगि उमगि रस मोचति।'[3]

नरसिंह की गोपी कृष्ण के प्रेम को पा कर सन्देह करने लगती है कि यह सत्य है या स्वप्न है।[4]

अपह्नुति अलंकार का प्रयोग भी जितना सूर के पदों मे मिलता है उतना नरसिंह के पदों मे नहीं मिलता। सूर अपह्नुति अलंकार के द्वारा चमत्कारमूलक प्रभाव उत्पन्न करते है, यथा—

---

१ "मयक मन भाखो थयो, शशिवदनी, ते वार।'
— इ० स० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ १४३, पद ६।

२ 'सूरसागर', पृष्ठ ८८०, पद २४३१।

३ " पृष्ठ ६५४, पद २६७५।

४ "बाई महारे शोणु के साणु,
नदकुंवर शु रगभरे रमता, अतरगति राचु रे।"
— इ० स० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ३६५, पद ३५०।

'(इहि बन) मोर नही ए काम-बान ।'[१]
'चातक न होइ कोउ विरहिनी नारि ।'[२]
'राधिका हृदय तें धोख टारो ।
नन्द के लाल देखे प्रात-काल तें, मेघ नहिं स्याम-तनु-छवि विचारो ।
इन्द्रधनु नही वन-दाम बहु सुमन के, नही बग पाँति वर मोति-माला ।
सिखि बहु नही सिर पर मुकुट सीखड-पछ, तडित नहिं पीत-पट-छबि रसाला ।'[३]

नरसिंह मे अपह्नुति अलकार अपवादरूप कही-कही मिलता है, यथा—
भगवान को भुलाकर विषयो मे आसक्त रहने वाला व्यक्ति मनुष्य नही है, पाषाण है ।[४] जो जिह्वा भगवान का नाम नही जपती वह जिह्वा नही है जूती है ।[५]

उदाहरण अलकार का प्रयोग सूर और नरसिंह मे पर्याप्त मात्रा मे मिलता है । सूर ने उदाहरण अलकार का प्रयोग अत्यत हृदयस्पर्शी ढग से किया है ।

'मेरो मन पिय जीव बसत है पिय जिय मो मैं नाहिं ।
ज्यो चकोर चदा को निरखत इत उत द्रष्टि न जाइ ।'[६]

नरसिंह मेहता को उदाहरण अलकार विशेष प्रिय है । एक स्थान पर वे इसका प्रयोग करते हुए कहते है कि 'मेरु से भी बडा पाप भगवान् का नाम लेने से वैसे ही टल जाता है जैसे सिंह की गर्जना से मृग तथा रवि के प्रकाश से तिमिर टल जाता है ।'[७] दृष्टात अलकार का प्रयोग भी सूर और नरसिंह मे बराबर मिलता है। सूर उपमेय और उपमान रूप दो पक्तियो मे बिंब-प्रतिबिंब भाव का चित्रण करते हुए कहते हैं—

'नीलाम्बर स्यामल तनु की छवि तुम छवि पीत सुवास ।
घन भीतर दामिनी प्रकासत दामिनी घन चहुँ पास ।'[८]

---

१ 'सूरसागर', पृष्ठ १२८८, पद ३१४४ ।
२ " पृष्ठ १३६०, पद ३१५३ ।
३ " पृष्ठ ६५५, पद २६७६ ।
४ "रामनजी जेणे विषयरस गायो ते पुरुष नहि पण पाहाण ।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ १७, पद ४४।
५ "जीभलडी जपमाला न जपे तो, जीभलडी नहि खासडिया ।"
— वही, पृष्ठ ४१२, पद ५८ ।
६ 'सूरसागर', पृष्ठ ६६७, पद २७२२ ।
७ "मेरु थकी म्होटु होय प्रायश्चित, नारायणना नामे टले ।
केसरी पूरे ज्यम मृग ज त्रासे, रवि उगे ज्यम तिमिर टले ।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ ४७४, पद १२ ।
८ 'सूरसागर', पृष्ठ ६५७, पद २६८५ ।

नरसिंह मेहता दृष्टांत अलंकार का प्रयोग करने में विशेष उत्साह दिखाते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण के नित्यनूतन रंग का त्याग करके जिसका मन अन्य देवताओं पर मुग्ध होता है वह कोटि चिंतामणि तथा कामधेनु का त्याग करके महिषि के पुत्र का दूध दूहता है।'[1] इस प्रकार का वर्णन सूर के भी 'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै, वाले प्रसिद्ध पद में मिलता है। एक और पद में नरसिंह मेहता कहते हैं कि 'वृक्ष के तने को छोड़कर शाखाओं को कौन पकड़ेगा? लड्डू छोड़ कर घास कौन खाएगा? रंग-रंगीले छैल-छबीले कृष्ण को छोड़कर मुकुट-धारी राम की भक्ति कौन करेगा?' इन दोनों उदाहरणों में दो-दो पंक्तियों में उप-मेय और उपमान की अभिव्यक्ति बिंब-प्रतिबिंब भाव से हुई है।

अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग सूर में अधिक और नरसिंह में कम मिलता है। सूर के द्वारा प्रयुक्त अन्योक्ति अलंकार का एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

'रवि को तेज उलूक न जानै, तरनि सदा पूरन नभ ही री।
विष को कीट विष रुचि मानैं कहा सुधा रस ही री।
सूरदास तिल तेल सवादी, स्वाद कहा जाने घृत ही री।'[2]

नरसिंह भी अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग करते हुए एक पद में कहते है कि जटा धारण करने से जगदीश मिलते तो वटवृक्ष वैकुंठ जाता।'[3]

स्वभावोक्ति अलंकार सूर और नरसिंह में विशेष पाए जाते हैं। सूर द्वारा प्रयुक्त स्वभावोक्ति अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत है—

'भैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।
मो सौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ।'[4]

नरसिंह के एक पद में बालकृष्ण कहते हैं कि 'माँ मुझे वह चन्द्र खेलने के लिए ला दो और उसे ला कर मेरी जेब में रख दो।'[5]

---

१ पूर्ण पुरुषोत्तम, नवल रंग तजी, अन्य देवे जेनु मन मोहे,
कोटि चिंतामणि कामधेनु तजी, महिषिना पुत्रनुं दूध दोहे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४७६, पद १६।

२ 'सूरसागर', पृष्ठ ६१५, पद २५४२।

३ "जटा धरे जगदीश मले तो वड वैकुंठे चाले रे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ १८, पद ४८।

४ 'सूरसागर', पृष्ठ ३३३, पद ८३३।

५ "ओ पेलो चांदलियो, माइ मुने रमवाने आलो,
नहत्र लानी माता मारा गजवामा घालो।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४६२, पद १६।

व्याजोक्ति अलकार प्रयोग सूर ने कहीं-कहीं बडे मनोहर ढग से किया है।

'मैं जान्यौं यह घर अपनो है या धोखे मे आयौ।
देखत हों गोरस मे चींटी, काढन को घर नायौ।'[1]

नरसिंह की गोपियाँ कहती है कि 'चलो जल भरने के बहान यमुना तट पर जा कर कृष्ण को देखें।'[2]

पर्याय अलकार का प्रयोग करते हुए सूर गोपियो के मुख मे कहलवाते हैं —

'सुख मिटि गयौ हियौ दुख पूरन।'[3]

नरसिंह भी गोपियो के मुख से इसी प्रकार की बात इसी अलकार मे कहलवाते हैं। वे कहती हैं कि सुख के सिंधु बह गए और अब दुःख का समुद्र आया है।[4]

अप्रस्तुत प्रशसा, निदर्शना, विभावना, यथासख्य, समासोक्ति, समालकार, अर्थान्तरन्यास इत्यादि अनेक अलकारों का प्रयोग सूरदास के पदो मे तो मिलता है, किन्तु नरसिंह के पदो मे नहीं मिलता। सूरदास के पदो को पढते समय प्राय हर दूसरे तीसरे पद मे नए नए अलकारो का प्रयोग निश्चित रूप से देखने को मिलता है, जब कि नरसिंह म अलकारो के प्रयोग की प्रवृत्ति इतनी कम है कि कई पदो को पढने-पर एकाध अलकार मुश्किल से मिलता है। 'सूरसागर' नरसिंह मेहता के पदो की तुलना मे वास्तव म सागर है जिसमे असख्य भाव-रत्नो के साथ अनगिनत अलकार मुक्ता भी पाये जाते हैं। काव्य का कलापक्ष सूर मे भावपक्ष के समान ही सुन्दर और हृदयस्पर्शी है। जो अपने अत्यत निखरे हुए तथा अतीव कलात्मक रूप मे प्रस्तुत हुआ है। सूर अपने इसी भावपक्ष और कलापक्ष के सतुलित समन्वय के आधार पर उच्च कोटि की भावसृष्टि करते हैं और साहित्यजगत मे सदैव अमर रहने वाले भावचित्र उपस्थित करते हैं।

नरसिंह के पदो म न मिलने वाले अलकारो के कुछ उदाहरणो को देखा जाय —

समासोक्ति—'ए कहा जानहि सभा राज की ए गुरुजन विप्रौ न जुहारे।'[5]

---

१ 'सूरसागर', पृष्ठ ३५४, पद ८९७।

२ "जल जमुना मसे आपणे बहेनी, चालो जोवा जइये।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य समह',
पृष्ठ २७१, पद २५।

३ 'सूरसागर', पृष्ठ ६६७, पद २०२३।

४ "सुखडाना सिंधु रे, सजनी वही गया रे, दु खना दरिया आव्या पूर।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य समह',
पृष्ठ ३१२, पद १६३।

५ 'सूरसागर', पृष्ठ १२७२, पद ३५८६।

अप्रस्तुत प्रशंसा—'तब तें इन सबहिन सचुपायौ।
जब तें हरि संदेस तुम्हारौ, सुनत तावरो आयौ।
फूले व्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरि खायौ।
खोले मृगनि चौक चरननि के, हुतौ जु जिय बिसरायौ।'[१]
यथासंख्य—'जैसे मीन कमल चातक कौ, ऐसे दिन गये बीति।
तरफत, जरत, पुकारत निसि-दिन, नाहिन न्हा कुछ नीति।'[२]
अर्थान्तरन्यास—'प्रीनि करि काहू सुख न लह्यौ।
प्रीनि पतंग करी पावक सौं, आपै प्रान दह्यौ।
अलि सुत प्रीति करी जलसुत सौं, संपुट माझ गह्यौ।
सारंग प्रीति करी जु नाद सो, सन्मुख बान सह्यौ।'[३]
मुद्रालंकार—'कत मो सुमन सा लपटात।
समुझि मधुकर परत नाहीं, मोहि तोरी बात।
हेम जूही है न जा संग, रहै दिन पस्यात।
कुमुदिनी संग जाहु करके, केसरी को गात।
सेवती संताप दाता, तुमैं सब दिन होत।
केतकी के अंग संगी, रंग बदलत जोत।'[४]
विभावना—'बिनु पावस पावस करि राखें, देखत हौ विदमाने।[५]
'मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत पाहन, विफल वृच्छ फले।'[६]
निदर्शना—'बिनु परवहि उपराग आजु हरि तुम है चलन कह्या।'[७]
इसमें निदर्शना के साथ 'बिना पर्व के ग्रहण लगने' में विभावना अलंकार भी है। इस प्रकार उभयालंकार प्रयोग सूर में स्थान-स्थान पर मिलता है।
समालंकार—'इत लोभी उत रूप परम निधि, कोउ न रहत मिति मानि।'[८]
सूरदास ने सादृश्यमूलक अप्रस्तुत योजना में प्राय परम्परा का अनुसरण किया

---

१ 'सूरसागर', पृष्ठ १६३८, पद ४७५१।
२ " पृष्ठ १५४३, पद ४४५६।
३ " पृष्ठ १३७६, पद ३६०६।
४ 'साहित्यलहरी', पद ७१।
५ 'सूरसागर', पृष्ठ १४६२, पद ४१६५।
६ " पृष्ठ ६२८, पद १६८६।
७ " पृष्ठ १२७७, पद ३६०४।
८ " पृष्ठ ८६५, पद २४७०।

है। नरसिंह भी परम्परागत चले आने वाले अलकारो से प्रभावित हैं। इसीलिए दोनो के अलकार प्रयोग मे कही-कही कल्पना का साम्य दृष्टिगोचर होता है। परपरागत होते हुए भी उनका यथास्थान हृदयस्पर्शी ढग से प्रयोग करने की सूर की शैली विशिष्ट और मौलिक है। मौलिक कल्पनाओ का भी सूर मे नरसिंह की तुलना मे अक्षय भण्डार मिलता है। नरसिंह ने भी अलकारो का प्रयोग ही कम किया है, तब भी कही-कही वे अपनी मौलिक कल्पनाशक्ति का परिचय बराबर देते हैं। दोनो कवियो मे अलकारो का प्रयोग रसोत्कर्ष मे सहायक सिद्ध होता है, बाधक नही। सूर कही-कही अलकारो का प्रयोग चमत्कार उत्पन्न करने के लिए भी करते हैं, विशेषत 'साहित्यलहरी' के दृष्टकूट पदो मे, जो वास्तव मे चमत्कारप्रधान शैली मे ही लिखे गए हैं। ऐसे स्थानो पर कही-कही कल्पना की अतिरजितता रसोत्कर्ष मे सहायक नही होती। ऐसे स्थल सूर मे बहुत कम हैं जहां कल्पना और अलकार रसोत्कर्ष मे बाधक सिद्ध हुए हो। नरसिंह ने तो अलकारो का प्रयोग ही बहुत कम किया है और वह अलकार प्रयोग स्वाभाविक रूप मे हुआ है, रसोत्कर्ष मे बाधकरूप मे नही। अप्रतिम अभिव्यजना कौशल, भावसृष्टि के भाव-चित्रो को चित्रित करने का अद्भुत शिल्प-विधान, कल्पना के अक्षय भडार सदृश अद्भुत अलकार प्रयोग आदि की दृष्टि से सूरदास नरसिंह मेहता की तुलना मे श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं इसमे कोई सन्देह नही। सूरदास मे कलापक्ष भी भावपक्ष के समान ही मनोहर, हृदयस्पर्शी तथा अद्भुत रूप मे प्रस्तुत हुआ है। भावपक्ष के सौंदर्य तथा कलापक्ष के निखार का जो सरस सम्मिश्रण सूर मे मिलता है, वह नरसिंह मे नही मिलता। कृष्ण-भक्त नरसिंह अपनी भावुकता मे विभोर हो कर गाते चले जाते हैं, काव्यकला के सूक्ष्म शिल्पविधानो के सम्बन्ध मे उन्हे सोचने तक का ख्याल नही है, अवकाश नही है। अनायास ही जो काव्यकला उनके दिव्य एव मधुर पदो मे आ गई है, वह आ गई है, विशेष के लिए उनका हृदय सचेष्ट नही है। परन्तु सूर तो काव्यकला के मर्मज्ञ थे, काव्य परम्परा से परिचित थे, नवोन्मेषशालिनी कल्पनाओ के स्वय सागर थे, अतएव भाव-प्रवणता के साथ काव्य-कला का भी वे पूर्ण और सफल निर्वाह कर सके।

अध्याय १०

सूरदास और नरसिंह मेहता का प्रकृतिचित्रण

सूरदास और नरसिंह मेहता ने अपना प्रकृति-प्रेम अनेक स्थानों पर प्राकृतिक सौंदर्य के रमणीय चित्र उपस्थित करके प्रकट किया है। प्रकृति की मनोहरता से कवि हो कर ये दोनों आकृष्ट न हों यह संभव ही कैसे हो सकता है ? अनंत सुन्दर कृष्ण की लीला का वर्णन करते-करते अनन्त मनोरम प्रकृति की लीला का, उसके क्रिया-कलापों का वर्णन ये कवि अनायास ही कर बैठते हैं। कृष्ण की लीलाएँ उन्मुक्त प्रकृति के प्रांगण में चित्रित की गई हैं। उन्मुक्त प्रेम की सुन्दर पृष्ठभूमि उन्मुक्त प्रकृति के प्रांगण के अतिरिक्त और क्या हो सकती थी ? गोपियों और राधा के हृदय में लहराने वाली विलोल स्नेह तरंगों के सदृश चंचल लहरों से युक्त सुन्दर यमुना का मनोहर तट, स्नेहशीलता प्रदान करने वाले करील कुंजों की सघन छाया, प्रेम की नाना भावनाओं से आच्छादित हृदय के समान पुष्पों से आच्छादित कदंब के वृक्ष और आलंबन कृष्ण के आलिंगन सुख के लिए प्रेरणा देने वाली वृक्षों से लिपटी हुई लताएँ, पवित्र प्रेम की प्रतीक सी शरत्पूर्णिमा की ज्योत्स्ना, नित्यनूतन प्रेम के प्रतीक वसंत की नूतन सुषमा, प्रेम के परिमल का प्रसार करने वाले पुष्प, स्नेह को सरसाने

नित्य सुन्दर प्रकृति के साथ अनन्त सुन्दर पुरुषोत्तम की लीलाएँ दिखलाने लगें तो उन लीलाओं का और उस प्रकृति के लावण्य का कहना ही क्या ? नरसिंह ने व्रज की मनोहरता और व्रज में रहने वाले स्त्री-पुरुषों तथा पशु-पक्षियों की धन्यता के साथ अपनी धन्यता का भी वर्णन किया है। वे कहते हैं कि गोकुल-ग्राम, गोकुल की गलियाँ, गोकुल की गायें, गोकुल की गोपियाँ, गोकुल के मोर, गोकुल की यमुना का जल, यमुना के पुलिन, यमुना के पुलिन की रेत—ये सब धन्य हैं। नरसिंह भी धन्य हैं और वह भगवान के चरणों के सान्निध्य में रहना चाहता है।[१]

व्रज की मनोरम प्रकृति के प्रफुल्ल वातावरण में मन को प्रमुदित करने वाले मनोहर कृष्ण के सामीप्य से सभी धन्यता का अनुभव करते हैं, ऐसा इन दोनों कवियों का वर्णन पढ़कर भावुक पाठक भी धन्यता का ही अनुभव करते हैं।

सूरदास और नरसिंह मेहता ने वर्ण्य विषय के परिवेश से बाहर जा कर पृथक रूप से तथा स्वतंत्र रूप में प्रकृति का वर्णन स्थान-स्थान पर किया है। प्रकृति की रमणीयता अपने सहज सुन्दर रूप में ऐसे स्थानों पर अभिव्यक्त हुई है। इसी स्वाभाविकता के कारण ऐसा प्रकृति-सौंदर्य वर्णन हृदयस्पर्शी प्रतीत होता है। रात्रि की अन्धकारमय नीरवता के पश्चात् उदित होने वाले प्रकाशपूर्ण कलरवमय प्रभात का वर्णन इन दोनों कवियों ने किया है। सूर प्रभात का मनोहर दृश्य चित्रित करते हुए कहते हैं कि 'कुक्कुट बोलने लगे, शीतल पवन बहने लगा, रात्रि का अँधेरा दूर होने लगा, प्राची दिशा में पौ फटने पर अरुणिम सूर्य किरणों ने आकाश को उजाले से भर दिया, चन्द्र और तारे निष्प्रभ हो गए, कमल विकसित हुए, गायें चरने के लिए वनों की ओर चलीं तथा ब्राह्मण हाथ में पैंती बाँध कर नित्यकर्म में प्रवृत्त हो गए।'[२]

१　"धन्य धन्य गोकुलायु गाम रे, मारे वाले कर्यो विश्राम रे।
धन्य धन्य जशोदा माडी रे, हरिने हालेरा गाय दाडी रे।
धन्य धन्य गोकुलयानी गलाओ, मारो वालो काढे नित्य हटीओ रे।
धन्य धन्य गोकुलयानी गायो रे, मारो वाला चरावाने जाय रे।
धन्य धन्य गोकुलीयानी गोपी रे　. . .. .
धन्य धन्य गोकुलीयाना मोर रे, मसुर्नो मुगट बन्यो रंगचोल रे।
धन्य धन्य जमनाजी ना नार रे, मारो वालो परवाले शरीर रे।
धन्य धन्य जमनाजीना घाट रे, मारो वालो वाचे प्रेम पाठ रे।
धन्य धन्य जमनाजीनी रेती रे, हरिने चरणकमल रोज रेती रे।
धन्य धन्य नरसैंयो दास रे, मने राखो चरणनी पाम रे।"
— इ० सू० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य समह',
पृष्ठ ५२४, पद ६१।

२　"बोले तमचुर, चारयौ जाम को गजर मारयौ, पौन भयौ
सीतल, तमि तं तमता गई।

एक और पद मे प्रभात का चित्र खीचते हुए सूरदास 'चिडियो के चहचहाने का, रात भर वियुक्त रहने वाले चक्रवाक-चक्रवाकी मे मिलन का तथा तारो के छिपने, तम के घटने एव तमचुर के बोलने का वर्णन करते हैं।' ये सारे वर्णन निरलकृत भाषा मे सहज रूप से किए गए हैं यह एक विशेषता है। प्रभात के, सूर द्वारा प्रस्तुत होने वाले ये चित्र जितने सुन्दर हैं, उतने ही स्वाभाविक भी हैं और उससे भी अधिक हृदयस्पर्शी।

नरसिंह मेहता ने भी प्रभात के प्रफुल्ल सौंदर्य के चित्र स्वतन्त्र रूप मे खीचे हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'प्रात काल हुआ और चन्द्र अस्त हो गया। यह देखो सूर्य पूर्व दिशा मे उदित हुआ। अब तारो का तेज क्षीण होने लगा है। ललित स्वरो मे ललित रमणियाँ ललित राग अलापती हैं। घर-घर दही के मथने की ध्वनि सुनाई देती है। कमल विकसित हुए है, भौंरे उड गए हैं और कुक्कुट बोलने लगे हैं।'[२] एक और पद मे वे प्रभात का विस्तृत वर्णन करते हुए कहते है कि 'प्रभात होने पर पक्षी जागे, पपीहे पियु-पियु करने लगे तथा अन्य पक्षी अपनी बोलियाँ बोलने लगे। मोर केकारव के साथ सुन्दर कला करने लगा तथा मोरनी अश्रुकणो को चुनने लगी। पलाश पर घुक बोलने लगे, कोकिला अपने बारीक स्वर मे कुहू करने लगी,

---

प्राची अरुनानी, भानु किरन उज्यारी नभ छाइ,
उडुगण चन्द्रमा मलीनता लई।
मुकुले कमल, वच्छ बधन विछोहो ग्वाल, चरैं चली गाइ।
द्विज पैंती करकौ सइ।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ६४८, पद २६५६।

१ "चिरई चुहचुहानीं, चदकी ज्योति परानी, रजनी बिहानीं
प्राची पियरा प्रात की।
तारिका दुरानी, तम घट्यौ, तमचुर बोले, स्रवन भनक परी
ललित के तान की।
भृग मिले भारजा, बिछुरी जोरी कोक मिले, उतरा पनच अब
काम के कमान की।"
—'सूरसागर', पृष्ठ ६४६, पद २६५७।

२ "पात हवो.. इदु गयो आथमा .. ..
आ जुवो अरुण, पुरव दिसा उगियो, तेज तारातणा चीण दीसे,

ललित स्वर सुंदरी, ललित अलापती, घेर घेर दधि मथन घोष थाये,

कमल विकासीयों, मधुप मध्य उडी गया, कुरकुडा बोले. ."
—इ० सु० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ३१', पद १५७।

चक्रवाक पक्षी वियोग के टलने पर प्रसन्नता से चहचहाने लगे तथा शीतल और सुगन्धित वायु बहने लगी।"[1] नरसिंह प्रातःकाल का चित्र पक्षियों के कलरव के बिना अपूर्ण समझते हैं। उनकी वसन्त की भोर भी विहगों के शोर से मुखरित ही रहती है।[2] पक्षियों का नरसिंह को विशेष आकर्षण है, क्योंकि रात्रि की भयानक नीरवता का अन्त इनकी मधुर-मधुर बोलियों से ही होता है, जिससे सृष्टि सजीव हो उठती है। नरसिंह का प्रभातवर्णन सूर के प्रभातवर्णन के समान ही अलंकाररहित भाषा में प्रकृत ढंग से हुआ है जो स्वाभाविकता, सजीवता एवं हृदयस्पर्शिता में सूर के प्रभात-चित्रों से कम नहीं है।

यौवन और आनन्द का सन्देशा ले कर आने वाले ऋतुराज वसन्त का सौंदर्य वर्णन सूरदास और नरसिंह मेहता ने स्वतन्त्र रूप में बड़े मनोमुग्धकारी ढङ्ग से किया है। नरसिंह मेहता तो वसन्तऋतु की रमणीयता का वर्णन बारबार करने पर भी संतुष्ट नहीं होते हैं। सूरदास के वसन्तवर्णन के एक अंश को देखा जाय। एक पद में वे कहते हैं कि 'सरिता की शीतल लहरें मन्द गति से बहती हैं। सूर्य उत्तर दिशा में आया है। अति रसीली तान छेड़ कर कोकिला ने शब्द किया और विरहिणी के विरह को जगाया। चारों ओर टेसू के लाल लाल फूल खिलने पर ब्रज के बारहों वन लाल-लाल दिखाई देने लगे। आम्रवृक्ष मंजरित होने लगे।[3] पुष्पित लताएँ वृक्षों से लिपटने लगीं और भौंरे परिमल में सब कुछ भूल गए।'[3] मे कोयल, मोर, हंस आदि के शब्द का वर्णन तथा कुसुमित वन के विविध पुष्पों का परिमल बहने का वर्णन वे बार-बार

---

१ "प्रभात जाणी पक्षीडां रे उठ्या
पपैया तो पियु पियु भखे
मोर टौकार कला करे सुन्दर, आम्र बहे टेल कीधो रे,
पलाश पर रूडा पोपट बलै, कायलडी टउके स्वर भीणे रे।
.. ..
शीतल मन्द पवन सुवासित डोले रे।"

— इ० सू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ३११, पद १५७।

२ "वसंतना भोर मा, विहगम शोर मा "
— वही, पृष्ठ ६४, पद ३।

३ "सरिता सीतल बहति मंद गति, रवि उत्तर दिसि आयौ।
अति रस-भरी को कला बोली, बिरहिनी बिरह जगायौ।
द्वादस बन रतनारे देखियत, चहु दिसि टेसू फूले।
मौरे अंबुआ अरू द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले।"
— सूरसागर', पृष्ठ १२०८, पद ३४७२।

करते हैं।[1] वसन्त का ऐसा सुन्दर और सहज वर्णन सूर ने बहुत कम किया है। अलंकार रूप में प्रकृतिवर्णन करते हुए वे वसन्त के सौन्दर्य का चित्रण अधिक प्रभावोत्पादक एवं मनोरम ढङ्ग से करते हैं, जिसके उदाहरण आगे देखेंगे।

नरसिंह का वसन्त वर्णन सूर की अपेक्षा कुछ विस्तृत है। वे अलंकार रूप में वसन्त का वर्णन करने में विशेष उत्साह नहीं दिखलाते क्योंकि अलंकार-प्रयोग की प्रवृत्ति ही उनमें बहुत कम है। वसन्त के सहज सुन्दर रूप को इनके चित्र बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। इस प्रकार के कुछ अंशों को देखा जाय। "अत्यन्त सुन्दर ऋतु आई है। यह वसन्त का सुन्दर महीना है। सुन्दर वन में टेसू के पुष्प खिले हैं। अत्यन्त सुन्दर वन का इस ऋतु में प्रसार हो रहा है। यमुना का तट भी अत्यन्त सुन्दर है।'[2] "आम्रवृक्ष मंजरित होने लगे, कदम्ब पर कोकिलाओं ने वसंत राग को अलापा। पुष्प-पुष्प को भौंरा छलने लगा।'[3] "शीतल सुगंधित वायु वातावरण को प्रफुल्लित कर रही है। चातक और मोर बोलते हैं।"[4] "केशर के वर्ण के टेसू खिले हैं और गेहूँ तथा चने की फसल हरी-हरी दिखाई देती है।"[5] वसन्त के आने पर वन का रूप बदल गया। मंजरित होनेवाले आम्रवृक्षों की छाँव घनी हुई। उनकी कोंपलों का रङ्ग अत्यंत लाल है। मदमस्त कोकिला कहती है—सब आनन्द करो। टेसू कुमकुम के हो गए। भौंरे सुख की तलाश में भ्रमण करने लगे।[6] नरसिंह मेहता का प्रकृति का पर्यवेक्षण भी निश्चित ही बड़ा सूक्ष्म है। लाल-लाल कोंपलों और हरी गेहूँ तथा चने की

---

१ (अ) "कूजत कोकिल कल हंस मोर।' — 'सूरसागर', पृष्ठ १२०६, पद ३४७४।
(ब) "अति बिबिध कुसुम परिमल बहाइ। बन सुवा सहित पंचम सुहाइ।
केकी बोलत पिक-सुर-सनेहि।"
— 'सूरसागर,', पृष्ठ १२०६, पद ३४७३।

२ "आ ऋतु रूडी रूडी महारा वहाला, रूडो ते मास वसंत,
रूडा वन मोहे केशु ते फुल्या
अति रूडुं वृंदावन पसरतुं, रूडुं जमुनानुं तीर।"
— इ० मु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ २२२, पद ४।

३ "महोरीया अंब, कदंब कोकिल लवे वसंत,
कुसुम कुसुम रह्यो भ्रमर छली।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह महता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ २२३, पद ६।

४ "शीतल मंद सुगंध बेके, त्यां बोले चातक मोर।" —वही, पृष्ठ २२४, पद १।

५ "केशर वरणा केशु रे फुल्या, लीला दीसे छे घउं ने चणा।"
— वही, पृष्ठ २४६, पद ७३।

६ "वसंत ऋतु अति रूडि आवी, रूप फर्यु वननुं,

आंबामोर घटा थइ घेरी, कुंपल अति राती,

पगनी का वर्णन इसका प्रमाण है। वसन्त के आने पर वन में रूप का ही बदल जाने का वर्णन भी नूतन और मनोहर रूप धारण किए हुए वन का कितना रम्य चित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित करता है। ईश्वर के आनन्दरूप का गान करने वाले कवि नरसिंह मदमस्त कोयल के मीठे स्वरों के माध्यम से स्वयं भी आनन्द का सन्देशा सुनाते हैं।

हृदय में स्नेह के भाव प्रवाहित करने वाली वर्षा ऋतु का वर्णन भी सूर और नरसिंह के पदों में स्वतन्त्र रूप में मिलता है। सूर वर्षा का इस प्रकार वर्णन करते हैं कि "बादल घिर आए हैं। काली घनघोर घटाओं को पवन अत्यंत तेज गति से चलाता है। चारों ओर बिजली चमक रही है।"[1] एक और पद में वर्षा-वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि "काली घटाएँ घिर आई और आकाश में गर्जना होने लगी। पवन झकझोर गति से चलने लगा और चारों ओर बिजली चमक रही है।'[2] एक और पद में वे कहते हैं कि "जल से भरे हुए काले, सफेद और धूमिल बादल उमड़ घुमड़ कर बरसने के लिए घिर आये। बिजली बार-बार चमकने लगी।'[3] इन सब प्रसंगों में वर्षा का अलंकारों का आश्रय लिये बिना सरल शैली में सहज ढंग से किया गया वर्णन एक बहुत बड़ी ध्यान देने योग्य विशेषता है।

नरसिंह मेहता भी वर्षा का वर्णन इसी प्रकार की सीधी सादी निरलंकृत भाषा और रसमय शैली में स्वाभाविक ढङ्ग से करते हैं। वे कहते हैं कि "रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही है। दादुर जोर से टरनि की ध्वनि करते हैं। आकाश में बादल घिरे रहते हैं और बिजलियाँ चमकती रहती है।"[4] यहाँ वे दादुर के टरनि के लिए भी 'टहुके' शब्द का प्रयोग करते हैं जो मोर और कोयल के रव के लिए ही

करो करो कल्लोल कहे छे कोयलडी मदमाती।
केसुना थया कुमकुम वरणा, मधुकर सुख साधे।" — वही, पृष्ठ ६०१, पद ७८।

१ "माधौ महामेघ घिरि आयौ।
कारी घटा सुधूम देखियति, अति गति पवन चलायौ।
"चारों दिसा चितै किन देखहु, दामिनि कौंधा लायौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ५६२, पद १४८६।

२ "गगन घहराइ जुरी घटा कारी।
पवन झकझोर, चपला-चमक चहु ओर।"— वही, पृष्ठ ५००, पद १३०२।

३ "बादर बहु उमड़ि घुमड़ि, बरषन ब्रज आए चढ़ि कारे धौरे
धूमरे, धारे अतिहिं जल।
चपला अति चमचमाति ।"— वही, पृष्ठ ५५८, पद १४७१।

४ "झरमरियो आ मद्दुलो वरसे, दादुर जोरे टहुके,
मेघ ने वीज झबुके रे।"
—इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य समद', पृष्ठ २६७, पद ११२।

प्राय प्रयुक्त होता है। प्रकृति प्रेमी नरसिंह दादुर के शब्द मे भी कोयल और मोर के शब्द की ही मिठास का अनुभव करते हैं यह एक बहुत बडी बात है। रिमझिम फुहार बरसाने वाले सावन मास को वे सुहावना महीना कहते हैं।[1] "वर्षा मे दादुर, मोर, कोयल तथा पपीहे मीठे स्वर मे बोलते हैं।"[2] "बादलो से घिरा हुआ आकाश गंभीर गर्जन करता है और सुहाने मोर तथा कोयल मधुर स्वर मे बोलते हैं।"[3] "सावन का महीना सदा सुखदायी होता है। रिमझिम-रिमझिम वर्षा होती है। दादुर, मोर और पपीहे बोलते हैं।"[4] "मेघ की घटाएँ बीच-बीच मे बिजली के चमकने से अत्यन्त शोभा पाती हैं।'[5] सावन के महीने को सुहाना और सुखदायी कहना कवि के वर्षा प्रेम का द्योतक है। पक्षियो के प्रति इनका जो प्रेम है वह प्रभातवर्णन तथा वसतवर्णन के समान यहाँ भी प्रकट होता है। ये सारे वर्णन सीधी सादी भाषा मे किए जाने पर भी इतिवृत्तात्मक नही हुए हैं यह भी एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है, जो कवि के काव्यकौशल की परिचायक है।

सूरदास के पदो मे कही-कही प्रकृति के भयानक स्वरूप का वर्णन भी मिलता है। वनो के सौंदर्य को अग्निज्वाला मे परिवर्तित करने वाली दावाग्नि का वे बडा ही यथार्थ चित्रण करते हैं। वे कहते हैं कि "दावाग्नि की ज्वालाएँ सभी दिशाओ मे तथा आकाश तक फैलने लगी। वन के वन जलने लगे, वृक्ष गिरने लग, जिनके गिरने की ध्वनि से धरती के तडकने की ध्वनि का आभास होने लगा। जले हुए तरु लता लटक से जाते हैं, बाँस फूटते हैं और कांस कुस सब जलते हैं।'[6] एक और पद मे वे दावा-

---

१ "श्रावण मास सोहमणो ''

—इ० सू० देसाइ, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ४३८, पद १।

२ 'दादुर मोर बपैया बोले, मीठे स्वरे बोले कोयलडी।"

—वही, पृष्ठ ४४०, पद ३।

३ "बोले रे कोयल मोर सोहामणा रे, गाजे गाजे गगन घेरू गभी रे।"

—वही, पृष्ठ ४४१, पद ६।

४ "श्रावण मास सदा सुखकारी, झरमर बरसे मेह रे,
दादुर मोर बपैया बोले '' —वही, पृष्ठ ४५३, पद ३४।

५ "मेघनी घटा रे, गगनमा शोभती रे, बीच बीच चमके खणखण विज।"

—वही, पृष्ठ ४५४, पद ३८।

६ "ज्वाला देखि अकास बराबरि, दसहु दिसा कहु पार न पाइ।
झहरात बन पात, गिरत तरू, धरनी तरकि तराकि सुनाइ।

. . ..

लटकि जात जरि जरि द्रुम बेली, पटकत बांस, कास, कुस, ताल।"

—'सूरसागर', पृष्ठ ४७१, पद १२१२।

नल के भयंकर रूप का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि 'पृथ्वी के चारों ओर और आकाश में ऊपर तक फैलने वाला दावानल घोर शोर करता हुआ आया। बाँसों के वन के वन जलने लगे। कुश-काँस चरनि लगे और बाँस जल-जल कर उड़ने लगे। लता, वृक्ष, पुष्प ये सब के सब दावानल की लपटों में समाप्त हो गए। इस अग्नि की ज्वालाएँ अति भयानक हैं, क्रूर धुआँ कर रही हैं और बड़े-बड़े वृक्षों को भी पृथ्वी पर गिरा रही हैं।'[1] यहाँ सूर की भाषा और शैली भयानक रस के अनुरूप तथा अनुकूल अपने आप हो गई है। सूरदास प्रकृति के कोमल रूप का जितना मनोहर एवं हृदयस्पर्शी वर्णन कर सकते हैं, उतना ही प्रकृति के भयंकर रूप का भी प्रभावोत्पादक एवं सश्लिष्ट चित्रण कर सकते हैं। यह सूर की अपनी विशिष्टता है, जो नरसिंह में नहीं पाई जाती। नरसिंह प्रकृति के सुकुमार रूप के वर्णन में ही उत्साह दिखलाते हैं, प्रकृति के भयंकर रूप की ओर उनका ध्यान तक नहीं जाता। कृष्ण की ऐसी लीलाओं का उन्होंने विस्तृत वर्णन भी नहीं किया है, जहाँ उन्हें प्रकृति के ऐसे भयंकर रूप का वर्णन करने का अवसर मिलता है।

वर्षा के भी भयंकर रूप का चित्रण सूर ने 'गोवर्धन धारण' प्रसंग के अंतर्गत इसी प्रकार की शैली में किया है। वे वर्षा के भयानक रूप का चित्र खींचते हुए लिखते हैं—

"ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल,
चलत घहरात करि अंध काला।
.. ..
घटा घनघोर, घहरात, अररात, दररात, सररात
... .
तड़ित आघात तररात ·[2]

सूर ने शरत्पूर्णिमा की ज्योत्स्ना के सौंदर्य का वर्णन मानव क्रिया कलाप की पृष्ठभूमि तथा उद्दीपन के रूप में ही अधिक किया है। स्वतंत्र रूप में उसका वर्णन

---

१ "भहरात झहरात दवानल आयौ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अंदोर बन, धरनि अकास चहु पास छायौ।
बरत बन बाँस, थहरात कुसकास, जरि उड़त है बाँस अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, फूल फल चट-चटकि फटत, लटलटकि द्रुम द्रुम नवायौ।
अति अगिनि झार, भंभार धुंधार करि, उचटि अंगार झंझार छायौ।
बरत बन पात भहरात झहरात अररात तरु महा, धरनी गिरायौ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ४७७, पद १२१४।

२ 'सूरसागर', पृष्ठ ४५८, पद १४७३।

नहीं किया है। नरसिंह ने उद्दीपन के रूप मे भी किया है, स्वतंत्र रूप मे भी किया है। वे अमृत टपकाने वाली शरत्पूर्णिमा का वर्णन करते हुए लिखते है कि "शरत्पूर्णिमा की चाँदनी खिल रही है। वनस्पति प्रफुल्लित हो रही है। उसका परिमल बह रहा है।"[१] शरत्पूर्णिमा को गोपियाँ धन्य दिवस कहती हैं।"[२] "शरद ऋतु की रात्रि पूर्णचन्द्र के कारण अत्यन्त सुन्दर है।"[३] "चन्द्र का आज रूप ही कुछ निराला है। इससे यह सुन्दर रात भी सुहाती है।"[४] "आश्विन का सुन्दर महीना है और शरत्पूर्णिमा की सुन्दर रात है।"[५] "शरत्पूर्णिमा का चन्द्र अत्यन्त सुहाता है।"[६] "शरत्पूर्णिमा की सुन्दर रात है और नभ मे सुन्दर चन्द्र उदित हुआ है।"[७]

शरत्पूर्णिमा के चन्द्र को अलकृत रूप मे भी नरसिंह ने वर्णन किया है। प्रकृति का आलकारिक शैली मे वर्णन करने की प्रवृत्ति कम होते हुए भी नरसिंह मेहता शरत्पूर्णिमा के चन्द्र के कोटि कलाओ से युक्त हो कर प्रकाशित रूप मे उदित होने को सूर्य के उदित होने समान वर्णित करते हैं।[८] चन्द्र का सोलह कलाओ के स्थान पर शरत्पूर्णिमा का चन्द्र होने के कारण कोटि कलाओ से युक्त होने का तथा सूर्य के समान प्रतीत होने का नरसिंह का यह वर्णन बड़ा ही कल्पनात्मक है तथा कलात्मक है।

पीयूषवर्षिणी शरत्पूर्णिमा की ज्योत्स्ना मे कृष्ण तथा गोपियो के रासलीला खेलने का वर्णन करते हुए सूरदास शरत्पूर्णिमा का उद्दीपन के रूप मे बडा ही सुन्दर

---

१ "शरद चादनी खीली रही छे,
वनस्पति फूली फाली रही छे।
परिमल तेनो प्रसरे।" — इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ६००, पद ७६।

२ "धन धन दहाडो पुनेम केरो।" — वही, पृष्ठ ६००, पद ७४।

३ "शरद निशा शशी थी अति रूडी।" — वही, पृष्ठ ५३२, पद ११५।

४ "चादलियानो चटको रूडो, रूडी रातलडी शोहे रे।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह', पृष्ठ ५१०, पद ४२।

५ "सुदिर रात शरद पुनमनी रे, सुदीर आसो मास।"
— वही, पृष्ठ ५०१, पद ३७।

६ "शरद सोहामणो चादलो रे।" — वही, पृष्ठ १६४, पद ४।

७ "सुन्दर रात शरद पूनमनी, सुन्दर उदियो नभ में चंद।"
— वही, पृष्ठ १८५, पद ७७।

८ "कोटिकला त्यां प्रगट्यो शशीधर, जाणे दिनकर उग्यो रे।"
— वही, पृष्ठ २०३, पद १३४।

और हृदय को छूने वाला वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि "आज शरत्पूर्णिमा की रात बड़ी सुहानी लग रही है। अत्यन्त शोभा पा रही है। शीतल, सुगंधित सुखदायी वायु मंद-मंद गति से बहती हुई रोम-रोम को पुलकित कर रही है।"[1] "शरत्पूर्णिमा की रात बड़ी सुहाती है। वृन्दावन के कुंजों में विविध रंग के पुष्प प्रफुल्लित हुए हैं और जहाँ-तहाँ कोयलों का समूह कूजता रहता है।"[2] "शरद ऋतु की सुहानी रात आई है। सभी दिशाओं में वनस्पतियाँ प्रफुल्लित हो रही हैं। शरत्चन्द्र की ज्योत्स्ना में यमुना-कूल शोभित हो रहा है। वृक्षों से फूल बरस रहे हैं।"[3] शरत्पूर्णिमा का वर्णन सूर की अपेक्षा नरसिंह ने कुछ विशेष उत्साह के साथ किया है। उद्दीपन और अलंकारों के रूप में भी शरत्पूर्णिमा का वर्णन नरसिंह ने सूर से कुछ अधिक ही किया है। शरत्पूर्णिमा का उत्सव बड़े उल्लासोत्साह के साथ मनाने की गुजरात में चली आने वाली प्रथा से भी नरसिंह को शरत्पूर्णिमा का सुन्दर वर्णन करने के लिए प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिले हो यह संभव है। अलंकार रूप में शरत्पूर्णिमा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि "जैसी शरत्पूर्णिमा की रात सुन्दर है और जैसा उदित होने वाला चन्द्र सुन्दर है वैसी ही सुन्दर गोपियाँ कंचनमाला के समान हैं, और वैसे ही सुन्दर मरकत मणि के समान शोभा पाने वाले कृष्ण हैं।"[4] "जिस प्रकार शरत्पूर्णिमा का चन्द्र ज्योत्स्ना से घिरा हुआ है, वैसे ही कृष्ण गोपियों से वेष्टित हैं।"[5] "चंद्र अमृतरस से परिपूर्ण है और रात बड़ी रंगीली है" कह कर घर आए हुए कृष्ण के लिए पुष्पशय्या बिछानेवाली गोपी के वर्णन में भी शरत्पूर्णिमा की मादकता का

---

१ "आजु निसि सोभित सरद सुहाई।
सीतल मंद सुगंध पवन बहै, रोम रोम सुखदाई।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६५१, पद १७५६।

२ "सरद चांदनी रजनी सोहै, वृंदावन श्री कुंज।
प्रफुल्लित सुमन बिबि रंग, जहं तहं कूजत कोकिल पुंज।"
— वही, पृष्ठ ६७२, पद १७९१।

३ "सरद सुहाई आई राति। दहुं दिसि फूलि रही बन जाति।
... ...
ससि तें मंडित जमुना-कूल। बरषत बिटप सदा फल फूल।"
— वही, पृष्ठ ६६६, पद १७६८।

४ "सुंदर रात शरद पूनमनी, सुंदर उदियो नभ में चन्द,
सुंदर गोपी कंचनमाला, वच्चे मरकत मणि गोविंद।"
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १८५, पद ७७।

५ "ज्यम शशी गगनमां, वीटयो चांदणी, त्यम हरि वीटयो सकल गोपी।"
— वही, पृष्ठ १८७, पद ८३।

उद्दीपन के रूप मे सुन्दर वर्णन किया गया है ।[1]

प्राकृतिक दृश्यो को आलकारिक शैली मे वर्णित करने की कला मे सूर सिद्ध-हस्त हैं । प्रात काल मे दही बिलोने की ध्वनि से मेघध्वनि के भी लज्जित होने का वर्णन वे बडे सुन्दर ढग से करते हैं ।[2] प्रभात का भी आलकारिक वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि सूर्य के उदित होने पर रात्रि समाप्त हो गई और शशी, नक्षत्र तथा दीपक वैसे ही द्युतिहीन हो गए जैसे सन्तोषरूपी सूर्य के ज्ञानरूपी प्रकाश द्वारा काम-नाओं का भय रूपी तिमिर मानो दूर हो जाता है । पक्षियो का कलरव भी मानो वेद-रूपी वदीजन के ऋचा-रूप गान ही हैं । कमलो के खिलने पर उनके पाश से मुक्त होकर भौंरे वैसे ही प्रसन्न हो कर गुजार कर रहे हैं जैसे मानो पारिवारिक दुश्चि-ताओ से मुक्ति पाने वाला कोई मनुष्य ईश्वर की महिमा गा रहा हो ।[3] रूपक-गर्भित उत्प्रेक्षा अलकार द्वारा प्रभातकालीन दृश्यावली का चित्रण सूर ने यहाँ बडे प्रभावोत्पादक ढग से किया है ।

वसन्त की अद्भुत शोभा का वर्णन भी वे आलकारिक भाषा मे अनेक पदो मे करते हैं । एक पद मे रूपक अलकार द्वारा वसत के, मानिनी के पास मान छोडने के लिए पत्र भेजने का वर्णन किया गया है जिसमें कमल का पत्र कागज बना है, भ्रमर स्याही बना है, लेखनी काम का बाण है, मलयानिल दूत है और शुक-पिक इस पत्र

---

१ "वादलो अमीरसे भरियो, रेणा रगाली,
सेजलडी फूले समारू, घेर आव्या वनमाली ।"
— वही, पृष्ठ ६०३, पद ८६ ।

२ "घूमि रहीं जित तित दधि मथनी सुनत मेघधुनि लाजैरी ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ३०८, पद ७५७ ।

३ "उगत अरुन बिगन सर्वरी, ससांक किरनहीन,
दीपक सु मलीन, छीन-दुति समूह तारे ।
मनौ ज्ञान-धन प्रकास, बीते सब भवविलास,
आस त्रास तिमिर तोम-तरनि-तेज जारे ।
बोलत खग निकर मुखर, मधुर होइ प्रतीति सुनौ,
परम प्रान जीवन-धन मेरे तुम वारे ।
मनौ वेद बन्दीजन मुनि सूत-वृन्द मागध गन,
बिरद बदत जै जै जै जैति कैट भारे ।
बिकसत कमलावली, चले प्रपुज चचरीक,
गुजत कलकोमल धुनि त्यागि कजन्यारे ।
मानौ बैराग पाइ, सकल सोक-गृह बिहाइ,
प्रेममत्त फिरत भृत्य, गुनत गुन तिहारे ।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ३३०-३१, पद ८२३ ।

को पढ़कर सुनाने वाले हैं।[1] वसन्तवर्णन के अन्तर्गत सूरदास प्रकृति को मूर्तिमती नवयौवना सुन्दरी के रूप में भी इसी आलंकारिक शैली के माध्यम से चित्रित करते हैं।[2] नरसिंह में सूरदास का इस प्रकार का प्रकृति चित्रण-कौशल ढूँढने पर भी नहीं मिलता। कल्पनाओं का उड्डयन तथा अलंकारों का प्रयोग नरसिंह को उतना प्रिय नहीं है, जितना सूर को। सूर की शैली इस प्रकार के आलंकारिक प्रयोगों से सुन्दरतम प्रतीत होती है।

अलंकारों के रूप में प्रकृति का चित्रण सूरदास में अधिक मिलता है, नरसिंह में कम। चन्द्र, कमल, मेघ, दामिनी, सरिता आदि का उपमानों के रूप में सूर के पदों में स्थान स्थान पर वर्णन मिलता है। "अद्भुत एक अनूपम बाग" शीर्षक पद में रूपकातिशयोक्ति द्वारा प्रकृतिधाम वन का पूर्ण वर्णन किया गया है।[3] एक स्थान पर कृष्ण और मेघ की समता इस प्रकार वर्णित हुई है, जैसे समता के लिए दोनों में प्रतिस्पर्धा हो रही हो।[4] कहीं कृष्ण के राधा के वश में रहने की तुलना चातक,

---

१ "ऐसो पत्र पठायो बसत। तजहु मान मानिनी तुरत।
कागद नव दल अवनि पात। देति कमल मसि भवर सुगात।
लेखिनि कामबान के चाप। लिखि अनग ससि दीन्ही छाप।
मलयानिल पर पढ्यौ विचारि। बाचत सुक पिकसुनि सब नारि।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२०५, पद ३४६३।

२ "राधे जू आजु बन्यौ बसत।
मनहु मदन विनोद विहरत, नागरी-नवकत॥
मिलत सनमुख पग्ल-पाटल भरति मानिहि जुही।
बेलि प्रथम-समाज-कारन, मदिनी कच गुही॥
कलकी कुच-कलस-कचन, गरे कचुकी कसी।
मालती मद चलित लोचन, निरखि मुख मृदु हसी।
विरहव्याकुल मेदिनी कुल, भई बदन विकास।
पवन-परिमल सहचरा, पिक-गान हृदय हुलास॥
उत सखा चपक चतुर अति, कुद मनु रन माल।
मधुप मनि-माला मनोहर, सूर श्री गुपाल॥"
— वही, पृष्ठ १२०५, पद ३४६२।

३ "अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीडत, ता पर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कज पराग।
रूचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृग-मद काग।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६६६, पद २७२८।

४ "देखियत दोऊ धन उनए।

चकोर और चक्रवाक से की गई है, जो स्वाति, चन्द्र तथा सूर्य के वश मे है[1]। श्याम तथा श्यामा की विपरीत रति के लिए मेघ और दामिनी प्रतीक बन कर आते हैं[2]। पवित्र प्रेम के उद्दाम आवेग मे कृष्ण से मिलने के लिए दौड़ पड़ने वाली राधा की तुलना समुद्र से मिलने के लिए तेज गति से बहने वाली गंगा के साथ करने मे भी सूर ने प्रकृति के क्रियाकलाप का अलकार रूप मे सुन्दर वर्णन किया है[3]। अलकार रूप मे प्रस्तुत किये जाने वाले प्राकृतिक सौंदर्य के सैकड़ो चित्र सूर के पदो मे पग-पग पर मिलते हैं, जो सूर के प्रकृति-प्रेम के परिचायक हैं।

नरसिंह मेहता के पदो मे अलकार रूप मे मिलने वाला प्रकृति-चित्रण सूरदास के इस प्रकार के प्रकृति चित्रण की तुलना में निश्चित ही कम है क्योकि अलकार-प्रयोग की प्रवृत्ति ही नरसिंह मे विशेष नही पाई जाती। नरसिंह के पदो मे मिलने वाले प्रकृति-चित्रण के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) मेघ की घटाओ के समान कृष्ण का गोप-सैन्य गोपियो की ओर चला[4]।

(२) भौंरा जैसे कमल के मकरद का पान करता है वैसे कृष्ण राधा को खींचने लगे।[5]

(३) गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं कि तुम तरुवर हो और हम लताएँ हैं[6]।

....
उत सुरचाप, कलाप चद्र इत, दोउ रन रोप रए।
उत सैनापति बरषत, ये इत अमृतधार चितए।''
— 'सूरसागर' पृष्ठ ५६८, पद १६०१।

१ ''स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति, चकोर चन्द ज्यौं, चक्रवाक रवि जैसे।''
— वही, पृष्ठ ६७६, पद २७५६।

२ ''स्याम स्यामा परम कुसल जोरी।
मनो नव जलद पर दामिनी की कला, सहज गति मेटि अति भई मोरी।''
— वही, पृष्ठ ६४७, पद २६५१।

३ ''सूरदास मनु चली सुरसरा, श्री गुपाल-सागर सुरगमगा।''
— वही, पृष्ठ १०७३, पद ३०७२।

४ ''गगन घटा थइ, वादला जाय धाइ। एम कृष्ण चालीयु गोपी सामु।''
— इ० सु० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ १०३, पद २६।

५ ''भृंग अरविंदने, चूसे मकरदने, हरि हारवदनाने तेम ताणे।''
— वही, पृष्ठ ११२, पद ५७।

६ ''तम तरुवर रे अमे द्रुम वलटी रे ''
— वही, पृष्ठ ४१८, पद ५१८।

(४) चतुरा की चोली नीलाम्बर मे वैसे ही चमकती है जैसे बादल मे बिजली[1]

(५) झूलते समय राधा और कृष्ण के नीलाम्बर और पीताम्बर ऐसे चमकते है जैसे बादल मे बिजली की ज्योति चमकती है[2]।

उपमेय के उत्कर्ष के लिए उपमान के रूप मे चन्द्र, कमल, भौरा, खजन, मीन, मृग, सुरचाप, मेघ, दामिनी इत्यादि का वर्णन भी सूर से नरसिंह मे कम ही है। प्रकृति का अलकार रूप मे किया गया वर्णन सूर मे तो चमत्कार और प्रभाव उत्पन्न करता है, किन्तु नरसिंह मे वैसा प्रभाव उत्पन्न करने की सामर्थ्य नही पाई जाती। उनका स्वतत्र रूप मे किया गया प्रकृति-वर्णन ही विशेष प्रभावपूर्ण है। एक पद मे वन की रमणीयता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि "वह वन अतीव रमणीय था। उसकी शोभा अपार थी। कोयल, मोर आदि पक्षियो के सुहाने शब्द *और मधुकर का गुजार वातावरण मे प्रफुल्लता भर रहा था।" नरसिंह का ऐसा अलकार रहित सीधा-सादा स्वाभाविक वर्णन अलकार रूप मे किए गए वर्णनो से* अधिक हृदयस्पर्शी जान पडता है।

उद्दीपन के रूप मे किया गया प्रकृति वर्णन भी सूर और नरसिंह मे बराबर मिलता है क्योंकि ये दोनो मूलत प्रेम और आनन्द के कवि हैं। प्रेम और आनन्द प्रकृति के प्रभाव से उद्दीप्त हुए बिना रह नही सकते। सयोग की स्थिति मे प्रेम का भाव प्रकृति-सौंदर्य से उद्दीप्त हो कर प्रबल हो उठता है, आनद का भाव प्राकृतिक रमणीयता से प्रभावित हो कर असीम हो उठता है। वियोग की दशा मे इसी प्रेम के आनद को प्रकृति प्रेम की परीक्षा सदृश विरह-व्यथा के रूप म परिवर्तित कर देती है। कवियो ने उद्दीपन के रूप मे प्रकृति का वर्णन करने मे सदैव उत्साह दिखलाया है। कुछ तो इस कवि-परम्परा का अनुसरण करने के लिए और विशेष तो अपने प्रकृति-*प्रेम को प्रकट करने की प्रबल भावना के कारण सूर और नरसिंह ने उद्दीपन के रूप* मे प्रकृति-वर्णन अनेक स्थानो पर किया है।

सयोगदशा मे उद्दीपन के रूप मे किया गया शरत्पूर्णिमा के दृश्यो का सूर का वर्णन अद्भुत है। शरत्पूर्णिमा की ज्योत्सना के कारण यमुना का कूल और धरती की धूल उज्ज्वल और रमणीय दिखाई देन लग। सुन्दर खिले हुए पुष्पो, वृक्षो पर के पत्ता, बहन वाले शीतल सुगधित समीर तथा बिखरी हुई ज्योत्सना को शरद ऋतु

---

१ "चतुरानी के चोली चमक, जम बिन गगनमा दमके।"
— के० मू० देसाई, 'नरसिंह महेता कृत काव्य सग्रह',
पृष्ठ ४३६, पद २।

२ "हीडोले हीचतां वहाला मगे, श्यामा शोहती रे,
निलाम्बर पिताम्बर झलके, जाणे घन दामनी जोती र।"
— वही, पृष्ठ ४५४, पद ४।

की रात्रि मे देख कर कृष्ण का हृदय हर्षित हुआ, उसमे प्रेम तथा आनन्द के भाव का उदय होने पर रास खेलने की इच्छा हुई और बंसी बजा कर उन्होंने गोपियो को बुला ही लिया[1]। यमुना के उस मनोहर तट पर उस शरद ऋतु की सुहानी रात मे रसिकशिरोमणि के साथ रास खेलने मे सभी गोपियो को परम प्रसन्नता का अनुभव हुआ।[2]

कृष्ण के अन्तर्धान होने पर गोपियाँ विरह-व्यथा से विक्षिप्त-सी हो कर वन की लताओ से, तमाल, वट आदि वृक्षों से, मालती, कदम्ब, बकुल, कुन्द आदि पुष्पो से, कमल और कुमुदिनी से, कदली तथा कदली से, वृन्दा से, मृगी और मधुप से—सभी से पूछती हैं कि तुमने कही हमारे चितचोर को देखा है ?[3] प्रकृति के इन सभी तत्वो को सखा-सखी के समान अनुभव करके गोपियो का उनसे कृष्ण का पता पूछना प्रकृति का मानवीकरण ही है। गोपियो की वह मन स्थिति भी धन्य है जिसमे वे मनुष्यो और प्रकृति मे भेद नही कर पाती हैं, जड और चेतन को मित्र सम समझती हैं।

प्रकृति का वह मानवीकरण भी कितना मनोमुग्धकारी है जहाँ प्रकृति भी गोपियों के समान कृष्ण की मुरली के माधुर्य से प्रभावित हो जाती है। मुरली को सुनकर अचल भी चचल हो गए, चल भी अचल हो गए, अचल से भी जल झडने

---

१ "सरद निसि देखि हरि हरष पायौ।
विपिन वृंदा रमन, सुभग फूले सुमन, रास रुचि स्याम के मनहि आयौ ॥
परम उज्वल रैनि, छिटकि रही भूमि पर, सद् फल तरुनि प्रति लटकि लागे।
तैसोई परम रमनीक जमुना-पुलिन, त्रिविध बहै पवन आनद जागे ॥
राधिका रमन बन भवन-सुख देखि कै, अधर हरि वेनु सु ललित बजाइ।
नाम लै लै सकल गोप-कन्यानि के, सबनि कैं स्रवन वह धुनि सुनाइ ॥"
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६०२, पद १६०६।

२ "जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर सरद-सुहाई जामिनी ।
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं मुदित भइ गुन गामिनि।"
— वही, पृष्ठ ६२१, पद १६६६।

३ "कहि धौं री बन बेलि कहूँ तैं देखे हैं नंदनंदन।
बूझहु धौं मालती कहूँ तैं, पाए है तनचदन ॥
कहि धौं कुंद कदंब बकुल, बट चंपक, ताल, तमाल।
कहि धौं कमल कहाँ कमलापति सुंदर नैन बिसाल ॥
कहि धौं री कुमुदिनी, कदली कछु, कहि बदरी करवीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहँ घनस्याम सरीर ॥
कहि धौं मृगी मया करि हम सौं कहि धौं मधुप मराल।
सूरदास प्रभु के तुम संगी, हैं कहँ परम कृपाल।"
— वही, पृष्ठ ६३७, पद १७०६।

लगा, विफल वृक्ष भी फलने लगे, नवपल्लवित हो कर वृक्ष झूलने-झूमने लगे, उनके पत्ते चचल हो उठे, पशु-पक्षी स्तब्ध रह गए, चित्रवत् हो गए तथा उस समय धरती के हृदय मे भी आनद नही समा रहा था।[1] अब तो यह विज्ञान सिद्ध बात मानी जाती है कि सगीत से वनस्पतियो पर प्रभाव पडता है। सूर का भावुक हृदय अपने भाव-विस्तार मे विज्ञान के इस सिद्धान्त की कल्पना भी किए बिना अनायास ही सगीत के व्यापक और अद्भुत प्रभाव का चित्रण कर डालता है।

जल-विहार प्रसग मे यमुना की चचल लहर को देख कर राधा के हृदय म हर्ष की तरग उठती है और मन मे धैर्य नही रहता।[2] जैसे शरदऋतु की रमणीयता उन्हे तथा गोपियो को रास रस का पान करने के लिए उद्दीप्त करती है वैसे ही यमुना की चचल-चचल लहरे उनके हृदय मे जल विहार करने की भावना उद्दीप्त करती हैं। ग्रीष्म के समाप्त होने पर वर्षाऋतु का आरभ होते ही प्रेम का भाव प्रबल हो उठता है। गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं कि ग्रीष्म का ताप चला गया है और सुहानी वर्षा आई है। अब तुम्हारे सग झूलने की और तुम्हे झुलाने की हमारी साध पूरी करो।[3] वसन्त मे प्रकृति के यौवन और सौंदर्य को निखरता देख कर राधा कृष्ण से कहती हैं, "देखो, वृक्षो पर अनेक रग के नए-नए फूल खिले हैं। इन सुन्दर वृक्षो से ललित लताएँ लिपटी हुई हैं। मलयानिल प्रेम का नया सुमत्र सुनाता है। नए सुन्दर और चचल पत्ते अत्यन्त शोभा पा रहे है। कोकिल के कूजन तथा मयूर के केकारव की मधुर ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। ऐसे प्रेमोन्मत्त करने वाले वातावरण मे हमे अपना बना लो।[4] प्रेमोद्दीपक वसन्त का इस प्रकार का वर्णन अनेक पदो में मिलता है।

---

१ 'मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत पाहन, विफल वृच्छ फले॥

झुरे द्रुम अकुरित पल्लव, बिटप चचल पात।
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमग न माति उर मैं ''
— 'सूरसागर', पृष्ठ ६२८, पद १६-६।

२ "देखि लहरि तरग हरषि, रहत नहिं मन धीर।"
— वही, पृष्ठ ८६२, पद २३७०।

३ "हिन्डोर हरि सग झूलियै (हो) अरु पिय कौं देहि झुलाइ।
गए बीति ग्रीषम सरद दिन रितु, सरस बरषा आइ।"
— वही, पृष्ठ ११५६, पद ३४४८।

४ "भए नव द्रुम सुमन अनेक रग। मनि ललित लता सकुलित सग॥
बाहू नव सुमत्र बहै मलयराम। करि रागन कौ रिर बिलसैन पात।

संयोग की अपेक्षा वियोग की दशा में प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के रूप में, करने का अवकाश कवियों को अधिक रहता है। सूरदास ने राधा तथा गोपियों के विरह वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति का उद्दीपन के रूप में पर्याप्त वर्णन किया है। संयोग की स्थिति में प्रकृति के जो सुन्दर दृश्य सुखदायी प्रतीत होते थे वे ही अब वियोग की दशा में दुखदायी हो जाते हैं। प्रकृति स्वयं भी अपने सौंदर्य में अभिवृद्धि करने वाले अनंत सुन्दर के न रहने पर विरह का अनुभव करती है। अपने तट पर विहार करने वाले कृष्ण के विरह में कालिन्दी को भी विरह-ज्वर होता है।[1] कृष्ण के विरह में पशु, पक्षी, वृक्ष, लताएँ—सभी दुखी और व्याकुल रहते है।[2] प्रकृति का यह मानवीकरण कैसा अद्भुत है। अब कृष्ण के न रहने पर सुन्दर से सुन्दर प्राकृतिक दृश्य भी गोपियों के हृदय पर दुःखदायी प्रभाव ही डालता है। वे स्वयं कहती हैं कि अब तो पहले सुख देन वाली बातें अत्यन्त दुःसह हो गई हैं। अब बातें ही कुछ उलट गई है। मोर का शोर, कोयल का कूजन तथा मधुपों का गुंजार पहले तो सुखद और सुन्दर मालूम होता था, किन्तु अब वह सब कृष्ण कन्हाई के बिना दादुर की निरर्थक टर्र-टर्र सा लगता है। मलयानिल और चन्द्र भी आग से लगते है। कालिन्दी, कमल, कुसुम—सब के सब अब देखने मात्र से भी दुःख देते हैं। शरद, वसंत, शिशिर, ग्रीष्म, हेमन्त और वर्षा ऋतुएँ व्यथा ही व्यथा का अनुभव कराके जलाती हैं।[3] वे तो अब

कोकिल कुजत कल हस मोर।
सुनि सूरदास इमि वदत बाल।
हसि चितै चारु लोचन विसाल। तिहिं अपनै करि थापियै गुपाल।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १२०६, पद ३४६५।

१ "देखियति कालिन्दी अति कारी।
अहो पथिक कहियौ उन हरि सौं, भई विरह जुर कारी।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३४८, पद ३८०६।

२ "मोहन आ दिन बनहिं न जात।
ता दिन पसु पच्छी द्रुम बेला, बिनु देखे अकुलात।
देखत रूप निधान नैन भरि, तानै नहिं अघात।
ते न मृगा तृन चरन उदर भरि, भए रहत कृसगात।
जे मुरली धुनि सुनत स्रवन भरि, ते मुख फल नहिं खात।
ते खग बिपिन अधीर कीर पिक, डोलत हैं बिलखात।
नित बेलिन परमन वर पल्लव, अति अनुराग चुचात।
ते सब मुरझि परति बिटप हैं, जीरन से द्रुम पात।"
— वही, पृष्ठ १३५१, पद ३८२०।

३ "अब वै बातैं उलटि गईं।
जिन बातनि लागत सुख आली, तेऊ दुसह भईं॥

प्राकृतिक सौंदर्य को शत्रु-सदृश अनुभव करने लगती हैं। वे कहती हैं कि गोपाल कृष्ण के न रहने पर यहाँ के कुंज शत्रु हो गए हैं। तब जो लताएँ शीतल और सुखद लगती थी वे ही अब भयानक अग्निपुंज सी दुखदायी प्रतीत होती हैं। यमुना का बहना, पक्षियों का बोलना, कमलों का खिलना, भौंरों का गुंजार करना—सब कुछ अब उन्हें व्यर्थ और निरर्थक अनुभव होता है।[1]

वर्षा ऋतु में तो विरह का भाव विशेष उद्दीप्त होता है। प्रकृति के वर्षाऋतु के सौंदर्य से गोपियों के जलने का वर्णन सूर नए ढंग से करते हैं। उनके नेत्र सावन-भादों को जीत लेते हैं।[2] रातदिन बरसने वाले नेत्र वर्षा के जलद हो जाते हैं।[3] वे कृष्ण को सन्देशा भिजवाती है कि 'यह सुन्दर ऋतु रूठने की नहीं है। काली घटाएँ घिर रही है, पवन झकझोर गति से चल रहा है, लताएँ वृक्षों से लिपट रही हैं, दादुर, मोर, चकोर तथा कोयल अमृत के समान मधुर बोलियाँ बोल रहे हैं। तुम्हारे दर्शन के बिना इतनी सुन्दर ऋतु भी बैरिन ही प्रतीत होती है।'[4] वे कृष्ण से कहना चाहती हैं कि 'तुमसे तो ये बादल भले है जो अपनी अवधि को जान कर, पिक एवं चातक की पीडा को जान कर, आकाश में छा गए हैं। बरस कर ये द्रुम आदि को हरित कर देते हैं जिनसे लताएँ मिलती है और ये मृतक-से दादुरों को

....
मोर पुकार गुहार कोकिला, अलि-गुंजार सुहाई।
अब लागति पुकार दादुर सम, बिनहिं कुंवर कन्हाई॥
चंदन चंद समीर अगिन सम, तनहिं देत दव लाई।
कालिंदी अरु कमल कुसुम सब दरसन को दुखदाई।
सरद बसंत सिसिर अरु ग्रीषम, हिम रितु की अधिकाई।
पावस जरैं सूर के प्रभु बिनु, तरफत रैनि बिहाई।"
— 'सूरसागर', पृष्ठ १३५०, पद ३८१६।

१ "बिनु गुपाल बैरिनि भईं कुंजैं।
तब वै लता लागति तन सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल-फूलनि अलि गुंजैं।"
— वही, पृष्ठ १६१७, पद ४६८६।

२ "नैना सावन-भादों जीते।" — वही, पृष्ठ १३६१, पद ३८५३।

३ "निसि दिन बरसत नैन हमारे।" — वही, पृष्ठ १३६१, पद ३८५४।

४ "ये दिन रूसिबे के नाहीं।
कारी घटा पौन झकझोरैं, लता तरुन लपटाहीं॥
दादुर मोर चकोर मधुप पिक, बोलत अमृत बानीं।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, बैरिनि रितु नियरानी।"
— वही, पृष्ठ १३७०, पद ३८८६।

जिवाते है।[1] प्रकृति के सौंदर्य मे संगीत भरने वाले पपीहे, कोयल आदि का वर्णन भी विरह के उद्दीपन के लिए अनेक बार किया गया है। त्रिशूल-से लगने वाले फूलों, धनु-सा प्रतीत होने वाला चन्द्र, जलानेवाली ज्योत्सना आदि अनेकानेक वर्णनो मे प्रकृति का उद्दीपन के रूप मे अत्यंत सुन्दर, सरस एवं हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है।

नरसिंह मेहता ने वियोग-पक्ष का वर्णन ही अधिक नही किया है, इसलिए विरह की दशा मे उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रकृति के दृश्यो के चित्र सूर की तुलना मे इनके पदो मे कम ही मिलते हैं। संयोगपक्ष मे प्रेम के आनंदोत्साह को बढानेवाली प्राकृतिक दृश्यावली के चित्र भी अधिक नहीं मिलते है। नरसिंह की गोपियाँ सूर की गोपियो के समान कृष्ण का पता कुंजों से, वृक्षों से तथा लताओं से पूछती है।[2] गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं कि 'हमे रास-रस का पान कराओ क्योंकि यह शरद की सुहानी रात है जिसमे चंद्र सोलहो कलाओं से खिला है।'[3] वियोग मे पक्षियो के मधुर शब्द सुन कर गोपियो का मन अधीर हो उठता है।[4] संयोग की स्थिति मे गोपियाँ शरत्पूर्णिमा के दिन कहती है कि 'आज तो पूर्णिमा का धन्य दिवस है, हम मनभाया ही करेंगी।'[5]

नरसिंह मेहता ने बारहमासा भी लिखा है, जिसमे बारहों महीने मे बढते रहने वाले राधा तथा गोपियो के विरह दुख का वर्णन है और जिसके भीतर प्राकृतिक दृश्यावली का भी उद्दीपन के रूप मे वर्णन किया गया है।[6] वर्षा ऋतु मे विरह-

---

१ "बरु ए बदरौ बरषन आए।
अपनी अवधि जानि नंदनंदन गरजि गगन घन छाए।
. .. .
चातक पिक की पीर जानि कै, तेउ जहा तैं धाए।
द्रुम किए हरित हरषि बेली मिलीं दादुर मृतक जिवाए॥

२ "पूछे कुंज लता द्रुमवेली, क्याइ दीठडो नंदकुमार।"
— इ० मू० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह',
पृष्ठ १७७, पद ५३।

३ "रंगभर राम रमाड़ो नाथ, के शरद सोहामणी रे लोल।
उग्यो सोल कलानो चंद्र के हालडा रलियामणी रे लोल।"
— वही, पृष्ठ ४०५, पद ४८६।

४ "पखीडा रे, मधुर स्वर करे रे,
केम करा राखु मन शु धीर।"— वही, पृष्ठ ४०२, पद ४७८।

५ "धन धन दहाडो पुनेम केरो, करशु मननां गमता।"
— वही, पृष्ठ ६००, पद ७४।

६ देखिए पृष्ठ १७०-१७१।

अर्थात राधा कहती हैं कि 'देखो सखी, वर्षा की ऋतु आ गई, किन्तु मेरे स्वामी नहीं आए। बादल गरज रहे हैं, बिजलियाँ चमक रही हैं और वर्षा की झड़ी लगी है।'[1]

स्वतंत्र रूप में, अलंकार रूप में तथा उद्दीपन के रूप में सूर और नरसिंह के द्वारा किया गया प्रकृति वर्णन सुन्दर और स्वाभाविक है, कहीं-कहीं परंपरागत होते हुए भी मौलिक एवं सजीव है। आनंदस्वरूप कृष्ण की लीलाओं का गान करने वाले इन दोनों कवियों का आनंदस्वरूपा प्रकृति का चित्रण पाठकों को आनंदविभोर करने वाला है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

---

१ "ओ दिसे सखी मेहूलो आवे, नाम्या मारा नाथ विदेशी रे,

घन अति गाजे ने बीज झबूके, मेहुलीए झड मांडी रे।"

— इ० ए० देसाई, 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह', पृष्ठ ४१०, पद ७।

उपसंहार

कृष्णकाव्य की रचना करने वाले कवियों के लिये कृष्णभक्ति ही सबसे बड़ा प्रेरणा-स्रोत रही। ईश्वरप्राप्ति के लिए सगुणभक्ति की सर्वग्राह्यता और सगुणभक्ति मे कृष्ण भक्ति की लोकप्रियता के सम्बन्ध मे दो मत नही हो सकते। भगवान विष्णु के अवतार के रूप मे कृष्ण का वर्णन हमारे धार्मिक साहित्य मे प्रचुर मात्रा मे मिलता है। अधिकाश विद्वानो की राय के अनुसार वासुदेव-पूजा, जो कि कृष्णभक्ति का प्रारभिक रूप थी, ईसा के सात सौ वर्ष पूर्व प्रचलित रही होगी। कृष्णभक्ति प्रारभ मे विष्णुपूजा के रूप मे थी, जिसका विकास उपनिषद-काल तथा ब्राह्मण-काल मे विशेष हुआ। महाभारत मे कृष्ण भगवान विष्णु के अवतार के रूप मे वर्णित किए गए और इस महाकाव्य ने कृष्णभक्ति के प्रचार मे विशेष सहयोग दिया। भगवद्गीता ने कृष्णभक्ति के दार्शनिक रूप को दृढ करते हुए कृष्णभक्ति का प्रचार किया। पुराणो मे कृष्ण की भावना सविशेष विकसित हुई तथा उनके कारण कृष्णभक्ति का प्रसार भी काफी हुआ। इस सन्दर्भ मे 'ब्रह्मवैवर्त', 'गर्गसहिता', 'भागवत पुराण' तथा 'विष्णु पुराण' 'हरिवश पुराण' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'भागवत पुराण' के समय से कृष्णभक्ति मे दिव्य शृगार-भावना का सन्निवेश होने लगा। ज्ञान और प्रेम-तत्त्व का समन्वय भागवत की विशेषता है। आगे चल कर कृष्णभक्ति ने विभिन्न सप्रदायो के माध्यम से प्रचार और प्रसार पाया, जिनमे से निम्बार्क सप्रदाय, माध्व सप्रदाय, विष्णुस्वामी सप्रदाय, राधावल्लभी सप्रदाय, हरिदासी सप्रदाय, चैतन्य सप्रदाय तथा वल्लभ सप्रदाय कुछ विशेष महत्त्व रखते हैं। गुजरात मे राधावल्लभी सप्रदाय तथा वल्लभ सप्रदाय का सबसे अधिक प्रचार हुआ। 'स्वामी नारायण सप्रदाय' नामक गुजरात का अपना एक विशिष्ट सप्रदाय भी गुजरात की कृष्णभक्ति के सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है, जिसे सहजानद स्वामी ने स्थापित किया था और जिसमे चारित्र्य की शुद्धता और स्त्री-पुरुषो के सबध की मर्यादा का विशेष आग्रह रखा जाता है। स्त्री-पुरुषो के लिए मन्दिर तक अलग-अलग होते है।

कृष्णकाव्य के प्रेरणास्रोत कृष्णभक्ति पर इतना विचार करने के पश्चात जब हम कृष्णकाव्य की परपरा का विहगावलोकन करते है, तब हम देखते हैं कि 'महा-भारत', 'भागवत पुराण', 'हरिवश पुराण' इत्यादि ग्रन्थ धार्मिक के साथ-साथ साहित्यिक महत्त्व भी अल्पाधिक मात्रा मे अवश्य रखते हैं। अपभ्रश मे भी कृष्णकाव्य की

रचनाएँ मिलती हैं, जिनमे से कवि पुष्पदन्त की रचना 'महापुराण' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सस्कृत मे शुद्ध साहित्यिक कृष्णकाव्य कवि भास के 'बालचरित' नाम के नाटक के रूप मे ही मिलता है। सम्पूर्ण साहित्यिक सौष्ठव के साथ प्रस्तुत होने वाली कृष्णसाहित्य की प्रथम प्रसिद्ध रचना कवि जयदेव की कृति 'गीत गोविन्द' ही है।

कवि जयदेव ने बाद के सभी कृष्णकवियो पर अपना अमिट प्रभाव छोड रखा है। सूरदास और नरसिंह मेहता भी जयदेव से विशेष प्रभावित रहे। कृष्ण-काव्य की परपरा मे जयदेव के बाद मैथिल कोकिल विद्यापति का ही नाम लिया जा सकता है, जिन्होने बाद के कवियो को पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित किया। आगे चल-कर ब्रजभाषा मे जो कृष्णकाव्य का विकास हुआ उसका श्रेय महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को ही दिया जाना चाहिए। कृष्णकाव्य की परपरा मे 'अष्टछाप' के कवियो का महत्व असाधारण है। 'अष्टछाप' के अतिरिक्त ब्रजभाषा मे और भी अनेक कृष्णकवि हुए, किन्तु ब्रजभाषा के वाल्मीकि सूरदास ही सर्वोत्कृष्ट एव अद्वितीय सिद्ध होते है। आधुनिक काल मे भी कृष्णकाव्य की परपरा कुछ दिनो तक चलती रही, जिसमे ब्रजभाषा के साथ-साथ खडी बोली भी कुछ कवियो द्वारा प्रयुक्त होती रही।

गुजराती का कृष्णकाव्य अपनी प्रारभिक अवस्था मे लोकगीतो के रूप म मिलता है जो रास, गरबा, नृत्य के साथ गाए जाते रहे होगे। ईसा की चौदहवी-पन्द्रहवी शताब्दी मे गुजरात मे आख्यान काव्यो की परपरा चल पडी, जिसमे कृष्ण-काव्य ने ही विशेष महत्व पाया। गुजराती आख्यान काव्य के जन्मदाता कवि भालण तथा उनके बाद के कवि केशव तथा कवि भीम गुजराती के कृष्णकाव्य की परपरा म विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भक्तकवि नरसिंह मेहता का स्थान गुजराती के कृष्णकाव्य की परपरा मे सर्वोच्च है। वे गुजरात क सूरदास है। उनके बाद के कवियो मे कवि प्रेमानन्द तथा दयाराम की गुजराती के कृष्णकाव्य को काफी देन रही। कृष्णकाव्य की परपरा गुजराती साहित्य मे आज भी विद्यमान है, क्योंकि रास-गरबा नृत्य कृष्ण के समय से ले कर आज तक गुजरात मे लोकप्रिय बना रहा है, जिसके साथ राधाकृष्ण सबधी गीत बराबर गाए जाते है। इसके अतिरिक्त कृष्ण की भावना गुजरात म आज तक अपन जीवन्त रूप मे विद्यमान है। गुजरात ने कृष्ण-काव्य की परपरा तथा रास-गरबा नृत्य की परपरा के निर्वाह द्वारा राधाकृष्ण की भावना को जीवन्त और ज्वलन्त रखा है।

महाकवि सूरदास एव भक्तकवि नरसिंह मेहता की जीवनी एव उनके रचना-काल पर विचार करते हैं तो हम निष्कर्ष पर पहुँचना पडता है कि नरसिंह मेहता सूर-दास से पूर्व हुए। सूरदास का जन्मकाल वि० स० १५३५ अधिकांश विद्वानो द्वारा स्वीकृत है। नरसिंह मेहता का समय वि० सं० १४७१ से वि० स० १५३८ पर्यन्त

सिद्ध किया गया है। सूरदास की अपेक्षा नरसिंह मेहता के जीवन से अनेकानेक चमत्कारपूर्ण बातें विशेष जुडी हुई हैं। क्या भक्त के रूप मे और क्या कवि के रूप मे नरसिंह मेहता ने अपने समय से लेकर आज तक विशेष लोकादर पाया है। उनका जीवन ही बाद के कवियों के लिए काव्य का विषय बन गया। इसी से उनकी लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है। सूरदास भी ब्रजभाषा के कृष्णकवियों मे सबसे अधिक लोकप्रिय हुए। इन दोनो कवियों ने अपने जीवन मे काफी सघर्ष का अनुभव किया। इन दोनो कवियों ने अपने समय की विशेष राजनीतिक परिस्थिति के कारण खिन्नता मे डूबी हुई मृतप्राय जनता को प्रेम, आनद और उत्साह का सन्देशा देकर उसके नीरस जीवन मे सरसता का सचार किया।

सूरदास और नरसिंह मेहता के समग्र साहित्य की तुलना करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूरदास ने नरसिंह मेहता से न केवल अपेक्षाकृत विपुल मात्रा मे सृजन किया है, अपितु प्रभाव एव साहित्यिक सौष्ठव के दृष्टिकोण से सरस एव मार्मिक साहित्य का सृजन किया है। प्रसगोद्भावन करने वाली मौलिक प्रतिभा इनमे अनेक स्थलों पर प्रस्फुटित होती हुई परिलक्षित होती है। 'भ्रमरगीत' जैसी रचना तो इनकी मौलिकतम रचना है। सूरदास के अधिकाश पद श्रीमद्भागवत से प्रभावित होते हुए भी सूरदास की अपनी विशिष्ट मौलिकता से स्थान-स्थान पर मुग्ध कर देने वाला प्रमाण देते है। नरसिंह मेहता का साहित्य सूर साहित्य के सदृश विपुल नही है। उनकी भाषा एक कवि की भाषा की अपेक्षा एक भोले-भाले भावुक भक्त की भाषा अधिक है। परन्तु जहाँ तक मौलिकता का प्रश्न है, उन्होंने अपनी प्राय सभी रचनाओं मे विशेषत 'गोविन्दगमन' एव 'सुरतसग्राम' मे अपनी अद्भुत मौलिकता का चकित कर देने वाला परिचय दिया है। सूरदास का साहित्य जहाँ वात्सल्य, शृगार एव शान्तरस तक ही मुख्यत सीमित रह जाता है, वहाँ नरसिंह मेहता का साहित्य केवल शृगार एव शान्तरस तक ही मुख्य रूप से सीमित रह जाता है। दार्शनिकता की अभिव्यक्ति मे नरसिंह सूरदास से अधिक उत्साह दिखलाते हैं एव अधिक प्रभाव भी उत्पन्न करते है। नरसिंह मेहता के अपने बनाये हुए राग 'केदारा' का सूरदास ने बराबर प्रयोग किया है, जिससे सूरदास पर पडा हुआ उनका परोक्ष प्रभाव अवश्य सिद्ध होता है। सूर और नरसिंह का साहित्य उसमे वर्णित भक्ति-भावना के समाज शाश्वत है।

सूरदास ने वात्सल्य रस का वर्णन जितने विस्तार से, जितनी विशदता के साथ एव जितनी सूक्ष्मता के साथ किया है, उतना भागवतकार को छोडकर कदाचित ही ससार के किसी भी कवि ने किया हो। वात्सल्य वर्णन मे इन्होंने अपने बाल मनोविज्ञान विषयक ज्ञान का विमुग्ध कर देने वाला परिचय दिया है। स्वाभाविकता एव सजीवता को तो वात्सल्य के पदो मे देखते ही बनता है। नरसिंह मेहता

ने वात्सल्य वर्णन नही के बराबर किया है, वे वात्सल्य का कोना-कोना नही झांकते हैं, अपितु केवल विहगावलोकन प्रस्तुत करके ही सतोष अनुभव करते हैं। वात्सल्य के अन्तर्गत सयोग एव वियोग की स्थितियो का चित्रण करने मे सूर ने अपनी अद्वितीयता सिद्ध करके दिखाई है। नरसिंह का वात्सल्य वर्णन सूर के वात्सल्य वर्णन की तुलना मे निश्चित ही अल्प मात्रा मे है और साधारण कोटि का है।

शृगार रस के वर्णन मे नरसिंह मेहता का उत्साह विशेष परिलक्षित होता है। इनकी शृगार भावना अत्यन्त सजीव भी है क्योकि ये अपने को कृष्ण का भक्त न समझ कर, एक गोपी ही समझते थे। 'सुरतसग्राम' मे इनकी मौलिक प्रतिभा का एव इनकी घोर शृंगारिकता का परिचय मिलता है। इनकी घोर शृगारिकता मे भी प्रेमलक्षणा माधुर्य भक्ति की दिव्यता बराबर सन्निहित रहती है। यद्यपि सयोगावस्था का वर्णन करने मे दोनो कवियो ने प्राय एक-सा-उत्साह दिखलाया है, तथापि वियोगावस्था का वर्णन करने मे सूर का-सा उत्साह नरसिंह मेहता बिल्कुल नही दिखा सके हैं। 'गोविन्दगमन' मे थोडा-सा मार्मिक वर्णन कर देने के बाद उनका गोपीहृदय सयोगावस्था के सुख से वचित ही होना नही चाहता है तथा वियोग वर्णन की कल्पना से भी दुःख का अनुभव करता है और इसीलिए उन्होने नही के बराबर विरह वर्णन किया है। सूरदास के शृगार वर्णन की सरसता का नरसिंह मेहता मे प्राय अभाव-सा ही दिखाई देता है। सूर ने शृगार वर्णन के अन्तर्गत स्वाभाविक रूप से कथाक्रम का निर्वाह भी कर लिया है, जब कि नरसिंह का ध्यान कथाक्रम की ओर बिल्कुल नही है। दोनो कवियो के वर्णनो मे शृगार के साथ-साथ अलौकिकता के संकेत बराबर मिलते हैं। शृगार के भीतर का दार्शनिक रूप कहीं-कही स्पष्ट भी हुआ है। शृगार के दोनो पक्षो का सतुलित वर्णन करने वाले सूरदास निश्चित ही नरसिंह मेहता के एकागी शृगार वर्णन से अधिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

इन दोनो महाकवियो की भक्ति-भावना की तुलना करते हैं तो शृगार के पदो मे अभिव्यक्त प्रेमलक्षणा माधुर्य भक्ति के अतिरिक्त इनकी सीधी-सादी सरल भक्ति भी विनय के पदो मे अभिव्यक्त होती हुई दृष्टिगोचर होती है। ऐसे स्थलो पर इन दोनो प्रतिभाशाली कवियो का भक्तरूप ही प्रबल हो गया है। तब भी सूर का कवि-रूप अवसर पाते ही प्रबल हुए बिना नहीं रहता है। यद्यपि इन दोनो की भक्ति-भावना समान रूप में ही अभिव्यक्त हुई है तथापि विनय भावना मे नरसिंह मे एक भक्त की अधिकारपूर्ण वाणी देखने को मिलती है। इनके विनय के पदो मे तीव्रानुभूति विशेष मात्रा मे परिलक्षित होती है क्योंकि इन्होंने विनय के पद उस अवसर पर गाये थे, जब कि इनकी भक्ति भावना की परीक्षा ली जा रही थी। सूरदास मे भी कहीं-कही ढीठता देखने को मिलती है, किन्तु नरसिंह की ढीठता को तो देखते ही बनता है। नरसिंह की तीव्र प्रेमानुभूति का श्रेष्ठ प्रमाण यही है कि वे अपना पुरुषत्व

भूलकर गोपीस्वरूप हो जाते हैं तथा जी भर कर कृष्ण को उलाहना देते हैं।

इन दोनो कवियो के साहित्य का दार्शनिक पक्ष लेते हैं तो चकित से रह जाते हैं क्योंकि क्या वात्सल्य वर्णन मे, क्या शृगार वर्णन मे और क्या ही शान्तरस वर्णन मे, सभी स्थलो पर इन दोनो महाकवियो की दार्शनिकता बराबर झलकती हुई दिखाई देती है। तब भी तुलना करने पर अपेक्षाकृत नरसिंह मे विशेष दार्शनिकता देखी जाती है, क्योकि उनका दार्शनिक रूप अत्यन्त गभीर एव प्रभावोत्पादक है। नरसिंह मेहता अपने दार्शनिक पदो के कारण ही इतने लोकप्रिय है क्योकि अत्यन्त गूढ दार्शनिक बातें वे बडे सरल एव सरस ढग से कह पाए हैं।

सूर और नरसिंह के कलापक्ष की तुलना करने पर सूरदास को बिना किसी सन्देह के ऊँचा स्थान देना पडता है क्योकि उनकी भाषा, उनकी शैली, उनके अलकार, उनके दृष्टिकूट इत्यादि सब कुछ इन्हे इस क्षेत्र मे नरसिंह से श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। नरसिंह मेहता काव्यकला के सूक्ष्म शिल्प-विधानो से प्राय अनभिज्ञ ही थे, अनायास ही कही-कही कलापक्ष निखर आया हो यह और बात है। भावपक्ष के सौंदर्य का तथा कलापक्ष के निखार का सूर मे अत्यन्त सरस एव सन्तुलित सम्मिश्रण मिलता है, जिसका नरसिंह मे निश्चित ही अभाव है।

इन दोनो कवियो के प्रकृति वर्णन की तुलनाकरने पर हम दोनो का प्रकृति-वर्णन सबधी उत्साह प्राय एक सा देखते हैं। अलकार रूप मे किया गया सूर का प्रकृति-वर्णन जहाँ एक ओर इनके प्रकृति-प्रेम का परिचय एव प्रमाण देता है, वहाँ दूसरी ओर कलापक्ष का निर्वाह करने वाले उनके सफल कविरूप का भी परिचय देता है। नरसिंह मे इस प्रकार का वर्णन अपेक्षाकृत कम ही है। क्योकि उनका मन भक्त की भावुकता तथा भक्ति की सरलता को छोड कर अलकारो मे अधिक रमता नही है। उद्दीपन के रूप मे किया गया प्रकृति वर्णन इन दोना कवियो मे प्राय समान सा ही है, क्योकि ये दोनो प्रेम और आनद के कवि हैं और प्रेम तथा आनद प्रकृति के प्रभाव से उद्दीप्त हुए बिना नही रह सकते। स्वतत्र रूप मे किया गया प्रकृति वर्णन इन दोनो कवियो मे अत्यन्त अल्प मात्रा मे मिलता है यद्यपि इन दोनो कवियो का प्रकृति-वर्णन प्राय परपरागत सा ही है तथापि स्थान स्थान पर मौलिकता भी अभिव्यक्त होती हुई परिलक्षित होती है तथा सजीवता तो सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होती है।

सूरदास और नरसिंह मेहता ने केवल अपने समय की जनता म ही नवजीवन एव नूतन आनद का सचार नही किया, अपितु बाद की कृष्णकाव्य की परपरा को पुष्ट करते हुए आज तक प्रेम और आनद का दिव्य एव मधुर सदेश सुनाया है। हिन्दी और गुजराती के कृष्णकाव्य को इन दोनो कवियो की देन असाधारण है क्योकि इन्ही के कारण इन दोनो भाषाओ का कृष्णकाव्य इतना सुन्दर, सरस, उज्ज्वल एव लोकप्रिय रूप प्राप्त कर सका। जहाँ कविता मात्र का अध्ययन करने से आनद

का अनुभव होता है, वहाँ सूर और नरसिंह जैसे महान प्रतिभाशाली कवियो के काव्य का अध्ययन करने मे तो विशेष आनद का अनुभव होता है और दोनो कवियो के काव्य सौंदर्य का तुलनात्मक अध्ययन करने मे जो आनद अनुभूत होता है वह तो वर्णनातीत ही है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रंथ सूची

हिन्दी

१ सूरसागर (पहला खंड)—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००६।

२ सूरसागर (दूसरा खंड)—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००७।

३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल, प्रयाग, १९५४ ई०।

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, बनारस, सं० २००६।

५ सूरदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, बनारस, सं० २००६।

६ भ्रमरगीत सार—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, साहित्य सेवा सदन, काशी, सं० १९८३।

७ त्रिवेणी—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

८ व्रजमाधुरी सार—सं० वियोगी हरि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०१३।

९ सूर निर्णय—द्वारिकाप्रसाद परीख और प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, सं० २००६।

१० भारतीय साधना और सूर साहित्य—डा० मुंशीराम शर्मा, आचार्य शुक्ल, साधना सदन, कानपुर, सं० १९९९।

११ सूर सौरभ—डा० मुंशीराम शर्मा, आचार्य शुक्ल, साधना सदन, कानपुर, सं० २०१३।

१२ सूर साहित्य—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य समिति, मध्य भारत सं० १९९३।

१३ सूर : एक अध्ययन—श्री शिखरचन्द जैन।

१४ सूर साहित्य की भूमिका—राम रतन भटनागर।

१५ सूर : जीवनी और साहित्य—प्रेमनारायण टण्डन।

१६ कविताकौमुदी (भाग पहला)—रामनरेश त्रिपाठी, नादर्न पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९४६० ई०।

१७. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (भाग १)—डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, स० २००४।
१८ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (भाग २)—डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, स० २००४।
१९ अष्टछाप परिचय—डा० प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, स० २००६।
२०. सूरदास—डा० ब्रजेश्वर शर्मा, हि० प० वि० विद्यालय, प्रयाग, १९५० ई०।
२१. अष्टछाप—डा० धीरेन्द्र वर्मा, रामनारायण लाल, प्रयाग, १९२९ ई०।
२२. चौरासी वैष्णवन की वार्ता—श्री लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, मुम्बई।
२३. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—श्री गोकुलदासजी डाकौर।
२४. सूरदासजी का दृष्टिकूट सटीक—नवलकिशोरप्रेस, लखनऊ, १९२९ ई०।
२५ राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य—विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, स० २०१४।
२६. सूरसागर सार—डा० धीरेन्द्रवर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, स० २०१५।
२७ सूर की काव्यकला—मनमोहन गौतम, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, १९५८ ई०।
२८ सूरप्रभा—डा० दीनदयालु गुप्त।
२९ ब्रजभाषा सूर-कोष (भाग ४)—प्रेमनारायण टण्डन।
३० ब्रजभाषा—डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५४ ई०।
३१ श्रीमद्भागवत—गीता प्रेस, गोरखपुर, स० २०१०।
३२. महाकवि सूरदास—नन्ददुलारे वाजपेयी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, १९५२ ई०।
३३ सूर की झाँकी—डा० सत्येन्द्र, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० लिमिटेड, आगरा, १९५६ ई०।
३४ सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, १९५४ ई०।
३५ हिन्दी साहित्य—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अतरचंद कपूर, दिल्ली स० २००९।
३६ सूरदास—डा० बड़थ्वाल।
३७ ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प—डा० सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
३८. कृष्णभक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव—डा० शशि अग्रवाल, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

३६ सूरसागर की शब्दावली—डा० निर्मला सक्सेना, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
४० गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक।
४१ ब्रज का इतिहास—श्री कृष्णदत्त बाजपेयी, मथुरा।

गुजराती

१ नरसिंह मेहता कृत काव्यसंग्रह—स० इच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रेस, मुम्बई स० १६६६ ई०।
२ बृहद काव्य दोहन—स० इच्छाराम सूर्यराम देसाई।
३ साहित्य प्रारंभिका—हिमतलाल अंजारिया, सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद स० २०००।
४ कवि प्रेमानंद अने नरसिंह मेहता कृत सुदामाचरित—स० मगनलाल देसाई, नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद, १६४२ ई०।
५ नरसिंह मेहताना भजनो—स० न्यायमूर्ति हरसिद्ध भाई वजूभाई दिवेटिया, सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद, १६४२ ई०।
६ नरसिंह मेहता कृत हारसमेना पद अने हारमाला—स० केशव राम का० शास्त्री, फार्बस गुजराती सभा, मुम्बई, स० २००६ ई०।
७ प्राचीन काव्यमाला—हरगोवनदास कान्तवाला।
८ आदिवचनो केटलाक लेखो (२ भाग)—कन्हैयालाल मुशी।
९ थोडाक रसदर्शनो नरसैयो भक्त हरिनो—कन्हैयालाल मुशी।
१० गुजराती साहित्यना प्रवासीओ—शकरलाल सी० रावल।
११ कविता प्रवेश आपणी कविता समृद्धि—बलवन्तराय ठाकोर।
१२ प्राचीन गुर्जर काव्यसंग्रह—चीमनलाल दलाल।

ENGLISH

1 An Outline of the Religious Literature of India—J N Farquhar, Humphrey Milford, Oxford University Press 1920
2. The Religious Quest of India—J N Farquhar and H D Griswold
3 Evolution of the Idea of God—An Inquiry into the Origins of the Religions—Grant Allen
4 Dictionary of a Classical Hindu Mythology and Religion Geography History and Literature—John Dowson

5. Gujarat and Its Literature—K. M. Munshi, Longmans Green & Co. Ltd., Calcutta, 1935.
6. Gujrati Language and Literature—Divatia Narsinharao B.
7. The Classical Poets of Gujarat—Govardhanram Madhavram Tripathi.
8. The Cultural History of Gujrat—Majumdar M. R.
9. Milestones in Gujarati Literature—Jhaveri K. M.
10. Selections from Gujrati Classical Poets—Taraporewala.
11. Gujarati Poetry—Scott H. R.
12. Surdas—Dr. Janardan Misra.
13. The Early History of the Vaishnava Sect—Dr. Ray Chowdhari.
14. Collected Works of Sir R. G. Bhandarkar, (Vol. IV).
15. Vaishnavism, Shaivism and Minor Religious Systems of India—Sir R. G. Bhandarkar.